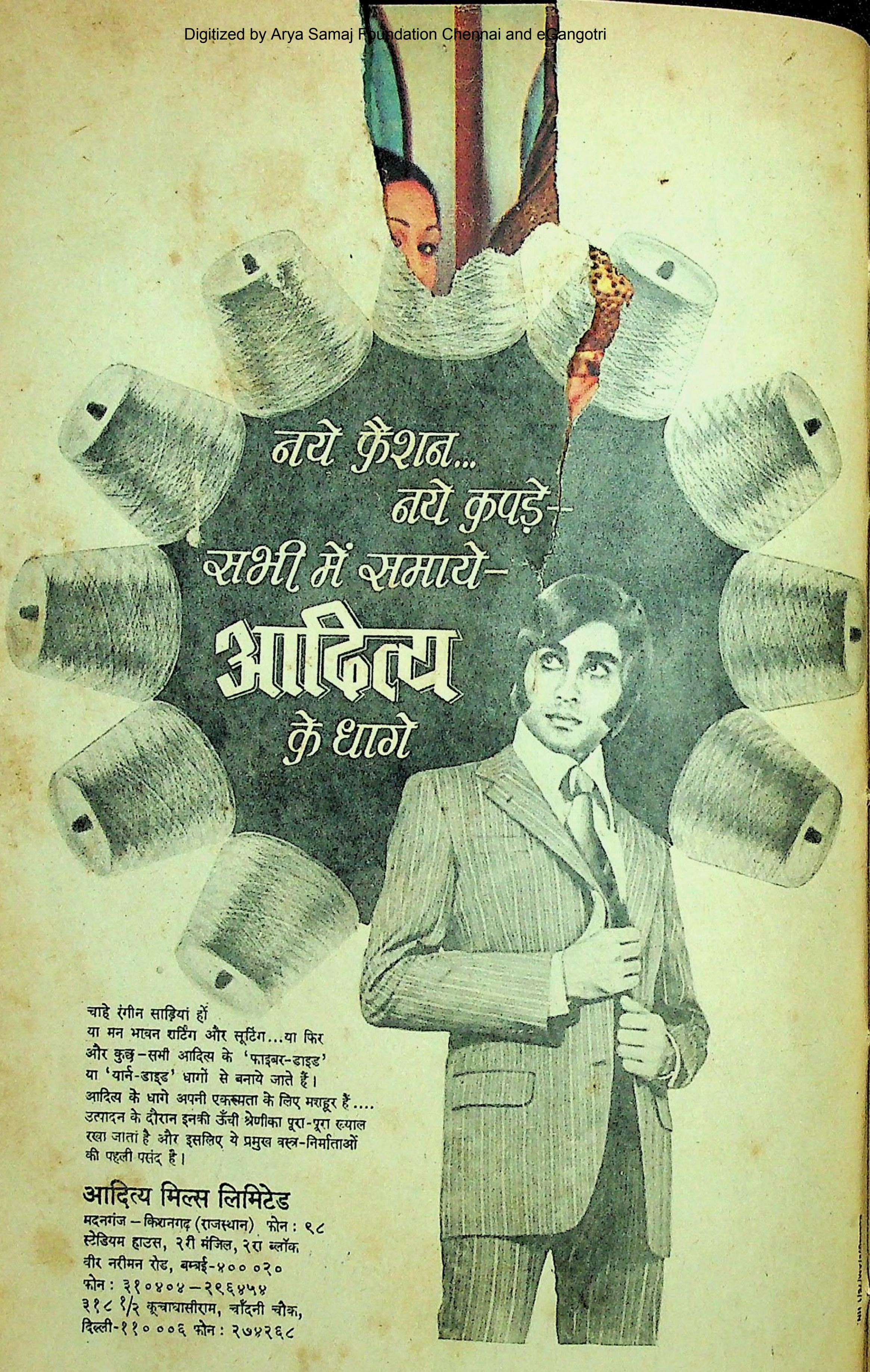
...प्रथम मौलिक कहानी
...नत के धारावाहिक उपन्यास
...'की सातवीं किस्त
...की पहली पुण्य तिथि पर
...ख
...नियां तथा सभी स्थायी स्तंभ

...बर १९७६



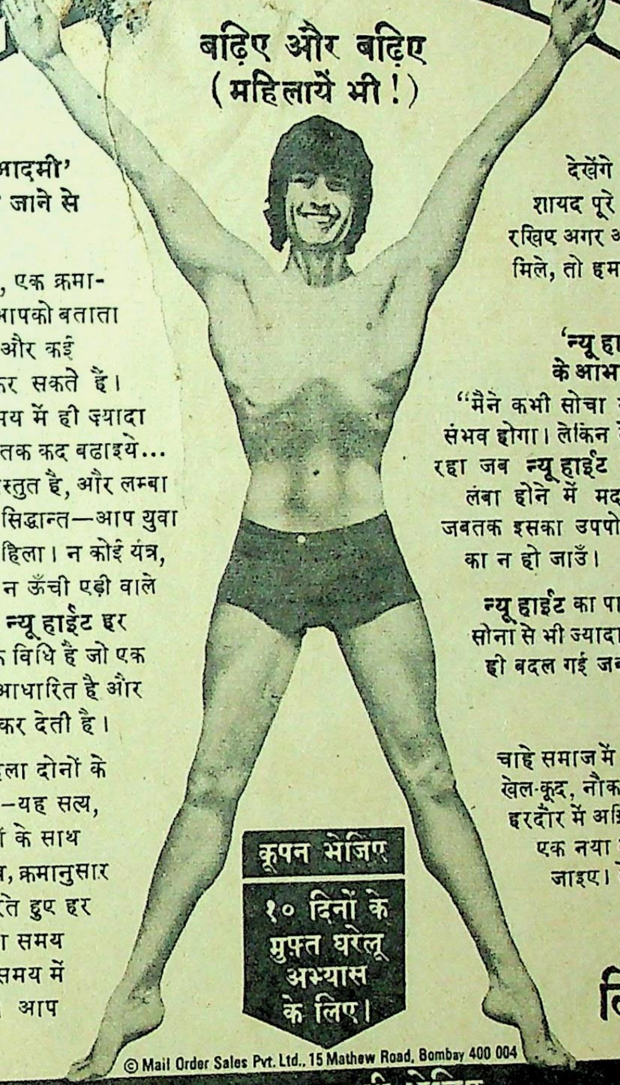


नये फ़ैशन...
नये कपड़े–
सभी में समाये–
आदित्य
के धागे
चाहे रंगीन साड़ियां हों
या मन भावन शर्टिंग और सूटिंग...या फिर
और कुछ–सभी आदित्य के 'फाइबर-डाइड'
या 'यार्न-डाइड' धागों से बनाये जाते हैं।
आदित्य के धागे अपनी एकरूपता के लिए मशहूर हैं....
उत्पादन के दौरान इनकी ऊँची श्रेणीका पूरा-पूरा ख्याल
रखा जाता है और इसलिए ये प्रमुख वस्त्र-निर्माताओं
की पहली पसंद है।
आदित्य मिल्स लिमिटेड
मदनगंज – किशनगढ़ (राजस्थान) फोन : ९८
स्टेडियम हाउस, २री मंजिल, २रा ब्लॉक
वीर नरीमन रोड, बम्बई-४०० ०२०
फोन : ३१०४०४–२९६४५४
३१८ १/२ कूचाघासीराम, चाँदनी चौक,
दिल्ली-११० ००६ फोन : २७४२६८


उत्साह भरा जीवन
नेस्कैफे®
के ताज़ा और
स्फूर्तिदायक स्वाद से
NESCAFÉ
instant coffee
नेस्कैफे®
एकमात्र इन्स्टैन्ट कॉफी
जो १००% शुद्ध
कॉफी से बनी है
दुनिया भर में सबसे
ज्यादा बिकने वाली
इन्स्टैन्ट कॉफी

लंबाई बढाइए

बढ़िए और बढ़िए (महिलायें भी!)



क्या आप 'नाटू', 'छोटा आदमी' या 'ठिगने' कहकर पुकारे जाने से ऊब चुके हैं?

अब एशिया में पहली बार, एक क्रमानुसार सचित्र तरीका जो आपको बताता है की आप अपने कद में और कई सेंटीमीटर की वृद्धि कैसे कर सकते हैं। केवल २ सप्ताह के कम समय में ही ज्यादा से ज्यादा ५ से १५ सें. मी. तक कद बढाइये... अन्यथा कुछ न दीजिए। प्रस्तुत है, और लम्बा होने के लिए **न्यू हाइट** का सिद्धान्त—आप युवा हो या प्रौढ़ पुरुष हो या महिला। न कोई यंत्र, न कोई मुश्किल व्यायाम, न ऊँची एड़ी वाले जूते जैसे बनावटी साधन **न्यू हाइट** हर तरह से नई और वैज्ञानिक विधि है जो एक अनोखे स्विस सिद्धांत पर आधारित है और सारे शरीर को क्रियाशील कर देती है।

न्यू हाइट पुरुष और महिला दोनों के लिए काफी प्रभाव पूर्ण है–यह सत्य, यूरोप भर में हजारों लोगों के साथ प्रमाणित हो चुका है। अब, क्रमानुसार निर्देशन का अनुसरण करते हुए हर रोज केवल कुछ मिनटों का समय दीजिए–२ सप्ताह के कम समय में ही अपना कद नापिए। आप देखेंगे कि यह बढ़ गया है—शायद पूरे १५ सें.मी. तक। और याद रखिए अगर आपको संतोषप्रद परिणाम न मिले, तो हम बिना कुछ पूछे आपके पूरे पैसे तुरंत वापिस कर देंगे।

'न्यू हाईट' इस्तेमाल करने वालों के आभार का एक सतत उपहार:

"मैंने कभी सोचा भी नहीं था कि कद बढ़ाना संभव होगा। लेकिन मेरी खुशी का ठिकाना नहीं रहा जब **न्यू हाईट** ने मुझे ७.५ सें. मी. और लंबा होने में मदद की। मेरी इच्छा है कि मैं जबतक इसका उपयोग करता रहूँ तबतक ६ फीट का न हो जाउँ।

एस. आर. के.

न्यू हाईट का पाठ, इसके ही वजन के बराबर सोना से भी ज्यादा मूल्य का है! मेरी तो जिंदगी ही बदल गई जब से मैंने अपनी लंबाई में ११ सें.मी. और जोड़ लिया है।

आर. एच.

चाहे समाज में आगे रहने की बात हो, प्रणय, खेल-कूद, नौकरी व आनंद की लंबा आदमी हरदौर में अग्रिम रहता है। इसलिए खुद को एक नया रुप देने के लिए अभी से लग जाइए। तेजी से स्थायी कद बढाइए।

महिलाओं के लिए भी उत्तम।

© Mail Order Sales Pvt. Ltd., 15 Mathew Road, Bombay 400 004

न्यू हाईट सिर्फ रु. २९ में

यह कूपन आज ही भेजिए

NH6-H

मेल आर्डर सेल्स प्रा. लि., (आर्डर-विभाग) १५, मैथ्यू रोड, बम्बई ४०० ००४. हाँ, मैं कद बढ़ाना चाहता हूँ। अपने १० दिनों के घरेलू अभ्यास योजना के अंतर्गत, मुझे न्यू हाईट शीघ्र भेजिए यदि मैं पूरी तरह संतुष्ट नहीं हुआ तो मैं सब कुछ लौटा दुँगा ताकि तुरन्त पूरे पैसे वापिस पा सकूँ, कोई पूछताछ नहीं होगी!

SB-1

(कृपया सही चौकर पर ☑ निशान लगाईए)

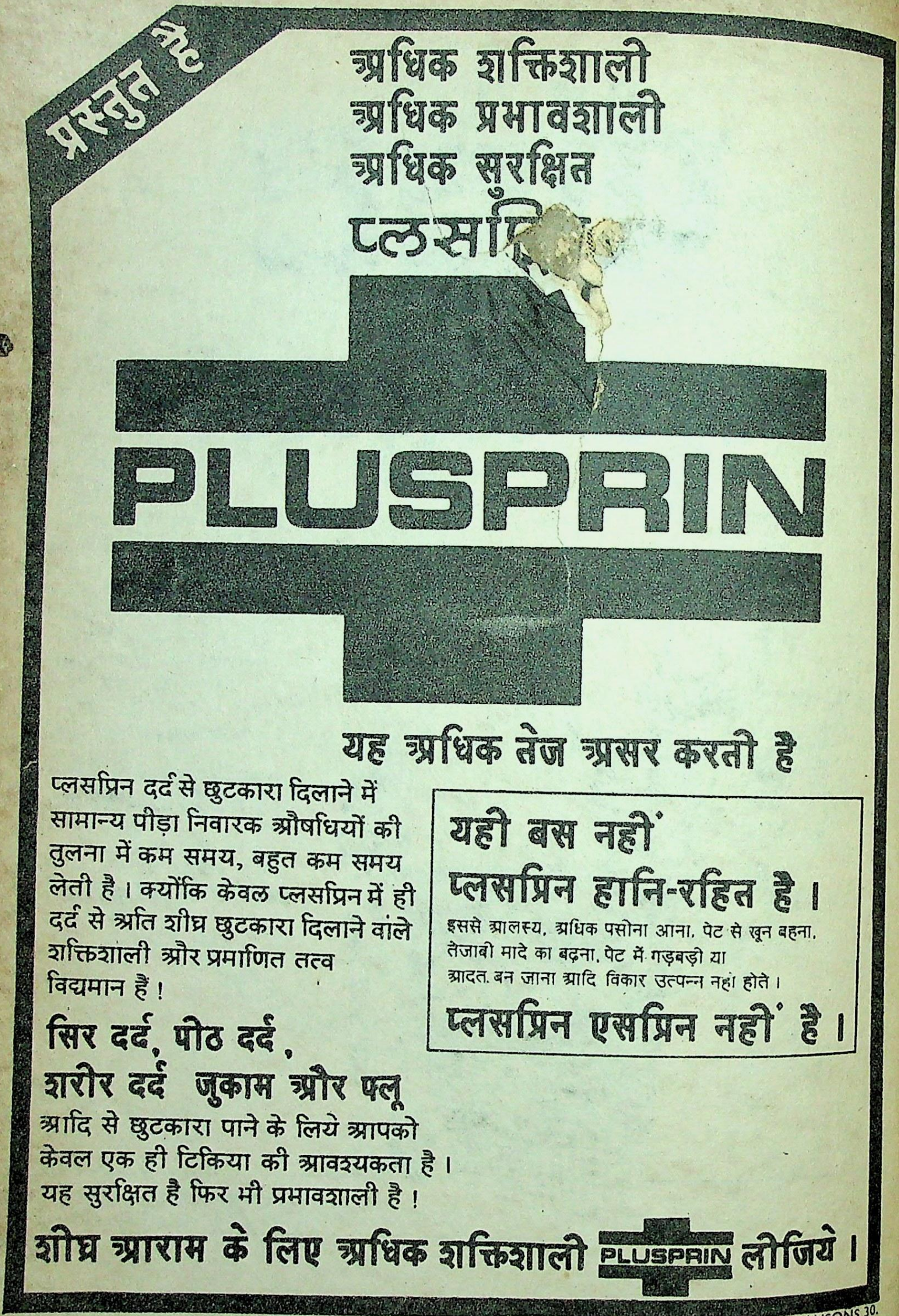
☐ रु. २९ (तथा रु. ४ डाक-व्यय खर्च) चैक/ड्राफ्ट/आई. पी. ओ. द्वारा भेजा है. ☐ रु. ३३ का मनी आर्डर भेजा है. मनी आर्डर रसीद नं.........तारीख......... ☐ वी. पी. पी. द्वारा भेज दीजिए. डिलीवरी के समय में पोस्टमेन को रु. ३३ दे दुँगा.

हस्ताक्षर .... नाम :............................

पता :............................

लम्बाई बढ़ने की गारंटी, वर्ना कुछ भी मत दीजिए।





प्रस्तुत है
अधिक शक्तिशाली
अधिक प्रभावशाली
अधिक सुरक्षित
प्लस
PLUSPRIN
यह अधिक तेज असर करती है
प्लसप्रिन दर्द से छुटकारा दिलाने में सामान्य पीड़ा निवारक औषधियों की तुलना में कम समय, बहुत कम समय लेती है। क्योंकि केवल प्लसप्रिन में ही दर्द से अति शीघ्र छुटकारा दिलाने वाले शक्तिशाली और प्रमाणित तत्व विद्यमान हैं!
सिर दर्द, पीठ दर्द, शरीर दर्द जुकाम और फ्लू
आदि से छुटकारा पाने के लिये आपको केवल एक ही टिकिया की आवश्यकता है। यह सुरक्षित है फिर भी प्रभावशाली है!
यही बस नहीं
प्लसप्रिन हानि-रहित है।
इससे आलस्य, अधिक पसीना आना, पेट से खून बहना, तेजाबी मादे का बढ़ना, पेट में गड़बड़ी या आदत बन जाना आदि विकार उत्पन्न नहीं होते।
प्लसप्रिन एसप्रिन नहीं है।
शीघ्र आराम के लिए अधिक शक्तिशाली PLUSPRIN लीजिये।

JAISONS 30.

सारिका

कहानियों और कथा-जगत की संपूर्ण पत्रिका

दिसंबर, १९७६

वर्ष : १६; पूर्णांक : १८८

कहानियां

लघुकथाएं

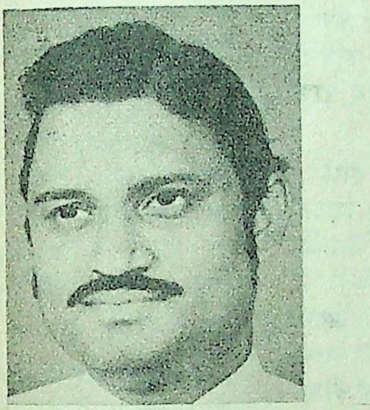
गजलें

आद्यकथाकार (१५)

दुष्यंत कुमार की पहली पुण्य तिथि पर एक विशिष्ट लेख

धारावाहिक उपन्यास : सातवीं किस्त

स्थायी स्तंभ



डॉ. मधुकर राव वासनीक नागपुर के दलित नेता, समांतर चिंतक और प्रतिष्ठित चिकित्सक हैं. ये नागपुर विश्वविद्यालय की फैकटरी आफ मेडीसिन के डीन निर्वाचित हुए हैं. इन्होंने भूतपूर्व केंद्रीय स्वास्थ्य मंत्री तथा कस्तूरबा हेल्थ सोसाइटी की अध्यक्ष डॉ. श्रीमती सुशीला नायर को बुरी तरह पराजित कर यह पद प्राप्त किया है. संगठन कांग्रेस की नेता डॉ. नायर को जनसंघ का भी पूर्ण समर्थन प्राप्त था. डॉ. नायर के समर्थकों ने प्रचार किया था कि डॉ. वासनीक हरिजन हैं और उक्त पद के उपयुक्त नहीं हैं लेकिन मतदान में डॉ. वासनीक को ३७ में से २९ मत तथा डॉ. नायर को कुल ८ मत प्राप्त हुए. डॉ. वासनीक 'निकाय' के संपादक भी हैं और प्रमुख समाजसेवी भी.

संपादक : कमलेश्वर

- मुख्य उप-संपादक : आनंदप्रकाश सिंह
- उप-संपादक : अवधनारायण मुद्गल, सुदीप
- कार्यालय-सहयोगी : श्रीनाथ पांडेय, देवचंद झा, भिकाजी शिर्के

पाठकीय

सितंबर अंक

सितंबर अंक में पांच नये कहानीकारों की नयी रचनाशीलता एक विशिष्ट खंड के रूप में दी गयी थी. प्रतिक्रिया व्यक्त करने वाले प्रायः सभी पाठकों ने इन पांचों कहानियों — **'भूमिका'** (शशांक), **'दधीचि का अंत'** (श्रीनाथ), **'सफेद पत्थर का ख्वाब'** (नीला चावला), **'टूटे हुए चेहरे का आईना'** (सुरजीत प्रकाश) और **'बेघर'** (सुधाकर) की सराहना की है.

छह विशिष्ट कहानियों में **'ओ हरामजादे'** और **'आवाज की अरथी'** सबसे ज्यादा पसंद की गयीं.

आदित्य कुशवाहा, राउरकेला: नवलेखन का जामा पहनी कहानियां किसी भी स्थापित कथाकार की आम जिंदगी से जुड़ी कहानियों से कम नहीं.

विश्व के उपेक्षित मन का एक अस्वीकार हमारा-प्रवासी भारतीय मानस, उसका दर्द, उसकी माटी की महक का अद्वितीय प्रेम **'ओ हरामजादे'** में उजागर है. **'आवाज की अरथी'**, **'अपना परिवेश'**, **'तालपत्री'**, **'त्वमेव माता'**, **'शहीद'** पठनीय हैं.

अनेपालसिंह चौहान, दिल्ली : सर्वोत्कृष्ट कहानियां **'ओ हरामजादे'**, **'एक शिक्षाप्रद कथा'**, **'शहीद'** और नये लेखकों की कहानियां **'भूमिका'** और **'बेघर'** हैं. **'गर्दिश के दिन'** तो पत्रिका की धड़कनें हैं. **'लाल पसीना'** एक बारगी दिल में संजो लेना चाहता हूं.

प्रतापसिंह खेतवाल, पूना : पांचों **नये लेखकों की कहानियां** पढ़ कर संतोष हुआ कि हमारा युवा वर्ग जीवन को बहुत निकट से देख रहा है, उसके प्रति सजग है. वह प्रयत्नशील है, तैयारी कर रहा है, आने वाले कल की.

'तालपत्री' में बहुत सच्ची बात और **'ओ हरामजादे'** में बहुत ही स्वाभाविक छूने वाली बात कही गयी है.

नंदकिशोर अरोड़ा, जोधपुर : कालगत नवीनता होते हुए भी, नये लेखकों की इन कहानियों में रचनात्मक प्रौढ़ता की झलक स्पष्ट दिखायी देती है. **'अपना परिवेश'** रिपोर्ताज से प्रमाणित हो गया कि यह विधा भी कलात्मक[illegible] पर कहानी के समकक्ष दृ[illegible] खड़ी रह सकती है.

लघु कथाओं में **'घोंसला चिड़िया का'** और **'पर उपदेश कुशल'** सबसे सशक्त रहीं.

मिथिलेश दीक्षित, शिकोहाबाद : सभी नयी रचनाएं उत्तम हैं. आम आदमी के परिवेश के इर्द-गिर्द हैं.

'एक शिक्षाप्रद कथा' धनाढ्य और अवसरवादियों पर करारा व्यंग्य है. **'आवाज की अरथी'** में क्षेत्र विशेष के निम्नवर्गीय पात्रों का सजीव चित्रण है.

सी. बी. बोरकर, बंबई : **'आवाज की अरथी'** आम जिंदगी और विशेषतः दरिद्रता में निर्मित विसंगतियों की ज्वलंत व्यथा है. **'तालपत्री'** सशक्त रचना है. **'अपना परिवेश'** देश के किसी भी गांव-कस्बे में घुमा ले आता है और सोचने को मजबूर करता है.

आर. एस. केशरी 'परमेश्वरम्', बिलासपुर : हमारी धरती पर रहने वाले लोगों की तकलीफों, विवशताओं, संत्रासों, विसंगतियों, आघात-प्रतिघातों को जिस खूबी से और सरल ढंग से इन **नये लेखकों** ने चित्रित किया है, उसके लिए वे बधाई के पात्र हैं. **'ओ हरामजादे'** में लेखक ने अपनी धरती की मीठी सुगंध भर दी है.

राजेंद्र प्रसाद तिवारी 'अकेला', गोरखपुर : सर्वाधिक धारदार कहानी **'बेघर'** है. **'दधीचि का अंत'**, **'ओ हरामजादे'** ने भी विशेष रूप से प्रभावित किया. **'लाल पसीना'** अपने आप में एक अलग ही उपलब्धि है.

विजय शंकर मंडल, सूर्यग[illegible] (मुंगेर) : **'शहीद'** और **'टूटे [illegible] चेहरे का आईना'**, यथार्थ अनुभू[illegible] और संवेदना की देन हैं. **'ओ हराम[जादे]'**, **'त्वमेव माता'** तथा न[ये] लेखकों की अन्य कहानियां [illegible] जोरदार हैं. **'गर्दिश के दिन'** [illegible] ओम गोस्वामी लेखक जीवन [illegible] साक्षात्कार कराते हैं. □

यशवंत कोठारी, उदयपुर [:] नये कहानीकारों की कहानियों [के] अलावा **'आवाज की अरथी'** सब[से] आगे निकल गयी. **'एक शिक्षाप्र[द] कहानी'** जमी नहीं. **'त्वमेव माता'** और **'ओ हरामजादे'** भी सुंदर है[.] लघुकथाएं **'सारिका'** की अपनी उपलब्धि हैं.

भैरव शर्मा, चंदौसी : ओ[म] गोस्वामी की **आत्म-रचना** पढ़ कर लगता है मानो आम निम्न-मध्यम वर्गीय बुद्धिजीवी युवा की जिंदगी खुद अपना हाल बयान करने उतर आयी हो.

'ओ हरामजादे' का भावा[ति]धिक्य सहज संवेद्य है. कहानी क्या है, प्रवासी मनसागर में पूर्णिमा को उठने वाला ज्वार है. नये लेखकों की कहानियां भी बहुत अच्छी लगीं. □

नवेंदु, आरा : नये रचनाकारों की कहानियों के अलावा **'ओ हरामजादे'** का भारतीय प्रवासी देर तक याद रहा. उसके देशप्रेम, देश के लोगों से मिलने की अकुलाहट और उसकी मानसिक छटपटाहट, सबका अत्यंत सूक्ष्म विश्लेषण हुआ है.

"नयी प्रतिभाएं जब भी और जहां भी मिलती हैं, 'सारिका' उनका स्वागत करती है," यह नीति अत्यंत सराहनीय है. इससे नये रचनाकर्मियों को नयी दिशा, बल और प्रोत्साहन मिलेगा. □

सरदारसिंह, अजमेर: 'सारिका' की कहानियों को आज के आम जीवन से जुड़ी कहानियां न मानना, अपने आसपास रोज होने वाली घटनाओं को सपन[े]

मान कर नकारना है, फिर भी गालियों का अधिक प्रयोग, तथा बोलचाल की भाषा के नाम पर भाषा को अत्यधिक गंवारू बना देने का प्रयोग चुभने लगता है. ☐

जगदीशप्रसाद सिन्हा, जमुई (आरा) : 'लाल पसीना' के किसन ने गोरों के शोषण के विरोध में सशक्त बिखरे आक्रोश को संगठित किया, यह गर्व की बात है.

हजारों किलोमीटर की दूरी पर, शताब्दियां बीत जाने पर भी भोजपुरी अभी भी मौरीशस की सशक्त एवं प्रमुख भाषा है, संघर्ष के थपेड़ों के बावजूद वह नहीं बदली है, यह उसकी असाधारण लोकप्रियता एवं प्रौढ़ता का द्योतक है. ☐

कु. कृष्णा कुमारी गुप्ता, सहारनपुर: यह जान कर प्रसन्नता हुई कि अब 'सारिका' में देश के, भारती के कहानीकार पुनः आने लगे हैं. एक बात और : देशी लेखक अश्लील भाषा ही लिखता है क्या? सितंबर में ऐसी दो रचनाएं थीं जिनम अश्लील वाक्यों के सिवा कुछ नहीं था.

ऐसा ही कई बार लघुकथाओं में भी देखती हूं. लघुकथाओं में ऐसा कुछ नहीं होता जिसे कुछ नवीन या वस्तुतः कहानी माना जाये.हम अभी तक न पंचतंत्र कथाओं से आगे गये हैं और न लोक कथाओं से अपना पिंड छुड़ा सके हैं. 'सारिका' से हम कुछ ऊंची उम्मीद ही लगाते हैं. ☐

(चयन-संयोजन : इगलासिया)

> सारिका के जून १९७५ के अंक में श्री सुरेंद्रसुकुमार लिखित 'अगिहाने' शीर्षक कहानी के प्रकाशन से गोरहा एटा निवासी कुंवर नगेंद्र सिंह जी की भावनाओं को जो आघात पहुंचा है, उसके लिए हमें खेद है
>
> —संपादक

प्रगतिशील चिंतन और प्रतिगामी बौखलाहट

प्रतिक्रियावाद हमेशा मौकापरस्ती के सुरक्षित फुटपाथों पर चलने का आदी रहा है.मुखौटे बदलने में इसका कोई सानी नहीं है. हवा का रुख सूंघने की इसकी क्षमता अद्भुत है. आपात्स्थिति से पहले तक जो लोग 'विचार स्वातंत्र्य' और 'अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य' के नाम पर सरकार की प्रगतिशील नीतियों की चिंदियां बिखेरने पर [illegible] हुए थे, वही आज 'सरकार-भक्त' बन बैठे हैं और [illegible] स्वतंत्रता का मखौल उड़ा रहे हैं. जिनका प्रगति[illegible]न से दूर का भी रिश्ता नहीं, वे उसके धुरंधर व्याख्या[illegible]नने की पेशकश में हैं. यह भी सत्य है कि जब फिर हवा का रूख बदलेगा तो इन्हें अपना मुखौटा उतारते देर नहीं लगेगी. ये प्रतिगामी शक्तियां समय सापेक्ष सामाजिक संदर्भों की वैज्ञानिक परख और व्याख्या की कोशिशों में रुकावट पैदा करने की कुटिल हरकतें करती आयी हैं, कर रही हैं और करती रहेंगी, लेकिन प्रगतिशील चिंतन कभी इनसे भयभीत नहीं रहा. प्रगतिशील सोच की धारा हमेशा आम आदमी के साथ रही है और समाज के कमजोर वर्ग को समुचित सामाजिक न्याय दिलाने की कोशिश करती आयी है. साथ ही इसने न केवल प्रतिक्रियावादी साजिशों का सफल मुकाबला किया है, बल्कि उनके मुखौटों को नोंचकर फेंका भी है.

आज फिर साहित्य और चिंतन के नाम पर इस तरह की घृणित साजिशें हो रही हैं. प्रतिक्रियावादियों तथा निहित स्वार्थ वाले अलेखक और अर्धलेखकों ने राष्ट्रहित और जनहित के नारों की रेशमी रामनामी ओढ़ कर अपनी नितांत प्रतिक्रियावादी पत्र-पत्रिकाओं के माध्यम से, जिस साजिश का प्रारंभ किया है, वह सही प्रगतिशील चिंतन को भ्रमित नहीं कर सकती.

'पहल' में प्रकाशित शाकिर अली के जिस लेख पर इतना हंगामा उठ रहा है उतना तो सी. आई. ए. के किसी षड्यंत्र पर भी इन लोगों ने नहीं उठाया था. साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी चिंतन के मोहताज ये लोग, अपनी जमीन की महक, अपने वक्त और अपने आदमी से जुड़ कर जिंदगी के यथार्थ के प्रति संबद्धता की सही सोच को सहज स्वीकार नहीं कर सकते और इसके लिए प्रगतिशील लेखक को चिंतित नहीं होना चाहिए.

'पहल' जैसी प्रगतिकामी और पाजिटिव पत्रिका के विरुद्ध जो अभियान शुरू किया गया है, उस प्रतिक्रियावादी अभियान की भर्त्सना भारत की सभी भाषाओं के समांतर और दलित लेखक करते हैं.

महामंत्री,

समांतर लेखक संघ.

मुग़ल बच्चा

• इस्मत चुगताई

फ़तहपुर-सीकरी के सूनसान खंडहरों में गोरी दादी का मकान पुराने सूखे जख्म की तरह खटकता था. ककैय्या ईंट का दो-मंजिला घुटा-घुटा-सा मकान एक मार खाये रूठे हुए बच्चे की तरह लगता था. देखकर ऐसा मालूम होता था कि वक्त का भूचाल उसकी ढिठाई मे हार कर आगे बढ़ गया और शाही शानो-शौकत पर टूट पड़ा.

गोरी दादी सफेद झक चांदनी बिछे तख्त पर सफेद बेदाग कपड़ों में एक संगमरमर का मकबरा मालूम होती थीं. सफेद ढेरों बाल, बेखून की सफेद धोयी हुई मलमल जैसी खाल, हलकी-भूरी आखें जिन पर सफेदी रेंग आयी थी, पहली नजर में सफेद लगतीं थीं. उन्हें देखकर आंखें चकाचौंध हो जाती थीं जैसे पिसी हुई चांदी की धूल उनके आस-पास छायी हुई हो.

न जाने कब से जिये जा रही थीं. लोग उनकी उमर सौ से ऊपर बताते थे. खुली-खुली गुमसुम बेनूर आंखों से वो इतने साल क्या देखती रहीं थीं, क्या सोचती रहीं थीं, कैसे जीती रही थीं. बारह-तेरह बरस की उमर में वो मेरी अम्मा के चचा-दादा से ब्याही तो गयीं थीं मगर दूल्हा ने दुल्हन का घूंघट भी न उठाया था. क्वांरेपन की एक सदी उन्होंने इन्हीं खंडहरों में बितायी थी. जितनी गोरी बी सफेद थीं, उतने ही उनके दूल्हा स्याह-मट्ट थे, इतने काले कि उनके आगे चिराग बुझे! गोरी बी बुझ कर भी धुंआ देती रहीं.

सरे-शाम खाना खाकर झोलियों में सूखा मेवा भरकर हम बच्चे लिहाफों में दुबककर बैठ जाते और पुरानी जिंदगी के पत्ते उल्टे जाने लगते. बार-बार सुन कर भी जी न भरता, अदबदा कर गोरी बी और काले मियां की कहानी दुहरायी जाती. बेचारे की अकल पर पत्थर पड़ गये थे कि इतनी गोरी-गोरी दुल्हन का घूंघट भी न उठाया.

अम्मा साल के साल पूरा लाव-लश्कर लेकर मैके पर धावा बोल देतीं. बच्चों की ईद हो जाती. फतहपुर-सीकरी के रहस्यमय शाही खंडहरों में आंखमिचौली खेलते-खेलते जब शाम पड़ जाती तो खोये-खोये सुरमई वातावरण से डर लगने लगता. हर कोने से साये लपकते. दिल धक-धक करने लगता.

—काले मियां आ गये! हम एक दूसरे को डराते, गिरते-पड़ते भागते और ककैय्या ईंट के दो-मंजिल मकान की गोद में दुबक जाते. काले मियां हर अंधेरे कोने में छिपे महसूस होते. बहुत से बच्चे मरने के बाद हजरत सलीम चिश्ती की दरगाह पर माथा रगड़ा तब गोरी बी का मुंह देखना नसीब हुआ. मां-बाप की आखों की ठंडक गोरी बी बड़ी जिद्दी थीं. बात-बात पर अखाटी-खटवाती लेकर पड़ जातीं. भूख हड़ताल कर देतीं. घर में खाना पकता, कोई मुंह न जुठालता. ज्यों का-त्यों उठवा कर मसजिद में भिजवा दिया जाता. गोरी बी न खातीं तो अम्मा-बाबा कैसे निवाला तोड़ते?

बात इतनी -सी थी कि जब मंगनी हुई तो लोगों ने मजाक में छींटें कसे.

—गोरी दुल्हन, काला दुल्हा!

मगर मुगल बच्चे मजाक के आदी नहीं होते. सोलह-सतरह बरस के काले मियां अंदर ही अंदर घुटते रहे, जल कर मुरंडा होते रहे.

—दुल्हन मैली हो जायेगी. खबरदार यह काले-काले हाथ न लगाना!

—बड़े नाजों की पली है. तुम्हारी तो परछांयीं भी पड़ी तो काली हो जायेगी.

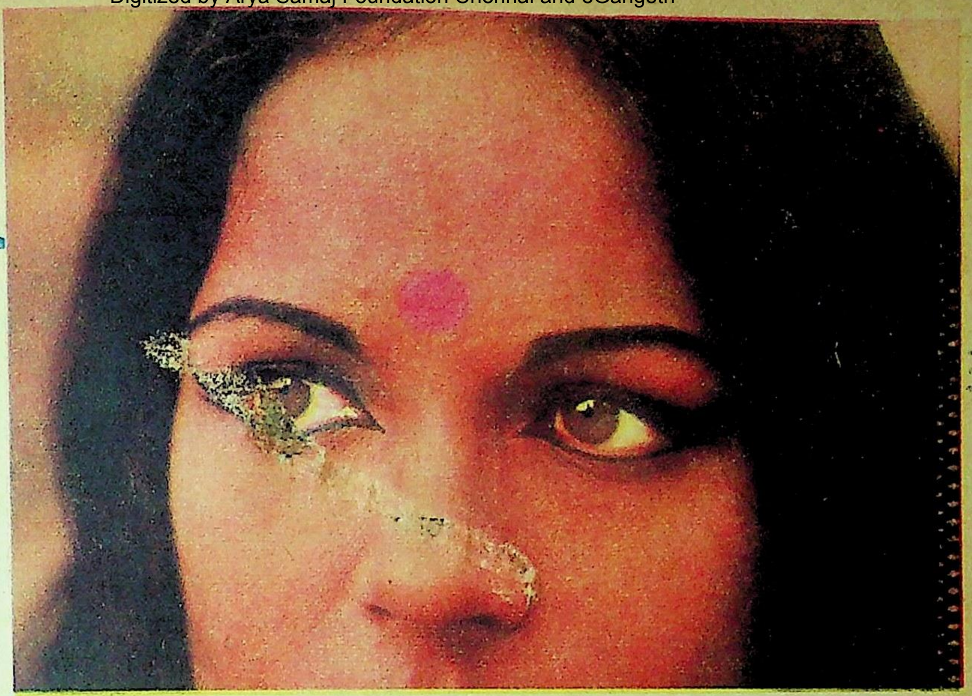
—बड़ी बद-दिमाग है. सारी उमर जूतियां उठवायेगी.

* *

अंग्रेजों ने जब मुगलशाही का अंतिम संस्कार किया तो सबसे बुरी मुगल बच्चों पर बीती क्योंकि वे ही ज्यादा ओहदे संभाले बैठे थे. ऊंचे ओहदे और जागीरें छिन जाने के बाद लाख के घर देखते-देखते खाक हो गये. बड़ी-बड़ी ढंढार हवेलियों में मुगल बच्चे भी पुराने सामान की तरह जा पड़े, भौचक्के-से रह गये जैसे किसी ने पैरों-तले से तख्ता खींच लिया.

तभी मुगल बच्चे अपने गौरव व आत्माभिमान की तार-तार चादर में सिमट कर अपने अंदर ही अंदर घुसते चले गये. मुगल बच्चे अपनी दिमागी धुरी से थोड़ा खिसके हुए होते हैं. खरे मुगल की यही पहचान है कि उसके दिमाग के दो-चार पेंच ढीले या जरूरत से ज्यादा तंग होते हैं. आकाश से धरती की तरफ लुढ़के तो मस्तिष्क का संतुलन डगमगा गया. जिंदगी की कदरें गडमड हो गयीं. दिमाग से ज्यादा भावनाओं से काम लेने लगे.

अंग्रेज की चाकरी लानत और मेहनत-मजदूरी शान के खिलाफ. जो कुछ धन-दौलत बची, उसे बेच-बेच कर खाते रहे. हमारे अब्बा के चचा रुपये-पैसे की जगह चाची के दहेज के पलंग के पायों से चांदी का पत्तर उखेड़ ले जाते थे. जेवरों और बर्तनों के बाद गोटे-टके कपड़े नोच-नोच कर खाये. पानदान की कुलियां सिलबट्टे से कुचल कर टुकड़ा-टुकड़ा बेचीं और खायीं. घर के मरद दिन भर पलंग की अदवायन तोड़ते, शाम को पुरानी-धुनी अचकन पहनीं और शतरंज-पचीसी खेलने निकल गये. घर की बीबियां छुप-छुप कर सिलायी कर लेतीं. चार पैसों से घर का चूल्हा जल जाता या मुहल्ले के बच्चों को कुरान पढ़ा देतीं तो कुछ नजराना मिल जाता.



● नरेंद्र एन. शाह

काले मियां ने दोस्तों की छेड़खानी को जी का घाव बना लिया. जैसे मौत की घड़ी नही टलती वैसे मां-बाप की तय की हुई शादी न टली. काले मियां सिर झुका कर दूल्हा बन गये. किसी सर-फिरी ने ऐन मुंहदिखाई के वक्त और छेड़ दिया.

—खबरदार, जो दुल्हन को हाथ लगाया, काली हो जायेगी.

मुगल बच्चा चोट खाये नाग की तरह पलटा. बहन का आंचल सिर से नोचा और बाहर चला गया. जब दूल्हा अंदर औरतों में आता है तो उसकी बहन उसके सर पर अपना आंचल डाल कर लाती है.

हंसी में खंसी हो गयी. एक मातम बरपा हो गया. मरदानखाने में इस ट्रैजड़ी की खबर हंसी से उड़ा दी गयी. बगैर मुंहदिखाई की रस्म के बिदाई एक कयामत थी.

—खुदा की कसम मैं उसके घमंड को चकनाचूर कर दूंगा. किसी ऐसे-वैसे से नहीं, मुगल-बच्चे से वास्ता पड़ा है, काले मियां फुंफकारे.

★ ★

काले मियां शहतीर की तरह पूरी मसहरी पर फैले पड़े थे. दुल्हन एक कोने में गठड़ी बनी कांप रही थी. बारह बरस की बच्ची की बिसात ही क्या!

—घूंघट उठाओ, काले मियां डकराये.

दुल्हन और गुड़ी-मुड़ी हो गयी.

—हम कहते हैं, घूंघट उठाओ, कोहनी के बल उठ कर बोले.

सहेलियों ने तो कहा था, दूल्हा हाथ जोड़ेगा, पैर पड़ेगा. और खबरदार जो घूंघट को हाथ लगाने दिया. दुल्हन जितना भी अपने बचाव के लिए हाथ-पैर मारे, उतनी ही ज्यादा पवित्र समझी जाती है.

—देखो जी, तुम नवाबजादी होगी अपने घर की. हमारे तो पैर की जूती हो. घूंघट उठाओ, हम तुम्हारे बाप के नौकर नहीं.

दुल्हन को जैसे लकवा मार गया.

काले मियां चीते की तरह लपक कर उठे. जूतियां उठा कर बगल में दाबीं और खिड़की में से पायीं-बाग में कूद गये. सुबह की गाड़ी से वो जोधपुर दनदना गये.

घर में सोता पड़ा था. एक एक्काबी जो दुल्हन के साथ आयी थी, जाग रही थी. कान दुल्हन की चीखों की तरफ लगे थे. जब दुल्हन के कमरे से चूं की आवाज भी न आयी तो उनके पैरों का दम निकलने लगा.

—हय!—हय! कैसी बेहया लड़की है. लड़की जितनी भी ज्यादा मासूम और क्वांरी होगी उतना ही ज्यादा द्वंद्व मचायेगी. क्या काले मियां में कुछ खोट है? जी में सोचने लगी. दिल चाहा कुएं में कूद कर किस्सा खतम करे.

चुपके से कमरे में झांका तो जी सन्न रह गयी. दुल्हन जैसी की तैसी धरी थी और दूल्हा गायब! बड़े उल्टे-सीधे किस्म के हंगामें हुए. तलवारें खिचीं. बड़ी मुश्किल से दुल्हन ने जो उस पर बीती थी कह सुनायी. इस पर तरह-तरह की खुसर-फुसर होती रही. खानदान में दो पार्टियां बन गयीं. एक काले मियां की, दूसरी गोरी बी की.

—आखिर वो उसका शौहर है, उसका देवता है. उसका हुक्म न मानना गुनाह है, एक पार्टी इस बात पर जमी हुई थी.

—कहीं किसी दुल्हन ने खुद घूंघट उठाया है? दूसरी पार्टी का कहना था.

काले मियां को जोधपुर से बुलवा कर दुल्हन का घूंघट उठवाने की सारी कोशिशें असफल रहीं. वे वहां

घुड़सवारों में भरती हो गये. और बीवी को रोटी-कपड़ा भेजते रहे जो गोरी बीवी की मां समधिन के मुंह पर मार आतीं.

गोरी बी कली से फूल बन गयीं. हर अठवाड़े हाथ-पैर में मेंहदी रचाती रहीं. बंधे-टके दुपट्टे ओढ़ती रहीं और जीती रहीं.

फिर खुदा का करना ऐसा हुआ कि बाबा की मरण घड़ी आन पहुंची. काले मियां को खबर गयी तो न जाने किस मूड में थे, भागे आये. बाबा मौत का हाथ झटक कर उठ बैठे. काले मियां को हाजिरी का हुक्म दिया. दुल्हन का घूंघट उठाने की कला-कौशल्य पर मिसकौट हुई.

काले मियां ने सिर झुका दिया. मगर शर्त वो ही रही कि चाहे जो हो जाय मगर घूंघट तो दुल्हन को अपने हाथों ही उठाना पड़ेगा.

—अब्बा हुजूर, मैं कसम खा चुका हूं. मेरी गर्दन उड़ा दीजिए मगर कसम नहीं तोड़ सकता.

मुगल-बच्चों की तलवारें जंगिया चुकी थीं. आपस की मुकद्दमेबाजियों ने सिर का कस-बल निकाल दिया था मगर मूर्खतापूर्ण जिद्दें रह गयी थीं. बस उन्हीं को कलेजे से लगाये बैठे थे. किसी ने काले मियां से न पूछा कि तुमने ऐसी बेवकूफी की कसम खायी ही क्यों कि अच्छी-भली जिंदगी एक शाप बन गयी.

खैर साहब, गोरी बी फिर से दुल्हन बनायी गयी. ककैय्या ईंटवाला मकान फिर फूलों और इतर की खुशबू से महक उठा.

अम्मा ने समझाया —तुमसे उसका विवाह हुआ है बेटीजान, घूंघट उठाने में कोई ऐब नहीं. उसकी जिद्द पूरी कर दो. मुगल-बच्चे की आन रह जायेगी. तुम्हारी दुनिया संवर जायेगी. गोदी में फूल बरसेंगे. अल्लाह रसूल का हुकम पूरा होगा.

गोरी बी सिर झुकाये सुनती रहीं. कच्ची कली सात साल में कयामत ढा देने वाली नवयुवती बन चुकी थी. हुस्न और जवानी का एक तूफान था जो तन-मन से फूटा निकलता था.

औरत काले मियां की सबसे बड़ी कमजोरी थी. उनके सबके सब सोच-विचार इसी एक बिंदु पर केंद्रित थे. मगर उनकी कसम एक कारोंदार लोहे के गोले की तरह उनके कंठ में फंसी हुई थी. उनकी वासनाओं के सात सालों ने आंखमिचौली खेली थी. उन्होंने बीसियों घूंघट नोच डाले. रंडीबाजी, लौंडेबाजी, बटेर-बाजी, कबूतरबाजी मतलब कोई बाजी न छोड़ी. मगर गोरी बी के घूंघट की चोट दिल में पंजे गाड़े रही जो सात साल सहलाने के बाद घाव बन चुकी थी. इस बार उन्हें यकीन था कि उनकी कसम पूरी होगी. गोरी बी ऐसी अकल की कोरी नहीं कि जीने का यह आखिरी अवसर भी गंवा दे. दो उंगलियों से हल्का-फुल्का आंचल ही तो सरकाना है. कोई पहाड़ तो नहीं ढोने.

—घूंघट उठाओ, काले मियां ने विनीत भाव से कहना चाहा मगर मुगलवी दबदबा विजयी रहा.

गोरी बेगम गरूर से तमतमायी सन्नाटे में बैठी रहीं.

—आखिरी बार हुक्म देता हूं. घूंघट उठा दो वरना इसी तरह पड़ी सड़ जाओगी. अब जो गया फिर न आऊंगा.

मारे गुस्से के गोरी बी लाल भूभूका हो गयीं. काश उनके सुलगते हुए चेहरे से एक शोला लपकता और वो मनहूस घूंघट जल कर खाक हो जाता!

बीच कमरे में खड़े काले मियां कौड़ीयाले सांप की तरह झूमते रहे. फिर जूते बगल में दबाये पायीबाग में उतर गये.

युग बीत गये. अब तो पायीबाग कहां? उधर पिछवाड़े लकड़ियों की टाल लग गयी. बस दो जामुन के पेड़ रह गये थे और एक विशाल बरगद. बेले-चमेली की झाड़ियां, गुलाबों के झुंड, शहतूत और अनार के दरख्त पेड़ कब के लुट-पिट चुके.

जब तक मां जिंदा रहीं, गोरी बी को संभाले रहीं. उनके बाद वह ड्यूटी गोरी बी ने खुद संभाल ली. हर जुम्मे रात को मेहंदी पीस कर पाबंदी से लगातीं. दुपट्टा रंग चुन कर गोटा टांकतीं और जब तक ससुराल जिंदा रही, हर त्योहार पर सलाम करने जाती रहीं.

अब की तो काले मियां लुप्त ही हो गये. बरसों उनका सुराग न मिला. मां-बाप रो-रो कर अंधे हो गये. वो न जाने किन जंगलों की खाक छानते फिरे. कभी दरगाहों में उनका पता मिलता, कभी किसी मंदिर की सीढ़ियों पर पड़े पाये जाते.

गोरी बी के सुनहले बालों में चांदी फूल गयी. मौत की झाड़ू काम करती रही. आसपास की जमीनें और मकान कौड़ियों के मोल बिकते गये., कुछ पर नये लोग जबरदस्ती बस गये. कुंजड़े-कसाई आन बसे. पुराने महल ढह कर नयी दुनिया की नींव पड़ने लगी. परचून की दुकान, डिस्पेंसरी, एक मरगिला-सा जनरल स्टोर भी उग आया जहां अल्यूमीनियम की पतीलियां और लिपटन की चाय की पुड़ियों के हार लटकने लगे.

एक अधमुई मुट्ठी की दौलत रिस-रिस कर बिखर रही थी. कुछ जानदार उंगलियां समेटने में लगी थीं. जो कल तक पलंग की अदवाइन पर बैठते थे, झुक-झुक कर सलाम करते थे, आज साथ उठना-बैठना भी अपनी शान के खिलाफ समझने लगे.

गोरी बी का जेवर आहिस्ता-आहिस्ता लालाजी की तिजोरी में पहुंच गया. दीवारें ढह रहीं थीं. छज्जे झूल रहे थे. बचे-खुचे मुगल-बच्चे अफीम का अंटा निगल कर पतंगों के पेच लड़ा रहे थे. तीतर-बटेर सधा रहे थे और कबूतरों की दुमों के पर गिन कर हलकान हो रहे थे. लफ्ज 'मिर्जा' जो कभी शान और दब दबे की निशानी समझा जाता था, मजाक बन रहा था. गोरी बी कोल्हू के अंधे बैल की तरह जिंदगी के छकड़े में जुती धुरी पर घूमे जा रही थीं. उनकी नीली आंखों में सूनेपन ने डेरा डाल दिया था.

उनके लिए तरह-तरह की कहानियां मशहूर थीं कि उन पर जिन्नों का बादशाह आशिक था. ज्यूंही काले मियां उनके घूंघट को हाथ लगाते, चट तलवार सूत कर खड़ा हो जाता. हर जुम्मे रात को आधी रात की नमाज के बाद वजीफा पढ़ती तब सारा आंगन कौड़ियाले सांपों से भर जाता. फिर सुनहरी मुकुट वाला नागराज अजगर पर सवार हो कर आता है. गोरी बी के पाट की धुन पर सिर धुनता है. पौ फटते ही सब सिधार जाते हैं.

जब हम किस्से सुनते तो कलेजे उछल कर हलक कंठ में फंस जाते और रात को सांपों की फुंकारें सुन कर उठते और चीखें मारने लगते.

गोरी बी ने सारी उम्र कैसे-कैसे नाग खिलाये होंगे, कैसे अकेली नामुराद (अभिशप्त) जिंदगी का बोझ ढोया होगा? उनके रसीले होंठों को कभी किसी ने नहीं चूमा. उन्होंने अपने जिस्म की पुकार को क्या जवाब दिया होगा?

अच्छा होता, यह कहानी यहीं खतम हो जाती. किस्मत मुस्करा रही थी.

पूरे चालीस बरस बाद काले मियां अचानक आप ही आ धमके. उन्हें किस्म-किस्म की लाइलाज बीमारियां लग चुकी थीं. पोर-पोर सड़ रही थी. रोम-रोम रिस रहा था. बदबू के मारे नाक सड़ी जाती थी. मगर आंखों में हसरतें जाग रही थीं, जिनके सहारे जान सीने से अटकी हुई थी.

—गोरी बी से कहो मुश्किल आसान कर जायें.

एक कम साठ बरस की दुल्हन ने रूठे हुए दुल्हा को मनाने की तैयारियां शुरू कर दीं. मेंहदी, घोल कर हाथ-पैरों में रचायी. पानी गरम कर के पिंडा पाक किया. सुहाग का चिकटा हुआ तेल सफेद लटों में बसाया. संदूक खोल कर भर-भर टपकता-झड़ता शादी का जोड़ा निकाल कर पहना और इधर काले मियां दम तोड़ते रहे.

जब गोरी बी शरमाती-लजाती धीरे-धीरे कदम उठाती उनके सिरहाने पहुंचीं तो झिलगे पलंग पर चीकट तकिये और गूदड़ बिस्तर पर पड़े हुए काले मियां की मुट्ठी हड्डियों में जिंदगी की लहर दौड़ गयी. यमदूत से झूजते हुए काले मियां ने हुक्म दिया :

—गोरी बी, घूंघट उठाओ!

गोरी बी के हाथ उठे मगर घूंघट तक पहुंचने के पहले गिर गये.

काले मियां दम तोड़ चुके थे.

वो बड़े सकून से उकड़ूं बैठ गयीं. सुहाग की चूड़ियां ठंडी कीं और रंडापे का सफेद आंचल माथे पर खींच लिया. □□□

(अनुवाद : राज बेदी)

३, ईस्टन कोर्ट 'ए' चर्च गेट, बंबई-२०

एक गजल • महेश अनघ

ऐसे देख रहे हैं हम अपने जीवन-व्यापार को।
जैसे कोई प्रेत निहारे छूट गये परिवार को॥

ऐसी बौरा गयी हमारी अभिलाषा उन्माद में।
बौना हाथ बढ़ा कर पकड़े परछाईं के प्यार को॥

यहीं कहीं महकी क्यारी पिछले जन्मों की याद-सी।
सपनों में सुन रहे किसी की सांसों की झंकार को॥

कई-कई चमकीले चेहरे दिख जाते आकाश में।
इन चेहरों में खोज रहे हैं अपने रिश्तेदार को॥

इस पूरी घटना के हीरो लगता है जैसे हम थे।
देख रहे हैं पर्दे पर चलते-फिरते संसार को॥

बरामदे पर... • रणजीतकुमार साहा

बंदरों को मारने के लिए चाहे जिस किसी ने भी पत्थर उठाया हो, नुकसान मुरला का ही होता. बंदर पीपल की डालों से सीधे उसके घर की छत पर ही कूदते. टिन और ऐसबेस्टस शीट या दूसरे ठुके-पीटे चद्दरों को थोप-थापकर जमाई गयी छत की बखिया ही उधेड़ देते. उन बंदरों को रोकने की सारी गुंजाइशें चुक गयी थीं. कस्बे के एक दूर कोने पर बिना छत के और बिना सलीके के दरवाजे का घर, लूट-पाट और ताक-झांक के डर से जिसकी सारी खिड़कियां पहले ही मूंद-तोप दी गयी थीं.

पीछे मुसलमानों के आठ-दस घर थे जिनकी ठिगनी चारदीवारी पर कांच की नुकीली किर्चियां उगा दी गयी थीं. उस पर चढ़े मुर्ग की कुड़कुड़ाती आवाजें, मुरला के कानों में शीशे की तरह चुभने लगतीं. फिर भी वह सोने का लंबा बहाना खींचे पड़ा रहता. जब काफी ऊपर रोशनदान पर सूरज चढ़ जाता और बंदरों की हुप्फ. . .हुफ . . .फ. . .हुफ फ. . .से उसकी कनपटी दिप जाती, तब यह घबड़ाकर अपनी आंखें खोल देता. रोशनी की दो चमकती शमशीरें —ऊपर से सीधे उसकी आंखों में आकर खुबतीं और वह आंखें बंद कर अपना मुंह तकिये में डाल देता.

नीचे गीले सहन पर शामू, सोनू को बंदर की तरह मुंह बनाकर चिढ़ाता रहता. सोनू के कुलबुलाने पर शामू उसकी बगलों में उंगलियां नचा कर, उसे गुद-गुदाता. पर सोनू हंसता ही नहीं. उसकी आंखें डबडबाने को होतीं कि राजो दौड़ी हुई आती और सोनू को अपने कलेजे में छुपा लेती. शामू हाथ में संटी लिये घर से निकल कर बाहर सड़क पर कूदने लगता.

पूरा मोहल्ला एक खुला यतीमखाना था. नाले के एक सिरे से दूसरे सिरे याने यहां से वहां तक ; इधर चैती दुर्गा थान से लेकर उधर मंसूर मियां की 'डेली ब्रेड बेकरी' तक. शाम गहराने के बाद पता चलता जैसे सारा मोहल्ला गूंगा हो गया है. कभी-कभी प्रदीप प्रिंटर्स की ट्रेडल मशीन की 'शप्प. . .शअप्प. . .अप. . . शटप' की आवाज से लगता कि रात उस मनहूस बस्ती में घुसना नहीं चाहती. . .पर कोई है जो उसकी नंगी पीठ पर सड़ाक-सड़ाक चाबुक मार कर घसीटता ले ही आता है. तभी पता चलता, इस मोहल्ले की धूल से सने और सड़कों पर बहते कीचड़ से लिथड़े-लिपटे बच्चों के शायद मां-बाप भी हैं. सड़क पर अपनी खाट निकाल कर कुछ बहादुर किस्म के लोग जांघ खुजाते-खुजाते सो जाते. सुबह होते ही खाट अंदर कर लेते और बच्चों को बाहर धकेल देते. घर या चौखट के सामने वाली धूल भरी सड़क का हिस्सा लोगों ने अपनी मिल्कियत में ही शुमार कर लिया था. वहां गाय बांधी जाती, बकरी को घास डाली जाती, धान सूखने दिया जाता, पापड़ फैलाया जाता, मालिश की जाती और लड़कियां 'चूचू' भी खेलती थीं. प्रायः हर दरवाजे के सामने चिकने पत्थर का एक बड़ा टुकड़ा था जिस पर कपड़े साफ किये जाते और स्नान-ध्यान कर पूर्वजों के लिए 'जल-तर्पण' भी किया जाता.

मुरला जब भी घर आता, बिछावन छोड़ते ही चड्ढी ऊंची करता हुआ दरवाजे की नाली की तरफ भागता. राजो शामू के हाथ झाड़ू भिजवा देती. मुरला झाड़ू लेकर अपने हिस्से की सड़क से धूल के बगूले चारों ओर हवा में छितराने लगता. अगल-बगल राह चलते राहगीर थूकने लगते. यूं भी चारों ओर ऐसी तीखी और तेजाबी बू फैली रहती कि नाक सड़ जाती थी. सामने बिंदा हलवाई जोर-जोर से अपने चूल्हे की मांद के सामने पंखा झलने लगता ताकि धूल का जवाब धुएं से दिया जा सके. मक्खियां भिन-भिनाकर उड़तीं तो पता चलता कौन-कौन-सी परातों में मिठाइयां रखी हैं. आकार से उन्हें पहचानना कठिन ही था. मक्खियों के खिलाफ दूसरा तगड़ा आंदोलन तब किया जाता, जब ग्राहकों के आने का समय हो जाता या दही की कंतरी या जलेबी की ठंडी चासनी में चार-आठ मक्खियां चिमट कर दम न तोड़ चुकी होतीं. बिंदा के झल्लाने पर उसकी साली असिया भिन्न-भिन्न करती निकलती और जलेबी, बताशा, शकरपारा, लड्डू, बूंदी या पेड़ों की थालों पर बारी-बारी से पंखा झलने का तमाशा करने लगती. ग्राहक जुटने लगते.

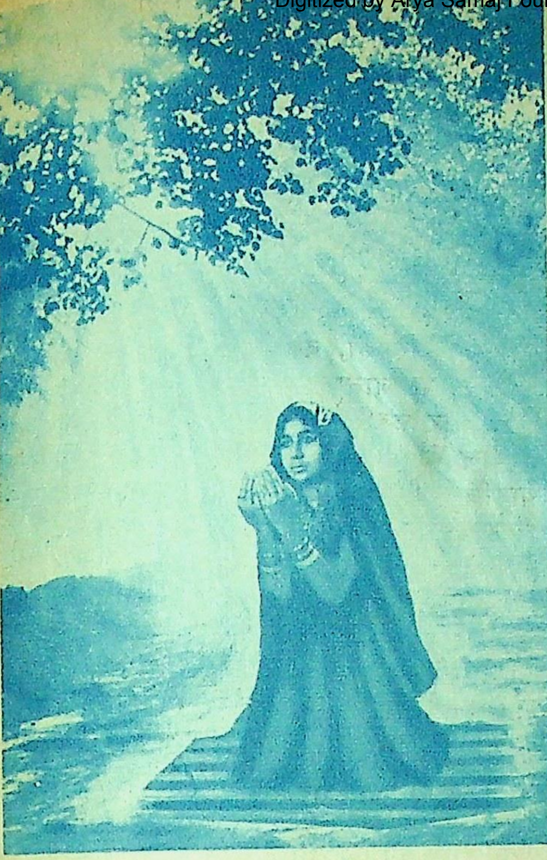
मुरला बीड़ी पीकर निश्चिंत हो, तीली से कान का मैल निकालने लगता. मोहल्ले में संडासों की सफाई का काम तब तक जोरों से शुरू हो चुका होता. सर पर कनस्तर लिये मेहतरानियों की हिलती और आपस में ही टकराती छातियों को देखते हुए उसका ध्यान तब टूटता जब नाले में कोई बेंग फुदकता. नाले के किनारे कतार बांधे नंगे बच्चे चूतड़ लटकाये बैठे रहते. कुछ तो हमेशा वहीं जमे रहते. कुछ के मुंह भी चलते रहते.

राजो सोनू के फतुए की गांठ बांध कर नाले के किनारे बैठा जाती—इस पर जरा नजर रखियो जी. . .

—शामू कहां गया है, मुरला जैसे सड़क से पूछता.

—गया होगा, बेकरी की तरफ.

मोहल्ले के सभी होनहार, जिनकी-जिनकी टांगें सीधी हो चुकी थीं, उनका पहला काम था—सुबह, अल्ल सुबह मंसूर मियां की बेकरी के सामने खड़े हो जाना. आजकल मैदा जिस भाव ब्लैक से मिलता



● सत्यपाल भारद्वाज

है, उससे हिंदुस्तान छाप 'स्लाइस्ड मिल्क ब्रेड' बनाने में बड़ी दुश्वारियां थीं. मंसूर मियां का ब्रेड होटलों में जाता, कुछ ब्लाक के अस्पताल में और कुछ बंधे-बंधाये ग्राहकों के पास. लड़वा, तलवार, कटार, तिकोनी या गोला जैसे नाम से पुकारे जाने वाले बिस्कुटों या बनों की खुरचन का ढेर भी गलियों की सफाई के समय निकलता था. उस बुहारी जाती हुई दौलत के दरवाजे से बाहर आने के पहले ही लड़के उसे झपटने के लिए झगड़ पड़ते या सरफुटौवल कर लेते. तब उनके मां-बाप को खानदानी झगड़ा करना पड़ता. कभी-कभी इस झगड़े में हिंदुस्तान-पाकिस्तान के झंडे और डंडे लहराने लगते और गांधी या जिन्ना भी चार-चांद लगा जाते.

राजो ने बेकारी का नाम सुना तो उसके माथे की नस एक बार तड़की पर उसने पांव नहीं पटका. इस महीने के बीतने के बाद शामू को प्रदीप प्रिंटर्स में सुबह ही चला जाना पड़ेगा क्योंकि दस-ग्यारह साल का लड़का पढ़ना छोड़ कर बड़ी आसानी और ईमानदारी से ट्रेडल मशीनों की सफाई कर सकता है. ग्राहकों को गिलास धोकर पानी पिला सकता है...चाय और पान ला सकता है. ..

शामू को प्रेस ठेलने के पीछे मुरला की चाल थी... वह बताना चाहता था कि वह हराम की कमाई खा-लुटा नहीं रहा—पसीने बहाता है तो राशन उठाता है. पिछले आठ-दस साल तक तो वह केवल मटरगश्ती ही करता रहा. काम खोजने का बहाना कितना अच्छा था, पहले दासू बाबू के रिक्शा खटाल में मरम्मत-मिस्त्री था. जिस दिन उसने एक रिक्शा 'फिट' कर दिया, उसी दिन उसे साठ रुपये महीने मिलने की बात तय हो गयी. दासू बाबू खुद मुरला के घर आये थे और बुढ़िया को कहा था—अब तुम पोते का शादी बनाउइ देउ...लड़का कमासुत होय गेया..

बुढ़िया दौड़कर मदन सोनार के यहां गयी. सोने की चार चूड़ियां बंधक रख आयी. फिर घर-घर मंडराती फिरी. सबके यहां एक ही रट 'मुरला के लिए सन्हौला में एक लड़की देखी है —तुम लोग जरा देख आइयो... भय्या. पसंद आने पर पनचढ़ी कर दीजियो. मैं अकेली सबासिन...बुढ़िया...कहां-कहां दौड़ती फिरूं...तुम्हीं लोगों का तो आसरा है...'

बुढ़िया किसी को फूटी आंख न भाती थी. लोगों के दरवाजों पर जब किसी का नाम लेकर पुकारती तो लोग बीवी के पास तक से उठ कर बाहर चले आते ताकि वह घर न घुस आये और जाने का नाम ही न ले. लोगों ने ठंडी-सी 'हां-हूं' करके उसे टाल दिया.

हफ्ता भी नहीं बीता था कि शनीचरी रात को मोहल्ले के सभी घरों की बत्तियों की टेन अचानक ऊंची हो गयी. हरकिशोर बाबू जल्लाद की तरह हाथों में नंगी भुजाली और टार्च लेकर बुढ़िया के बरामदे पर चढ़ आये और दरवाजे पर एक लात जमायी. दर-वाजा भिड़का भर था—भड़ाक से खुल गया. बुढ़िया हड़बड़ाकर उठी.

—मुरला कहां है ?

—क्या हुआ, बुढ़िया का जबड़ा खुला रह गया. यह क्या ! वह कुछ समझ ही न पायी.

हरकिशोर बाबू ने घर के सारे सामान को लात मार-मार कर एक दूसरे में घोंट दिया. दूसरे लोगों ने भी उठा-पटक में खासी मदद दी.

—आज वह घर लौटा ही नहीं.. हरि बाबू... बुढ़िया झूठ बोल गयी और उसने लोगों के पांव पकड़ लिये, ...वह खटाल पर ही सोय गया होयेगा आज. ..

—अब कभी इस मोहल्ले में आ भी नहीं पायेगा बुड्ढी, समझी आयेगा तो इसी भुजाली से जिबह कर थोकचा कर दूंगा...हरकिशोर बाबू ने कोतवाली मुहावरे में इतना ही कहा और धार चमकाते चले गये. शायद 'डेलीब्रेड' बेकरी के कारीगरों के साथ जुए के अड्डे पर जमा हो— उसे ढूंढ़ निकालना ही था.

मुरला तब तक छोटी लाइन की गुमटी नं. तीन के पार, सीमेंट की एक ठंडी बेंच तर चितंग लेटा हुआ था. सुरजा उन दिनों उसका नया-नया शार्गिद बना था. उसने शिवलिंग छाप सुर्ती को हथेली पर रगड़ा—फिर क्या हुआ गुरू...छोड़िया तो बमक गयी होगी.

—साली एकदम गरमा गयी थी....इस उमस में ब्लाउज कौन डाले...लेकिन ...साड़ी उठाने दे ही नहीं. मेरा मन तो औना गया.: .जोर-जबरदस्ती में उसका मामू जाग गया होगा...साली की खातिर इतना जोखम उठाया...और...खैर...अरे, मैं तो पीछे गोहाल

की तरफ कूद गया. फिर [illegible]
मुरला अब तक सांसों में अटक रहा था...

—गुरु, तुमको तो उसी दिन 'ओनामासीघंग' कर देना था जिस दिन लौंडिया खीर-दालपूरी बांट गयी...

—अरे, बुढ़िया दादी. . .हरामजादी . . .बरामदा छोड़ती ही नहीं. हरदम किराये की कथरी सीती रहेगी या पापड़ बेलती रहेगी.

—घर भी तो चलाना है गुरु. . .लो. . .सुरजा ने चुटकी में सुरती आगे बढ़ायी.

—अरे काफी रुपये जमा रखी है. बाजार में एक दुकान किराये पर लगी है. वैसे घर और दुकान के लिए उसके देवरों में अरसा हुआ गोतियारी झगड़ा चल रहा है. एक देवर तो मोहरिल है. लगता है सब वही हथिया लेगा. मैं बालिग हो गया हूं. पर मेरा कोई हिस्सा या हक निकलता नहीं है. मुरला ने सुरती को कल्ले में दबा लिया और आंखें बंद कर लीं.

★ ★

सुबह होते ही, बुढ़िया ने सर पर आसमान उठा लिया— अरे एक मसोमात की हाय क्यों लेते हो. . . मेरी तरह सबके नसीब पर बज्जर गिरे. . .सबकी मांग मेरी तरह सूनी सो जाय. मुरला का कलेजा खानेवाले राक्षसों . .अपने बेटे और बहू-बेटी का खून क्यों नहीं पीते! कहां हो. . .हो हर किशोर बाबू. . .मुरला आ गया है. . .उसको काट कर देवी मैया थान में बलि दे दो. . .बिना माय-बाप का बेटा. . . किसी से कुछ मांगता है भी क्या. . . इन्हीं ध्रुव पदों के साथ वह झोंटा झटकाती जगदीश ठठेरा, महावीर कसेरा, अर्जुन पंसेरा, भीमा आतिशबाज, दीना मास्टर, इसरो मिस्त्री और लड्डू पहलवान के यहां गयी. मुरला की शादी की चर्चा भी कर आयी. . .बाबू जवान लड़का है. . .किसी को फूटी आंख नहीं सुहाता. . .मुहल्ले में न जाने कितनी छिनालें कोठे से उठ-उठ कर यहां आ गयी हैं. मेरे मुरला को कोई डाइन खा जायगी तो मैं . . .किसके आसरे जीऊंगी हो. . .बाबू फिर वह थूक घोंट कर वही-वही बयान देती. . .अरे मैया. . . कुछ तो तरस खाओ. . .मेरे समांग में तो कीड़ा फूट रहा है. . .

लड्डू वीरयुवक व्यायाम शाला में बनेठी भांज रहे थे. वे मोहल्ले के नये तुर्क थे. अपनी पसलियों को बटोरते हुए उसने सैंडो गंजी पहनी और हनुमान चौरा के सामने जाकर डकराया—कौन माय का लाल है जो मुरली भाई को काट देगा. . .एक बार बोल दे. . .बोल दे, बजरंगबली की जय. . . सींकिया पहलवानों की टुकड़ी ने लंगोट की छोरों को कस लिया और फतवा दिया, लड्डू उस्ताद की जय! ऊपर हनुमान-ध्वजा फड़फड़ाने लगी.

शगुन बनाकर शादी का दिन ठीक कर लिया गया. अगुआ बने लड्डू लाल. पास ही गांव की शादी थी—बहुत ही कम लोग थे, जो बाराती जाते. लड्डू लाल की विधवा बहन किसी पनेड़ी के साथ भाग गयी थी. . .

[illegible] पाये थे. मुरला के कारनामों को तो लोगों ने कंठस्थ कर रखा था. खैर, व्यायामशाला के शोहदे-शागिर्द ही काम आये. उन्हें पत्तों पर पूरी-कचौड़ी , रतुआ, बुंदिया और दही परोस कर बुढ़िया विवाह की सामग्री और रुपये निकालने भीतर गयी तो दो घंटे से ऊपर हो गया. बारातियों को उबासियां आने लगीं. लड्डू लाल ने 'मम्मा. . .मम्मा' कहकर कमरे के अंदर झांका तो पाया—चावल, दाल, आटा, के मटके लुढ़के पड़े हैं. आलू-प्याज, कद्दू-कुम्हड़े सब आंगन में फिंके पड़े थे. शादी में आयी हुई सबासिनें ढोल-ढकना छोड़ बुढ़िया को बांधने की कोशिश में थीं. बुढ़िया की आंखों से लावा भकभका रहा था और मुंह से झाग. . .बाईस सौ रुपये की पोटली चावल के हंडे से गायब थी. मुरला पहले तो कुछ समझ ही नहीं पाया, फिर अचानक फूट-फूट कर रोने लगा. लड्डूलाल थाने की तरफ बढ़ गये.

इतने सारे ड्रामे और हंगामे के बीच शादी हुई. घर में बहू भी आ गयी. गलसेंकी और चौकचुमौना के बाद औरतों ने बहू का मुखड़ा देखा और एक कोने में जा कर मुंह बिचकाना शुरू कर दिया. चौड़ी काठी की ठिंगनी बहू— फैली नाक और मोटे होंठ. रंग भले ही कुछ साफ था. बुढ़िया ने पता नहीं, फिर कहां से कुछ रुपये इकट्ठे कर लिये—कहीं जमीन से खोद कर निकाला या जेवर गिरवी रख आयी. लड्डूलाल ने बहू-बिदाई की रात को, अपने बाप की याद म दारू पी. बुढ़िया उसे अपने हाथों खस्सी का मांस और परोठा खिला रही थी. लड्डूलाल अघा कर उठे—ऐसे नहीं मम्मा. . . .एक दिन तुम्हारे हाथ की बनी मछली खाऊंगा तब फिर. . . बताना. . . साले की बोटी नुचवा दूंगा.

बुढ़िया रेंगती हुई बरामदे से बाहर निकली और नाली के किनारे एक टांग फैला कर अकड़ गयी. मुरला ने मुंह फेर लिया. सुबह के नौ बज रहे होंगे. उसने अंदाज लगाया. बायीं कलाई पर घड़ी के पट्टे का सफेद निशान भर बाकी था. घड़ी बंधक में चली गयी थी, पैंसठ रुपये में. उसने सोनू को अपने दोनों हाथों से उठाया. सोनू का वजन पिछले दो महीने में आधा हो गया है— एकबारगी वह डर से सिहर गया.

—अरे, इसके चूतड़ पर पानी डाल दो, मुरला ने उसे आंगन में बहुत धीरे-धीरे शीशे के मर्तबान की तरह रखा.

—और काम ही क्या है, जिंदगी भर गांड पर पानी ही उझलाते रहो, राजो बुदबुदाती हुई तो निकली पर सोनू को देख कर उसकी झुंझलाहट कम हो गयी. कैसा पाखाना हुआ था?

—मैंने नहीं देखा.

—इधर हफ्ता भर पहले पेट से केंचुआ गिरा था. तुम्हें चिट्ठी में लिखवाया नहीं, तुम बेकार अंदेशा में रहते. . .

—मेरा तो मन कहता है कि इसे सुशील बाबू होमियोपैथ को दिखा दूं. . . .मुरला ने कहा.

बाहर बरामदे पर बुढ़िया गरज रही थी— पानी देना बहू.

—दादी चिल्ला रही है. मुरला ने ध्यान दिलाया.

—चिल्लाने दो बुड्ढी को . . . आज भोर से तीन बार हग चुकी. पानी का अकाल वैसे पड़ा रहा है. रास्ते का चापाकल भी खराब पड़ा है. हलवैया के यहां से पानी खींचते-खींचते दम फूल जाता है.

—तुमने मुंह-हाथ धोया . . . मुरला ने बात बदली.

राजो को यह तो अरमान रह ही गया था कि सुबह नहा-धो कर गोविंदजी के दरस को जाए और गोचर-नामिरित पा सके. बाल-बच्चों वाले का और होता ही कौन है? नैहर में रहती थी तो कभी-कभार गंगाजी में नहा आती. मनसा घाट तक तैर भी आती. तब उसे क्या मालूम था, पुआती औरत को ज्यादा देर नहीं नहाना चाहिए. भारी छाती लिये भी वह पानी से खेलती रहती— पता नहीं, फिर कब नैहर आना हो. कातिक पूनो की ठंडी धार में नहा कर आयी तो आंखें मोटी हो गयीं. ननकी के मुंह में दूध लगाया ही था कि ननकी का कलेजा घर्र-घर्र बजने लगा था. छोटा-सा अटट्ट गांव. ननकी की नन्ही-सी जान बचाने के लिए साइकिल पर राजो के भाई नंदेसर शहर की तरफ दौड़े. गाय का पुराना घी गरम कर गले में मालिश भी किया. मुरला भी नंदेसर के साथ ही लौटा— पर चौदह महीने की ननकी की आंखें बीस घंटे में ही जस गयीं. राजो पत्थर बनी रही.

कितनी मिन्नतों के बाद, गंगा मैया ने उसकी गोद हरी की और सूनी भी कर गयी. अब राजो को गंगा मैया से डर लगने लगा था. नैहर भी जाना होता तो टाल जाती. रेल से पुल पार करते समय वह आंचल से कुछ पैसे निकाल कर पानी में उछाल देती— गंगा मैया, कुछ दे न सको तो मत दीजिए पर दे कर छीन मत लीजिए.

बुढ़िया गालियां देने लगी थी— आज मेरा समांग ऐसा हो गया है, तब न. . . . कुछ देर चुप रहने के बाद वह नरम पड़ी— शामू कहां गया है. . .बहू?

—चूल्हे में, राजो ने डपट कर कहा.

—ऐसे झमार के काहे बोलती है गे. . . .चूल्हे में जाय तेरा भड़वा बाप, बुढ़िया खिसिया कर दोनों हाथ टेक-टेक कर बरामदा पार कर जाती. पानी नहीं देगी तो मैं जा कर तेरा हड़िया-ढंकना सब चूघू दूंगी. . . मत डाल पानी. . . . बुढ़िया झपटने को फिर आगे बढ़ जाती.

—मैं तेरा हाथ तोड़ कर रख दूंगी बुड्ढी . . . .

—मैं भी तेरा लेल्हुआ पकड़ कर मरोड़ दूंगी. . . . री फोकची. तेरे थोथना में आग लगे मुंहझौंसी. . . पांव तोड़ कर संतोख नहीं हुआ. . . .हे भगवान. . . . और बुढ़िया बिलखने लगी और ऐसे ही वाहियात टुकड़ों को जोर-जोर से अलापने लगी.

मुरला तब तक पाखाने से दौड़ आता और मारने का डर दिखाता— अब चुप्प भी रहेगी कि मारूं लोटा फेंक कर. . . . चुप हरमि. . .ज्जादी. . .

बुढ़िया की घिघियां हिचकियों में बदल जातीं. यह सिलसिला रोज का था. पास-पड़ोस के लोगों की आंखें इस सदाबहार झगड़े को देख कर पथरा चुकी थीं और कान भोथे पड़ गये थे. कौन किसको दोष दे? पूरा मोहल्ला एक तरफ से सड़े आम की टोकरी की तरह दागी था.

बुढ़िया के लिए अलग से एक बाल्टी में पानी रख दिया जाता. उसी में उसे दिनरात गुजारना पड़ता— चाहे कुल्ला करे, सर के जूं धोए, थाली-बाटी मांजे या ना मांजे.

पिछले चार साल से, जब से उसकी टांग टूटी है— घुटने के जोड़ लिथड़-लिथड़ कर चीकट हो गए हैं. जांघ के ऊपर खाल सिकुड़ कर पटसन की बोरी की तरह रुखड़ी हो गयी है. किसी को अगर यह नेक खयाल हो कि इसकी टांगों को सीधा करना चाहिए तो आरा मशीन से तख्ते चीरने की तरह उसे भी चीरना होगा. टांगें सीधी हो ही नहीं सकीं. . . . किसे क्या मालूम था कि उस रात गाज पड़ेगी.

बुढ़िया ने तो इतना ही कहा था— बिना मछली मैं खाना नहीं खाऊंगी. . . और थाली आगे सरका दी थी.

राजो ने बाबा बासुकीनाथ से कोई मन्नत मांगी थी, इसलिए मछली खा-पका नहीं रही थी. चौथे हफ्ते बुढ़िया ने मुरला को फिर टोका— बेटा आज सोमवार है. . . न हो एक पाव पुठिया ही ले लेना. . . .

मुरला ने कहा— हां-हां, ले आऊंगा. . . .

बेफिकर बुढ़िया बीड़ी सुलगाने लगी. सोचा, जब तक मुरला हटिया से मछली ले कर आये, वह लछमन बाबू की बीवी को कथरी ही दे आये. बहू को कह गयी— मछली आ जाये तो शामू को भेज कर डाक बाबू के बंगले से बुलवा लेना. . . . मैं आ कर खुद बना लूंगी. राजो नाक सिकोड़ कर रह गयी.

बुढ़िया को आने में देर हो गयी. सोचा, राजो ने सब तैयार कर रखा होगा. लेकिन रसोई में कोई 'बिषैन' बू नहीं थी. राजो सोई हुई थी. बुढ़िया ने सोचा, उसके पेट में बच्चा है— छोड़ो भी. ढंकी हुई थाली खोल कर देखा— वही एक मुट्ठी भात, मांड़ से पतली की गयी दाल, आलू का भुरता. . . नमक और आग में जली भुनी मिर्च. बुढ़िया जैसे लू में बड़बड़ाने लगी— दिन-दिन खाने में भी आग लगती जा रही है. न तरकारी का पता, न मसाले का. भात दुबारा तो परोसा जाता ही नहीं है और वह न थाली में जूठन ही बचा पाती है. शामू छोटा था तो आध सेर, तीन पाव दूध भी लिया जाता था. . . अब दूध-दही घी के लिए कभी कोई पूछता ही नहीं. मछली से खाना थोड़ा रुचता है तो अब मछली भी बंद. आखिर. . .किराये की रकम तो मिलती है ही, तीन कोरी. . . साठ रुपये और आठ रुपये. . . . सत्तर में दो रुपये कम. . . .

नत्था हलवाई से वह पाव भर दही उधार ले आयी और किसी तरह खाना गले से उतारा.

दूसरे दिन फिर उसने टोका—बेटा, हटिया जरा जल्दी चले जाना. . .सुबह-सुबह झींगा मछली आती है. . लड्डू बोल रहा रहा था. . . कि .

—हां-हां, सुन लिया, मुरला की आवाज एकदम चिढ़ी हुई थी. उसे अपमानित करता हुआ मुरला चप्पल घसीटता बाहर चला गया. वह आज फिर चुप रह गयी.

तीसरे दिन वह खुद हटिया गयी और गोरला मछली ले आयी. राजो के पेट में दर्द था— सह सोयी ही रही. बुढ़िया ने मछली को प्याज में भून कर लाल किया. फिर झोल में गरम मसाला डाल उसे धीमी आंच में चढ़ा नहाने चली गयी.

* *

मुरला दोपहर बाद लौटा . बुढ़िया ने बड़े उत्साह से उसका खाना परोसा. राजो उठ कर खटिया पर बैठी थी. मुरला के सामने थाली आयी. . . भात. . . कलाई की सोंधी दाल. . . रायते की चटनी. . . आलू का भुजिया. . .. उनका रंग तपने लगा. और जैसे ही मछली की बाटी सामने आयी कि वह तमक कर उठ खड़ा हुआ और थाली को एक लात मारी. . . . सारा खाना आंगन में छितरा गया.

बुढ़िया सन्न रह गयी —क्या हुआ बेटा?

—हरामजादी यहां बेटा कहती है. . . मुरला उबलने लगा. . . और बाहर जाकर सारी दुनिया में डुगडुगी पीटती है. . .मुरला चोर है, जुआरी है, रंडीबाज है. . . मेरे किराये के रुपये पचा गया. . .

बुढ़िया बिलखने लगी — हारे बेटा ऽ. . .अरे किसने तेरा दिमाग खराब कर दिया है?

—चोप् प. . . वह तीर-सा सनसनाता बाहर निकल आया, जो स्साली अपना बेटा-भतार खा गयी. . . वह पोता और परपोता चीन्हेगी?

बुढ़िया ने अपना बिसूरना जारी ही रखा. फिर राजो के पास उंगलियां नचाने लगी – हाय गे मतरखौकी . . . तुमने तो मेरे बेटे पर मंतर मार दिया है. . . राजो खाट पर पड़ी रही.

कलेजा पीटते-पीटते बुढ़िया घर से बाहर निकल आयी— एक कुटिया मछली के वास्ते इत्ता बड़ा तूफान मच गया हो बाबू. . . और वह धाड़ मारकर पछाड़ खाने लगी.

राजो ने बाहर निकलकर कहा— भीतर आकर नाच बुढ़िया.

—तू भीतर खाट पर जाकर राजपाट कर. . .

—गाली मत दे बुढ़िया, वर्ना. . .

—वर्ना. . .वर्ना क्या करेगी गे खसमखानी, बुढ़िया ने मुट्ठियां खोल दीं.

—तेरे मुंह में गू के पिल्लू पड़ेंगे बुड्ढी. . .

—और तेरी मांग में खाक. . . बड़ा सिंदूर भमकाती है. जिसकी खातिर मटकती फिरती है. . . उसके मुं में तेरा बेटा आग देगा. . . और वह हाथ नचाती फूटने लगी.

राजो ने उसका हाथ पकड़कर खींचा तो बुढ़िया ने उसकी साड़ी का छोर पकड़ लिया. मोहल्ले के लोग जमा हो रहे थे. राजो की पेट-पीठ खुल गयी थी. . . पेट में छः-सात महीने का बच्चा ! ! उसने फिर जोर लगाया और बुढ़िया को भीतर लाने की कोशिश की . . . पर बेकार. बुढ़िया जमीन से चिपक गयी थी. तब वह खुद घर लौटने को तैयार हुई. . . पर बुढ़िया ने उसकी साड़ी का छोर न छोड़ा. . . —किसके पैसे का खाना खा-खाकर पेट फुला रही है. . . फोकची. . . मतार आज तक एक पैसा कमाकर लाया भी है?

राजो ने आखिरी कोशिश की. दांत पर दांत जमाकर उसने जोर लगाया. आंखों के सामने चिनगारियां नाच उठीं . . . अंधेरे में. उसने अपनी चिंता छोड़ दी और बुढ़िया को पीछे धकेल दिया. बुढ़िया छिटककर सामने गहरे नाले में बड़ी आसानी से जा धंसी. राजो ने अपनी साड़ी को खींचा, समेटा-चिथड़े पेटीकोट पर लपेटा और दौड़कर घर में घुस गयी. भीतर से हुड़का लगाकर वह फफक-फफक कर रोने लगी. स्कूल से लौटने पर शामू ने बहुत दरवाजा पीटा. . . पर दरवाजा नहीं खोला राजो ने.

बुढ़िया को लोगों ने जबर्दस्ती नाले से घसीटकर बाहर निकाला. वह निकलना ही नहीं चाहती थी. वह सिर्फ मुरला को खोज रही थी, जो सिनेमा देखने शहर चला गया था. कीचड़ से लथपथ और सड़ांध से लिपीपुती गलीज बुढ़िया दरवाजा छेंक कर बैठी रही. लोग समझाते-समझाते हार गये. . . व्यायामशाला के सभी पहलवान और लड्डू उस्ताद उसे कपड़ा बदलने और पानी डालने पर राजी न कर सके. बेशरम बुढ़िया टस-से-मस न हुई. रह-रह कर उसे दौरा पड़ता और वह गालियां धौंकने लगती —तेरा सत्यानाश हो . . . तेरा बेटा भी तुझे इल्लत में धकेल कर तुझ पर मूत दे. . . अगले जनम में भगवान मुझे तेरी पतोहू बनाये तो. . . शामू बैठे-बैठे ऊंघने लगा था.

बुढ़िया ने टांग मोड़ने की कोशिश की. . . पर उसे लगा टखने के अंदर कुछ रोड़ा-सा अटक गया है. वह चाह रही थी कि उठे पर किसी जिद की वजह से वह जमी रही. बिना मुरला के उठाये और राजो के पांव पर गिर कर मांफी मांगे वह उठेगी नहीं.

शामू की नींद खुली तो वह कुछ समझ ही नहीं पाया. हाथ पकड़ कर उठाया भी — उठ न गे दादी. . . पर बुढ़िया ने हाथ झटक दिया—मैया ने घर से नाले में धकेल दिया, तू मसान में डाल दे रे बेटा. . . हाय रे बेटा. . . हाय गे मुरला कनियान . . तेरे बप्पा के खानदान में घुन लग जाये . . .

सारे मोहल्ले की आंखें सास-पतोहू की नौटंकी की अभ्यस्त थीं. बुढ़िया के दो-दो देवर ऐसे फसादों के होने का इंतजार करते रहते थे. एक ने रिक्शा भी बुलवाकर रोके रखा. पर बुढ़िया के जेहन में यह बुरी तरह बैठा था कि इनको मुझसे कुछ लेना-देना नहीं —मेरे नाम से किये गये किराये की दुकान और मकान का केवाला अपने नाम से करा लेंगे और फिर जहर परोस कर खिला देंगे.

लड्डूलाल ने भी बहुत हाथ-पांव जोड़ा — चल

अम्मा, मेरे यहां रहना. पर बुढ़िया मुरला की बाट जोह रही थी. आज का दिन देखने के लिए ही वह मुरला को मौत के मुंह से खींच लाया था. अपने भाई के बेटे की आखिरी निशानी — सारा कटिहार शहर जब प्लेग की मुट्ठी में दम तोड़ रहा था, वह उसे लेकर चली आयी थी — मौत की आंधी से बचाकर. उसका गू-मूत फींकती रही. संगम नहाने गयी थी तो वहां से लटाई ला दिया था— चांदी के छोटे-छोटे घुंघरू जड़वा दिये थे. पतंग उड़ाते-उड़ाते मुरला जब भागवत महतो की छत से गिर कर सुन्न पड़ा था तो भागलपुर सदर अस्पताल के बरामदे पर तीन हफ्ते लगातार उस कड़कड़ाती ठंड में पड़ी रही थी.

मुरला आया तो उसकी कनपटी पर की रगों में आग नाचने लगी. घर के दरवाजे पर से लोग जा चुके थे. सीतो कलवार बाहर खटिया निकालकर मसहरी टांगने की फट्टियां कस रहा था.

बुढ़िया ने कलेजा पीटना शुरू कर दिया. मुरला पर कोई दूसरा ही रंग चढ़ा था. उसने बातों को कितना सुना, कितना समझा, कौन जानता है! आदमखोर मच्छरों के बीच शामू, बरामदे पर, जहां वह दातुन-कुल्ला करता है — सोया हुआ था. पलटकर मुरला ने दरवाजे पर जोर की एक लात मारी—दरवाजा फिर भड़ाम से खुल गया. राजो ने उठकर लालटेन की टेम को ऊंचा करना चाहा ही था कि दूसरी लात उसकी पीठ पर पड़ी.

* *

झगड़ा वहीं खतम हो गया. बुढ़िया का छाती कूटना बंद हुआ. शामू की नींद खुल गयी थी. मुरला का नशा तब झड़ा जब एकदम सुबह उसे पेशाब करने की जरूरत हुई. कस कर बांधे गये नाड़े की गांठ खोलता हुआ जब वह गली पार कर सामने आया तो पाया — बुढ़िया दरवाजे से सटी सोई थी. गले तक नाली का कीचड़ सूख कर स्याह हो चुका था. कपड़े की तहें चिपक गयी थीं. लगता था, लोटे की कोई जंग लगी टूटी-फूटी मूर्ति कहीं खुदाई से मिली हो. बुढ़िया का जबड़ा एक तरफ टूटा और लटका हुआ लगता था. नथुने में तारकोल डाल गया दीखता था — सन जैसे सफेद बाल ग्रीज में लिथड़ गये थे. आंखों को जैसे किसी ने गर्म सलाखों से दाग दिया था. मुरला डर कर पीछे हट गया. उसे लगा, बुढ़िया की एक टांग कहीं से बहुत छोटी हो गयी है.

उसने बुढ़िया के पास तीन-चार तिलचट्टों को चक्कर काटते देखा. उसका मन भिन्ना गया. नाले में पेशाब उतार कर वह वापस आया तो उसने देखा— राजो आंगन में मुंह लटकाये बैठी है. . . नीचे आंगन में ढेर सारा खून थक्का होकर जमा है.

फिर वही भाग-दौड़. . . किराये के मजूर राजो को खाट पर लाद कर फिर भागलपुर सदर अस्पताल के फीमेल वार्ड में दाखिल कराया गया. पेशाब-पखाना-थूक-खून जांच, दवाइयां और सुइयां और सास-पतोहू के जेवरों के बंधक का सिलसिला. . . नतीजा बहुत बुरा नहीं हुआ, राजो तो बचा ली गयी, बच्चा नहीं बचा.

इस आड़े वक्त में मुरला की बड़ी बहन सिमिया बहुत काम आयी. उसने ही सारा घर और मोर्चा आकर संभाल लिया था. मुरला को भी समझाती. कोई रोजगार करने की सलाह देती—बादाम तो बेच सकते हो. बुढ़िया के मरने के बाद दुकान का किराया तो दूर, लोग तुम्हें घर से बाहर उठाकर फेंक देंगे. न हो, कुछ रकम बचाकर रिक्शे ही बनाओ. उसे किराये पर लगाओ.

बुढ़िया अलग राग अलाप रही थी. वह इस काबिल भी न थी कि बैसाखी का सहारा ले चल सके. पहले तो कुछ दिन झाड़-फूंक और राख की मालिश चलती रही. पर जब हड्डियां तड़कने लगीं और गांठ सूजने लगी तो देवरों के दबाव में आकर मुरला ने बुढ़िया को अस्पताल में भरती करा दिया. एक्स-रे से पता चला कि बायें चूतड़ की हड्डी टूटकर घिसक गयी है और जिसके वापस जुड़ने का कोई इमकान भी नहीं है. इस बुढ़ापे में हड्डी अब खाक जुड़ेगी. अस्पताल के बरामदे में छः हफ्तों तक पड़ी रही बुढ़िया. फिर पीठ से लेकर जांघ और टखने तक प्लास्टर चढ़ा दिया गया. सफेद प्लास्टर की आधी कब्र साथ लिये बुढ़िया खाट पर घर लौटी. लेकिन नतीजा और भी खराब हुआ. बुढ़िया की बायीं टांग सूखने लगी और खाली होती जगह से खटमल और भुनगे बुढ़िया की देह पर चढ़ जाते, तब बुढ़िया जबड़ा भींच-भींच कर गालियां निकालने लगती.

हार कर मुरला ने मेटल कटर, जिससे वह रिक्शे की बॉडी पर ठोंकी जानेवाली अलमुनियम की शीट काटता था, लाकर बुढ़िया का प्लास्टर कतर कर फेंक दिया. टांगों की दुर्दशा हो गयी थी— जगह-जगह लाल चकत्ते उभर गये थे. कहीं-कहीं मांस सीझ गया था. लगता था, पानी में उपलाती किसी लाश की टांग काटकर जोड़ दी गयी हो. वैसी ही सड़ांघ तैर रही थी, जैसी बुआली मछली के सड़ जाने पर होती है. लेकिन इस सफेद कैंचुल को उतार फेंकने के बाद, बुढ़िया और भी जहरीली हो गयी. वह समझ गयी आखिरी सांस तक उसे इसी बरामदे पर रेंगते रहना है. मुरला इन दिनों काफी परेशान रहा — लेकिन उसने दो काम किये —थोड़ा-बहुत कर्ज लेकर देवी थान के पीछे की जमीन किराये पर लेकर फूस की छौनी डाल दी और चार रिक्शे तैयार कर चलवाने लगा.

सादे कागज और रसीदी टिकट के ऊपर बुढ़िया के अंगूठे का निशान लेने के लिए मुरला को भी काफी कुछ कर गुजरना पड़ा. एक हफ्ता तक लगातार मछली लानी पड़ी—कभी पुठिया, कभी गोरला तो कभी मिरका या कतला. कटहल की तरकारी, कदीमा का खटमिट्ठा चक्का, कलाई की दाल, मेथी का साग और बूंट कलेजी बुढ़िया की कमजोरियां थीं. धीरे-धीरे यह सब हंगामा शांत होने लगा तो बुढ़िया भुनभुनाने लगी. वह शामू को भेजकर मोहल्ले के घरों का चक्कर लगवाती और कटोरे में कहीं से दाल, तरकारी या चटनी मंगवाती. राजो कुछ दिन तो बर्दाश्त करती रही. लेकिन जब शरीर में ताकत फिर आयी तो वह शामू को बहाने से बाहर भेज देती. बुढ़िया के बार-बार गुहारने और निहोरा करने पर वह छन्नी लिये चौके से बाहर निकलती और

लंगड़ी को चेता जाती — खबरदार जो मेरे बेटे को भिखमंगा बनाया, बुड्ढी. . . कोई जहर दे देगा तो दुनिया मुझ पर ही थूकेगी. . .

—तुमको चुम्मा कौन ले रहा है. . .गे. . . महा-रानी. . . बुढ़िया दांत पीसती.

मुरला धीरे-धीरे निश्चित हो गया. उसके छः-छः रिक्शे चल रहे थे. शाम के बाद रिक्शाखटाल पर अद्धा और माल्टा की बोतलें खुलने लगी थीं. शामू बाप की मदद करने लगा था — दौड़कर पकौड़े, कचरी, मसालेदार चाट और दालमोट या भुने चने और प्याज ले आता. जिस शाम लालटेन की टिकानी उचकाकर वह बीड़ी सुलगाकर ले आया, उस शाम गिलास को फर्श से टिका सुरजा ने उसकी पीठ ठोंकी — शाबाश भतीजे, दौड़कर जा और माय को बोल आ कि आज बाबू और चच्चा खटाल पर ही खाना खायेंगे. तुम खाना तो ले आओगे न !

शामू ने 'हां' वाली गर्दन हिलायी.

—लेकिन बप्पा. . . घर पर ही आकर सोयेगा. . . यह भी कह देना माय को . . . और किशोरी का गला लंबी हिचकियों में इस कदर फंसा कि वह हंस ही नहीं सका. . . आंखों में आंसू चुहचुहा गये.

मुरला उस दिन जुए में कुछ ऐसा रमा कि हफ्ते भर की कुल जमा पूंजी हार गया. इधर उसका खाना ढंका रहा और उधर राजो ब्लाउज की बटनें खोलकर बरसाती उमस में एड़ियां रगड़ती रही.

दुर्गापूजा के बाद धीरे-धीरे आसमान से बादल अलग हो गये थे. भोर के वक्त खासी ठंड उतर आती. उस समय राजो को अपने पेट में हमेशा कुछ रेंगता हुआ महसूस होता. पहले तो सारे लच्छन वह टालती रही. उसे उम्मीद न थी कि पिछले हादसे के बाद भी वह कभी मां बन सकेगी लेकिन बाद में उसे अपनी तैयारी का अहसास हुआ. बुढ़िया भी मांप गयी. . . उसके जरा-सा टोकने-रोकने पर राजो के मूंह में जो भला-बुरा आता बक देती —एक बच्चा खाकर संतोष नहीं हुआ, डायन.

कालीपूजा भी आ गयी. राजो ने नयी साड़ी पहनी. चौक पूजा. गुसाईं थान पर सिंदूर चढ़ाया. दिया जलाया. घरौंदे सजाकर चांदी से चमकते कुढ़वों में लावा और खिलौना भरा. . . अगले साल. . . तीन कुढ़वे भरने होंगे. . वह मुस्करायी. शामू बाप को बुलाने गया था — 'लक्ष्मी घर, दलिद्दर बाहर' की रस्म पूरी करनी थी. 'हुक्का-पानी' बन कर तैयार था. पटाखों की धूमधाम से कुढ़कर बुढ़िया कोने में दुबकी पड़ी थी. कपड़े के नाम पर फटा-पुराना गमछा और गुदड़ी. राजो की नयी लाल साड़ी देख कर उसकी देह में आग लग गयी.

शामू दौड़ा हुआ आया. कहने लगा—माय गे, सुरजा चाचा और बाबू में मारपीट . . और पुलिसवाला दोनों को पकड़ कर ले गया. . .

राजो दो फर्लांग तक बदहवास दौड़ गयी. सारा रिक्शाखटाल खाक में मिल चुका था. दो-तीन रिक्शावाले खाली और भरी बाल्टी लिये दौड़ रहे थे. भीड़ छंटती जा रही थी. राजो चक्कर खाकर गिर पड़ी. जब होश आया तो देखा किशोरी उस पर झुका पंखा झल रहा है. किशोरी ने ही बताया कि पिछले कई दिनों से जुआ चल रहा था. मुरला काफी रुपये हार चुक[illegible]. इसके पहले भी रिक्[illegible] बेचकर हार की रकम चुक[illegible]. आज भी दो रिक्[illegible] दांव पर हारने के बाद, सुर[illegible] उन्हें खटाल से बाह[र] खींचने लगा तो मुरला ने ज्यादती की. उसने सुरजा को रोका, जो जीता हुआ माल वहां से ले जाना चाहता था. इसी खींचतान में मारपीट हो गयी. सुरजा उफन कर बाहर निकला. उसने टायर जला कर खटाल पर फेंक दिया. फूस का खटाल . . . धू-धू कर जलने लगा. दोनों बाहर गुत्थमगुत्थी कर रहे थे कि हवलदार साहब आये और उन्हें पकड़ कर ले गये.

राजो और किशोरी तड़के ही थाने पहुंचे. थानेदार और हवलदार सभी 'दीवाली मूड' में थे. दो तीन-तीन दफा लगाकर मुरला और सुरजा को हवालात में बंद कर दिया गया था. दोनों की आंखों में खानदानी दुश्मनी का नंगा नाच हो रहा था. सुरजा की दायीं कनपटी से अबतक खून रिस रहा था— किसी भारी औजार से उस पर वार किया गया था. राजो की सिसकियों से मुंह फिराकर मुरला दीवार की पलस्तर को नाखून से खुरचने लगा था. राजो ने उसे बहुत पुकारा पर मुरला ने सर नहीं फिराया.

★ ★

आठ महीने की सजा भुगतने के बाद मुरला जब जेल से छूटा तो उसे लगा सारी दुनिया नामालूम ढंग से बदली ही नहीं, उससे नफरत भी करने लगी है. जमानत के लिए भी वह किशोरी के मार्फत बहुतों के सामने गिड़गिड़ाया था पर किसी ने उसकी ओर ध्यान नहीं दिया. बुढ़िया घर के सामने बरमादे पर से लोगों को हकार कर अपने दुखड़े रोती रही पर किसी ने उत्साह न दिखाया. लड्डू पहलवान दूर से यही बताता था—बस मम्मा. . .अभी आया. . . .

राजो अपने नैहर चली जाना चाहती पर अपाहिज बुढ़िया का सवाल था. उसकी अपनी भी कठिनाइयां थीं. पेट में बच्चा लेकर बस, ट्रेन और नाव की यात्रा. न जाने कितनी छटपटाहट और बेचैनी के बीच उसे फिर एक बेटा हुआ. पर मुरला की बहन सुमिया फिर आ गयी. खूब दौंड़-धूप करती रही. . . कैंप जेल जाकर मुरला को खबर भी दे आयी.

मुरला वापस लौटा तो नौकरी के लिए हांथ-पांव मारने लगा. अपने बहनोई की पैरवी पर उसे किसनगंज की एक खांडसारी मिल में नौकरी मिल गयी. लेकिन नौकरी का यह क्रम गन्ना पेराई तक ही बना रहा. बाकी समय उसे घर में या दूर उधर ट्वंटी नाइन खेलकर काटना पड़ा.

बुढ़िया की तिलमिलाहट अब और बढ़ गयी थी. उसके किराये के पैसों पर ही यह गृहस्थी टिकी थी. लेकिन उसे कोई एक झींगा आग में भून कर देनेवाला न था. वह यही सोचते-सोचते कि अब उसके पास रहा क्या, सो जाती. घबड़ाकर तब उठ पड़ती जब उसे लगता मुरला उसका गला दबोच कर उसके हाथ की चूड़ियां और

नाकफूल उतार रहा है.

फटा गमछा पहने वह बरामदे के एक कोने से दूसरे कोने तक भटकती रहती. किसी परिचित को पहचान पाती तो कपड़े का एक टुकड़ा पेट पर रख लेती. लेकिन इस चिथड़े का लिहाज भी उस समय टूट जाता, जब उसे नाले की तरफ दौड़ना पड़ता. उस समय उसके साथ सारा मोहल्ला अंधा हो जाता— बेशरम बुढ़िया दिनदहाड़े बाहर की नाली में कुतिया की तरह टांग ऊंची कर देती और. . .केहुनी पर टिक जाती.

मुरला जब भी घर लौटता, उसे इन सब गलीज हरकतों से कुढ़ होती. उसने टाट की एक आड़ भी बनवा दी थी पर बुढ़िया को पर्दे में कोई दिलचस्पी न थी. उसे केवल मछली से लगाव था— मसालेदार घुघनी और तली हुई भज्जी से प्रेम था. इन सबके अभाव में बुढ़िया अपनी कल्पना को साकार करती.

मुरला दो-चार दिन ठहरकर कहीं चला जाता. जाते समय जबर्दस्ती बुढ़िया के अंगूठे पर रोशनाई रगड़ किसी कागज पर टीप ले लेता था. बुढ़िया ना-नुच करती तो यही समझाता— अरे दादी, रुपये तू रख, खर्च कर और फिर देख कि कितने पैसे बचते हैं. तेरे पैसे से गुजर होती तो शामू की पढ़ाई नहीं छुड़वाता. इस कच्ची उमर में उसे प्रेस की नौकरी करनी पड़ेगी. सोनू का इलाज भी नहीं हो रहा है. . .एक तू है हर हमेशा खाऊं. . . मछली का भाव साला आसमान पर चढ़ा हुआ है.

बुढ़िया अगर नखरा कर आंखें मटमटाने लगती, हाथ-पांव मोड़ने लगती तो उसके मुंह में बीड़ी सुलगाकर ठूंसने के बाद मुरला फिर समझाता— याद रख दादी, मरने के बाद तेरे मुंह में आग मैं ही दूंगा. जो दो-चार पैसे जोड़ने हैं, वो तेरे श्राद्ध के लिए ही तो.

ऐसी चुपड़ी बातें बुढ़िया खूब समझती थी. वह आंख बंद करने को होती कि मुरला एकबारगी कड़कता— ऐ बुड्ढी, आंख खोल. . . नहीं तो एक लात मारकर पेट की अंतड़ी-भोंटी सब बाहर कर दूंगा. . . चल यहां पर लगा टीप. . . लीला कर रही है. . .

★ ★

इस बार मुरला के काम पर वापस जाने के पहले बुढ़िया की तबीयत खराब चल रही थी. . . उसे बार-बार दस्त आ रहा था. गोरला मछली वैसे ही बादी होती है— और यह लड़वा साला मौके-बे-मौके बुढ़िया को मछली खिला कर या बीड़ी पिला कर पता नहीं क्यों पोटना चाहता है. . . . बुढ़िया के पास कोई ऐसी-वैसी चीज तो नहीं. उस रात मुरला और राजो ने बुढ़िया का बक्सा छान मारा. मरिसल-सा ताला लगा था. बुढ़िया नाले की तरफ गयी तो उसका गेंदरा-मोथरा सब झाड़ कर देखा. बीड़ी रखने का डिब्बा— उसमें विक्टोरिया के जमाने के आठ-दस सिक्के थे. दांत का मैल खुरचने और कान खोदने की एक चांदी और पीतल की तीली थी. एक छोटी-सी पुड़िया में सोने की एक टिकुली थी. . . बस! मुरला बहुत उदास हो गया. . . . दुकान और मकान तो खैर जब तक बुढ़िया है, तब तक वह किसी को — मुरला का विश्वास था— मिल नहीं सकते.

जाने के पहले उसने बुढ़िया को एक बार पलटकर देखा. उसे लगा यह शायद आखिरी भेंट है. मुंह पर भिनभिनाती मक्खियों को बुढ़िया आंख बंद कर ही अपने हाथों से उड़ाने की कोशिश भर करती. सारा शरीर कहीं से सूजा और कहीं से पुराने बर्तन की तरह पिचक गया था. नाखून बेहद बढ़ गये थे जिनसे खुजलाते हुए शरीर पर सफेद धारियां खिंच गयी थीं. फटी हुई बिवाइयों ने पांव के तलवे को काट-कूट कर जैसे सारा खून बहा दिया था. वे एकदम पीले पड़ कर जम गए थे. मुरला ने कपड़ा उढ़का दिया और तेजी से बाहर निकल आया.

मुरला को काम पर गए पांच ही दिन बीते थे कि उसे तार मिला— 'जल्दी आओ— किशोरी!' वह तो तैयार ही बैठा था. इतना सोचकर कि अगर बुढ़िया एक दिन बाद मरती तो उसे एक हफ्ता की मजदूरी मिल जाती, वह मशीन हो गया. तब शायद वह शनिवार की शाम पूर्णिया चला जाता और इतवार को गुलाब बाग मेला. तार एक दिन पहले का था, खैर.

घर जाते ही रुपये चाहिए. . . बुढ़िया की लाश फूंकने में. . . इसलिए वह मिल मैनेजर से दो सौ रुपये उधार मांगने गया. सौ रुपये मिले और इस चक्कर में पहली गाड़ी छूट गयी. दूसरी गाड़ी से बिहपुर जंक्शन पहुंचा तो छोटी लाइन के इंतजार में घंटों बैठना पड़ा. कोयले की कमी के कारण या किसी हड़ताल के कारण क्या पता, गाड़ी आये न आये. बुढ़िया की लाश अब तक जल भी गयी होगी. . . मरने के पहले बुढ़िया के पास पहुंचने की साध ने उसे रुला दिया. . . . बुढ़िया किसी-न-किसी रूप में उसे मानती तो थी, उसे छोड़कर कहीं नहीं गयी. राजो ने ऐसे में रुपयों का इंतजाम कैसे किया होगा? शामू ने मुंह में आग दी होगी. मोहल्ले में और लोग हैं. . . . किशोरी और लड्डूलाल पहलवान तो हैं ही. बुढ़िया के दो-दो देवर हैं— आये ही होंगे.

दोपहर बाद गाड़ी आयी. फिर स्टीमर से बरारी घाट पार हो वह ट्रेन के आसरे में बैठा नहीं रहा. उसने एक टमटम ठीक किया— आठ रुपये में— बारह मील का सफर. दो घंटे बाद वह घर के दरवाजे पर उतरा तो उसे लगा यह उसका नहीं, दूसरे का घर है. बारिश में सारा घर धुल चुका था, हथिया नक्षत्र की बारिश. नीचे भींगी धरती और हर ओर घुप्प अंधेरा. सामने बिंदा हलवाई ने लालटेन की टेम ऊंची की. . . . टमटमवाले को पैसे चुकाने में भी उसे काफी देर लग गयी. कलेजे को ठोंक-पीट और जबड़े जमाकर वह दरवाजे से भीतर बरामदे पर आया ही था कि किसी पोटरी से टकरा गया. . . .

—कौन मुरला. . .?. . . बुढ़िया अचानक चौंक कर बैठ गयी. . . . फिर छाती पीटने लगी. . .अरे बेटा रे. . सोनू हम सबको छोड़ के चला गया रे! □□□

हिंदी भवन, विश्व भारती,
शांति निकेतन (प. बं.)

छिपे हुए हाथ

• सच्चिदानंद धूमकेतु

पूरे दो वर्ष बाद छंगुरी गांव वापस लौट रहा था. सूखी नदी में पांव रखते ही चिरपरिचित गांव की सोंधी महक भकभकाकर उसके नथुने में घुसने लगी. पीपल वृक्ष के साये में पगुरते डांगरों की रखवाली करनेवाले छोकड़े गिल्ली-डंडा का खेल छोड़ कर छंगुरी को देखते ही शोर मचाने लगे.

आधे फर्लांग से अधिक चौड़ी भरगंग के बालू भरे रास्ते पर चलता हुआ छंगुरी पसीने से तर हो गया था.

गांव बिल्कुल करीब था. बावजूद इसके छंगुरी पीपल के घने साये में सुस्ताने लगा. मवेशी चराने वाले छोकरे उसे चारों ओर से घेरकर खड़े हो गए. एक शोख लड़के ने कहा— छंगुरी भैया, शहर से इतने दिनों बाद कमा कर लौटे हो. हम लोगों के लिए क्या लाये हो?

छंगुरी को उसकी बातें बहुत भली लगीं. वह बोला—शोर मत मचाओ. मैं तुम्हें लेमनचूस खिलाता हूं.

पास पड़ी गठरी से लेमनचूस वह बच्चों को बांटने लगा. लड़के तालियां बजाने लगे. आंखों से धूप चश्मा उतारकर उसने एक छोटे लड़के को पहना दिया. लड़का पहले तो हिचका, फिर चश्मे के अंदर अपनी आंखें मिचमिचाकर बोला— चारों ओर मेघ ही मेघ लग रहा है. काला भुजंग मेघ. दूसरे लड़के भी धूपचश्मा पहनना चाहते थे लेकिन छंगुरी ने टूट जाने के भय से उसे अपने पाकेट के अंदर कर लिया.

थोड़ी देर घने वृक्ष के साये में सुस्ताने के बाद लाइटर से उसने अपनी बीड़ी जलाई और अपने टोले की ओर चल पड़ा. पड़ोस के एक लड़के ने उसके हाथ की गठरी उठा ली थी.

मैं छंगुरी को बचपन ही से जानता हूं. उन दिनों हम लोग साथ-साथ गांव के प्राइमरी स्कूल में पढ़ते थे. हम लोगों को पाठशाला के पीठक पर बैठने की मनाही थी. जुलाहों और चमरटोली के लड़के अपने साथ ताड़ के पत्ते की बुनी छोटी चटाइयां साथ लाते. हेड पंडित जाति के ब्राह्मण थे और ललाट पर हमेशा रामनामी तिलक लगाये रहते थे. हम लोगों को स्कूल के अहाते में बने कुएं की जगत पर चढ़ने और पानी खींचने की मनाही थी. जब कभी हमें प्यास लगती, हम हेड पंडित को कहते. वे लगातार टालते रहने के बाद किसी सवर्ण लड़के को पानी पिलाने का आदेश दे देते थे. लड़का हम पर मेहरबानी प्रदर्शित करता हुआ उठता और बाल्टी से हमारे सामने पानी गिराता. हम चुल्लू मुंह में लगा कर पानी पी लेते. यह सिलसिला दिन में प्रायः एक ही बार चलता. दूसरी दफा पानी पीने की इच्छा जाहिर करने पर हेड पंडितजी तड़क उठते और पतली लंबी छो सटाक से पीठ पर देने के बाद कहते— स्साले, यह तुम्हारे बाप का कोई नौकर है जो बार-बार पानी पिला येगा! मालूम होता है कि सत्तू से अधिक नमक खाकर आया है. पढ़ना तुम लोगों के वश का रोग नहीं है. जा कर हरवाही करो. भैंसे चराओ. दूसरों के पथार के कुदाली चलाओ. मालूम होता है कि पढ़कर लाट साहब बनेंगे.

पीतल की तरह दपदप चेहरे पर खोंसी उनकी लाल आंखें देखकर हम लोगों की घिग्घी बंध जाती. उनकी आंखों से अधिक भय उस लपलपाती खजूर की छड़ी का होता जो जाने-अनजाने सटाक-से पीठ पर बैठ जाया करती थी. उनकी प्रति मेरे दिल में हमेशा अनादर की ही भावना जमी रहती थी. एक दिन मैंने बाबू से उनके बारे में पूछा था. बाबू ने कहा था कि वे धरम करनेवाले पंडित हैं और हम लोग डोम-चमार. उस कुएं का पानी अगर वे नहीं पीने देते हैं तो ठीक ही करते हैं. उसी कुएं से वे भी नहाते-धोते और पानी पीते हैं.

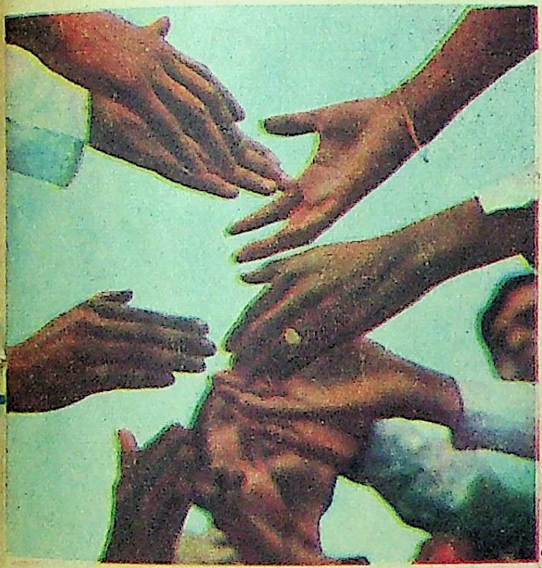
हेड पंडितजी हम लोगों के स्लेट कभी छूते नहीं थे. पहाड़ा लिख कर हम दूर से ही उन्हें दिखाते थे. सिर्फ पढ़ते और गलतियां पाने पर दूसरे लड़के के द्वारा हमारे गाल पर तमाचे मरवाते. बाबू की बातें सुनने के बाद मेरे मन में पंडितजी के प्रति अनादर का भाव खत्म हो चुका था और मैं भी औरों की तरह उन्हें आदर करने लगा था.

शनिवार को स्कूल की पढ़ाई सुबह में होती. उस दिन पढ़ाई के नाम पर स्कूल भवन की लिपाई होती. ओसारा, कोठरियां और मिट्टी की दीवारों को गोबर से लीपा जाता. यह सारा काम मुद्दत से हम लोगों के जिम्मे था. उस समय दूसरे टोले के लड़के तकली काटते, ड्रिल का अभ्यास करते और हम लोग लीपते रहते. उसके बाद गणेश की पूजा होती, गुड़ और चावल मिला हुआ प्रसाद बंटता और हेड पंडित कंधे पर तरह-तरह की गठरियां जो उन्हें लड़कों से प्राप्त होतीं, लेकर अपने गांव की ओर चल पड़ते. शनिवार को गए वे सोम-वार की दोपहर तक स्कूल वापस लौटते. इसी बीच हम लोगों के ऊपर गांव के तहसीलदार का लड़का रोब कसता रहता. अपनी कापी में शरारती लड़कों के नाम नोट कर रखता और मास्साब के आते ही कापी उनकी ओर बढ़ा दिया करता.

पंडितजी का मूड उस दिन प्रायः ठीक रहा करता था. वे छड़ी से सटासट देने के बजाय गलती करनेवाले लड़के को मुर्गा बनने के लिए कहते. कान पकड़े घुटने

झुका कर लड़के को तब तक खड़ा रहना पड़ता था जब तक कि थककर वे गिर नहीं पड़ते. इस सजा के भागीदार प्रायः हम लोग ही होते. उनकी अनुपस्थिति में तहसीलदार साहब का लड़का हमपर रोब झाड़ता. उसके टोले और ब्राह्मण परिवारों के लड़के तो उससे भय खाने से रहते लेकिन हम लोगों के ऊपर उसकी धौंस काफी रहती. उसे नाराज करने का मतलब था— हेड पंडित द्वारा पिटाई.

एक बार शनिवार को पाठशाला भवन की लिपाई हो रही थी. ओसारे की लिपाई का जिम्मा छंगुरी को दिया गया था. हम लोग अपने-अपने काम में जुटे हुए थे लेकिन वह अपना काम छोड़ कर ड्रिल का दिलचस्प खेल देखने में लग गया. घंटी बजने के बाद पूजा के लिए सभी ओसारे पर जमा होने लगे. उस समय लिपाई का काम अधूरा ही पड़ा था. अपनी आज्ञा का उल्लंघन होते देखकर पंडितजी गुस्से से बिफर उठे और उन्होंने



● नरेंद्र एन. शाह

तहसीलदार के लड़के को छंगुरी की पीठ पर पांच मुक्के जमाने का आदेश दिया.

उनका आदेश पाकर अचानक छंगुरी उठा. आंखें तरेर कर बोला— आप हम लोगों से ही क्यों सफाई का काम कराते हैं? राजपूत-ब्राह्मणों के लड़कों से यह काम क्यों नहीं कराते? फिर क्या था, हेड पंडितजी आपे से बाहर हो गए. उस दिन उन्होंने लक्ष्मण-रेखा पार कर ली और अपने ही हाथों से छंगुरी को घूंसे-लात और मुक्के धमाधम देने लगे वे मारते हुए बके जा रहे थे— साला जबान लड़ाता है! बोली भिड़ाने का मजा चखा देता हूं.

अचानक छंगुरी की आत्मा विद्रोह कर उठी थी और पास पड़ी एक ईंट को उठाकर उसने हेड पंडित के सिर पर दे मारा था.

चोट करारी बैठ गयी. खून के फव्वारे छूट पड़े और छंगुरी गालियां बकता हुआ पाठशाला से भाग खड़ा हुआ. मार खाकर पंडितजी हाय-तोबा मचाने लगे. लड़के छंगुरी को पकड़ने के लिए दौड़ पड़े लेकिन वह पीछा करते लड़कों पर ईंटों की वर्षा करता हुआ भाग ही गया, पुनः वह पाठशाला वापस नहीं लौटा.

इस घटना के बाद हम सभी हरिजन लड़कों की छुट्टी पाठशाला से हो गयी. लगातार पंद्रह दिनों तक इधर-उधर छिपे रहने के बाद छंगुरी दिखाई पड़ा था. उस समय उसके चेहरे पर अप्रतिम प्रसन्नता थी. मालूम होता था कि वर्षों की कैद पड़ी छटपटाहट का वह खुलकर इजहार कर चुका है और वह उस हादसे से काफी आश्वस्त है. उसकी आंखों में अपने आपसे तनिक भी शिकायत नहीं थी, बल्कि जर्द होंठों पर तरल मुस्कान तिर रही थी.

हम लोगों की पढ़ाई रुक गयी. रुकी नहीं बल्कि रोक दी गयी. बहुतों ने तो पहले ही पंडितजी की आंखों का शिकार होकर पढ़ना छोड़ दिया था. टोले के दस-पांच हम लोग थे जो कोपभाजन बनकर भी बस्ते को ढोये चल रहे थे. लेकिन अकेले छंगुरी के द्वारा किये गए पाप का प्रायश्चित हम सबको भुगतना पड़ा.

तीन-चार वर्षों तक टोले में ही निठल्ला घूमते रहने के बाद मैं चाचा के साथ बाजार में जूते की दूकान पर काम करने लगा और छंगुरी दूसरे लड़कों की तरह जमीन के छोटे-से टुकड़े को गोड़ने-उपजाने में जुट गया.

काका भी तो पुश्तैनी धंधा ही करते थे. आस-पास के गांव से मरे हुए मवेशी के चमड़े खरीद लाते और उसे बाजार के चमड़ा-गोदाम में बेंच आया करते थे. इससे उन्हें थोड़ी आमदनी हो जाती और अपनी जमीन नहीं होने का संताप उन्हें नहीं सताता.

एक साल इलाके में पशुओं के बीच महामारी फैली हुई थी. धीरे-धीरे बीमारी गांव में भी घुस आयी. बहुत से मवेशी मरे. डकहा बीमारी थी. रात में वे खूंटे में अच्छे-खासे बंधे रहते. सुबह होते ही उनकी सांसें धौंकनी-सी चलने लगतीं. पेट फूल आया करता और कुछ ही घंटों में वे सिधार जाते.

अचानक यह बात गांव में फैल गयी कि काका ही अपने रोजगार की खातिर दूर-दराज के गांव से इस छुआछूत के रोग को बस्ती में लाये हैं. फिर क्या था, वे तहसीलदार साहब द्वारा दबोच लिये गये. उनकी काफी पिटाई हुई. टोले के अतिरिक्त सारी बस्ती में उनकी इज्जत उतर गयी.

इस घटना ने काका के दिल को बुरी तरह तोड़ दिया और उन्होंने कच्चे चमड़े का रोजगार बिल्कुल ही बंद कर दिया. रोटी के लिए बाजार की शरण ली और दुकान में नौकरी कर ली. दिन भर जूते बनाना और शाम को ताड़ी पीकर मौज-मस्ती में गीत गाते हुए गांव वापस लौटना, बस यही उनकी जिंदगी बन गयी.

कभी-कभी मैं सोचता हूं कि काका इस तरह क्यों टूट गए. कभी वे ही अपने को टोले का सरगना कहते थे. जो कोई भी दारू-ताड़ी पीता, उसके खिलाफ जाति-पंचैती करके, उसका हुक्का-पानी बंद करा देते. प्रत्येक घर से चंदा उगाह कर उन्होंने टोले में पक्का कुआं बनाने की योजना बनाई थी. वे ही अब नशे में धुत्त होकर अनाप-शनाप बकते हुए गालियों में घूमते. किसी के



विलोभनीय वस्त्रविलास!
TF
फैशन की दुनिया में छा जाइये — ठाकरसी के
टिकाऊ डेनिम और ब्लेंडेड कपड़ों से.
आप इन्हें जब चाहें पहनें, आप हमेशा
रोबीले नज़र आएंगे. ठाकरसी के कपड़े
आपको खूबसूरती से सजाते हैं.
ठाकरसी फॅब्रिक्स
TF
हिंदुस्तान स्पिनिंग एन्ड वीविंग मिल्स लि
१६, मुम्बई समाचार मार्ग, बम्बई ४०० ०२३
नया ज़माना, नया तराना
Dattaram.TG-43
everfresh®
67% 'Terene' 33% Cotton
DOUBLE EDGE
'Terene' Suitings
easycare®
67% 'Terene' 33% Cotton
easylene®
80% Polyester, 20% Cotton
Cronlene®
Polyester/Cotton
Cronester®
Polyester/Cotton

द्वारा छेड़ दिये जाने पर खिसिया कर कहते, 'इस धरती पर उन लोगों की हुकूमत है. हम सारे अपाहिज नशाखोरी के लिए ही तो पैदा हुए हैं. नशा नहीं करोगे तो तुम्हें याद रहेगा कि तुम्हारे सभी अंग साबूत हैं. तुम लुंज नहीं हो. उसे भुलाना हो तो नशे में डूबे रहो. भुला देने में ही फायदा है. नहीं तो तुम्हारा अस्तित्व मिट जायेगा.'

धीरे-धीरे मैं भी काका के साथ काम पर जाने लगा. नित्य सुबह उनके साथ पांच मिल दूर बाजार चला जाता. हम लोग जूते बनाने वाली एक छोटी-सी दूकान में काम करते थे. वहां अधिकतर चमरौधे जूते ही बनते थे. काका अच्छे कारीगर थे. कभी-कभी जरूरतमंद ग्राहकों को शहरी फैशन के भी जूते बना कर देते थे.

मैं सुबह से शाम तक चमड़े को सिमनता, कूटता और रेशे छुड़ाता. इतवार को बाजार की दुकानें बंद रहतीं. उस दिन मैं निश्चिंत होकर टोले के दूसरे लड़कों के साथ सारा दिन बिताता. छंगुरी के साथ हम लोग अपने मवेशी-डांगर लेकर पहाड़ियों पर चले जाते. दिन का कलेवा साथ ले लेते. मवेशी ढलान पर कंकरीली मिट्टी में उगी हुई घास चुनते रहते और हम लोग पहाड़ी की चोटी पर आसमान को छूने की कोशिश करते. जंगली फूल नंगी पंखुड़ियां फैलाये हम लोगों की अगवानी करते मिलते. वहां आसमान इतना सटा हुआ दिखाई पड़ता कि शाम के अधबने चांद को मुट्ठियों में पकड़ लाने को जी चाहता. सरकंडे के जंगलों में कलम बनाने के लिए पतली-पतली छड़ियां काटते और छुरियों से तराश कर ढेर सारी कलमें तैयार करते. धूल की परतों में गुम हुई स्कूली जीवन की याद ताजी हो जाती. अचानक सोचने लगते कि इन कलमों का क्या होगा. कौन पढ़नेवाले हैं जिन्हें कलमें दी जायं. टोले के लड़कों को स्कूल जाने की मनाही थी.

सोचते हुए आतंक भरा दुख हमें चारों ओर से जकड़ लेता. सरकंडे की बनी सारी कलमें फेंक दी जातीं. पिछले कई घंटों की मेहनत बालू के घरौंदें की तरह ढहाकर हम लोग अपने अतीत को भूलने की कोशिश करते. फिर भी कोई अबूझी प्यास हमें बहुत देर तक खदेड़ती हुई थमा देने के लिए अमादा दिखती रहती. कभी-कभी छंगुरी कहता— जब हम बड़े होंगे तो टोले में हो पाठशाला खोलेंगे. वहां दूसरे टोले के लड़कों को घुसने भी नहीं देंगे. और न चंदनधारी हेड पंडितजी को ही जाने देंगे.

हमें उसकी बातें बहुत अच्छी लगतीं. लगता कि हमारी गर्म सांसों में किसी ने ठंडी हवा भर दी हो. रात के भीषण तमस् से कोई सूर्योदय का ठौर पूछ रहा हो.

हम लोग स्थिति के समझौता कर अपने में ही खो जाया करते. हमारे चारों ओर ऊंची-ऊंची पहाड़ियां होतीं, चिकनी-नंगी चट्टानें होतीं, गदराये हुए वृक्षों के सेवाल और बांसवान में सरसराती हुई हवा होती. ढलान पर मवेशी के गले की घंटियां सुकती रहती. आजाद हवा हमें दुलराती रहती. बंधनमुक्त सांसें हमारे फेफड़ों में अनवरत भरती रहती. वहां न तो तहसीलदार साहब की जलती हुई आंखों का विस्तार होता और न ही हेड पंडित जैसे लोग जिन्हें हमारी देह की गंध से उल्टी होने का डर बना रहता था.

* *

छंगुरी के आने की खबर गांव भर के में फैल गयी. उसका बड़ा भाई जागेसर इसके आने की खबर सुनते ही खुशी से झूम उठा था. दरवाजे-दरवाजे जा कर इसकी जानकारी लोगों को दे आया था. छंगुरी की पत्नी दुखनी फूली न समाती हुई टोले की लड़कियों से ठिठोली कर आयी थी.

बाईस वर्षों तक गांव में ही खेत-पथार की रखवाली करने के बाद छंगुरी कलकत्ता जूट मील में मजदूरी कर रहा था. जिसके घर के लोग रुपये-आठ आने के लिए लालायित रहते, उसके यहां महीने में मनि आर्डर-चिट्ठियों का तांता लग गया. बाजार के पोस्टमैन बबुआन टोले और तहसीलदार साहब की ड्योढ़ी पर जाने की अपेक्षा हरिजन टोली की गलियों में घूमते नजर आने लगे.

जब कभी पीतल की बटन से लैस खाकी वर्दी वाले पोस्टमैन को गांव की ओर मुड़ते हुए देखते, राजपूत, ब्राह्मणों के पेट में अनपच की बीमारी हो जाती. तहसीलदार साहब के मुंह का स्वाद खट्टा हो जाता और वे कान पर जनेऊ चढ़ाए हुए उतरती धूप को बड़ी तल्लीनता से देखने लग जाते. मालूम होता था कि कोई बहुत बड़ी योजना ज्वालामुखी की तरह उनके हृदय के अंदर ही अंदर उमड़-घुमड़ रही है, ऐसी साजिश को मूर्तरूप देने के लिए वे छटपटा रहे हों, जहां सारे अनुपेक्षणीय तल्ख प्रश्नों का समाधान हो.

आंगन में अमरूद के पेड़ के नीचे मूंज की बनी खाट पर दोनों भाई बैठे थे. जागेसर बोड़ी सुलगाता हुआ बोला— अगर रुपये हों तो तहसीलदार साहब से चलकर हिसाब कर आओ. महज तीन सौ रुपये की खातिर छः कट्ठे जमीन रेहन पड़ी हुई है. महीने में जो भेजते हो, खाते चले जा रहे हैं.

छंगुरी की आंखों में स्वाभिमान की रेखाएं स्पष्ट रूप से खिंच आयीं. दुखनी की ओर आंखें डालता हुआ बोला — भैया, तुम जाकर हिसाब कर आओ. पाई-पाई चुका दूंगा. तहसीलदार से ही पिंड छुड़ाने के लिए कंपकंपाती जाड़े की रात में भी ओभरटेम काम करते रहे थे.

उसकी बातें सुन कर खुशी से जागेसर के लाल मसूढ़े दिखाई पड़ने लगे थे. मोटे होठों से निकली नुकीली आवाजें बड़ी सुखकर लगीं. बीड़ी को खाट की पासी पर रगड़ते हुए वह बोला — आखिर जमीन भी तो तुम्हें ही भोगना है. मेरा क्या है, एक देह भर. दो शाम भात-नमक और मरन के बाद दो गज मारकीन का कफन. कुछ दिनों तक और कलकत्ता में नौकरी करने के बाद गांव में ही आकर खेती-बारी करो. घर-गृहस्थी चलाओ. तब मैं निश्चिंत हो लंगोटी पहनकर किसी संत-महात्मा की कुटिया में धूनी रमा लूंगा.

—नहीं भैया, तुम घर से क्यों निकलोगे. तुम निर्बंश हो गए तो क्या हुआ, मैं तो तुम्हारे ही बेटा जैसा


जीतिये
Prestige
४ प्रथम पुरस्कार विजय स्कूटर
४ द्वितीय पुरस्कार सुवेगा मोपेड
४ तृतीय पुरस्कार सुमीत मिक्सी
इसके अलावा १०० प्रोत्साहन पुरस्कार— वेस्ट क्लॉक्स अलार्म टाईमपीस
प्रेस्टिज के साथ—४ विजय स्कूटर और
१०० से अधिक अन्य महान पुरस्कार.
Prestige
प्रेस्टिज प्रेशर कुकर के
निर्माताओं की "महान पुरस्कार"
प्रतियोगिता में !
पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण— हर क्षेत्र के लिये अलग-अलग प्रथम, द्वितीय, तृतीय और प्रोत्साहन पुरस्कार— कुल पुरस्कार १०० से भी ज्यादा !
प्रतियोगिता और प्रवेशपत्र की पूरी जानकारी के लिए आज ही अपने नज़दीकी प्रेस्टिज विक्रेता से संपर्क कीजिए.
प्रतियोगिता का परिणाम, प्रतियोगिता बंद होने की तिथि से ६ सप्ताह के भीतर घोषित कर दिया जाएगा.
जल्दी कीजिए ! आज ही अपने नज़दीक के प्रेस्टिज विक्रेता से प्रवेश-पत्र लेकर इस पुरस्कार प्रतियोगिता में भाग लीजिए !
Prestige
PREETT
दोनों एक ही हैं।
टीटी. (प्राइवेट) लिमिटेड,
बैंगलोर ५६० ०१६.
SAA/TTP/2289 R/HN

हूं. मुझे तो याद भी नहीं कि बाबू कैसे थे. तुमने ही तो बेटे की तरह मुझे पाल-पोसकर बड़ा किया.

छोटे भाई की बातें सुनकर जागेसर की आंखें छलछला आयीं. दोनों आत्मीय सुख भोगते रहे. दुखनी बगल में खड़ी खून के रिश्ते का मधुर आनंद ले रही थी.

जागेसर आश्वस्त होकर बोला—आज छोड़ दो. थके हुए आये हो. कल हिसाब करने चलेंगे. वहां से ही पलटू मालिक के सराध का भोज भी खाते आयेंगे.

भाई की बातें सुनकर अचानक छंगुरी की भवें कस गयीं लेकिन वह कुछ नहीं बोला. भाई के चेहरे पर पीढ़ी-दर-पीढ़ी की भूख की स्पष्ट छाप दीख रही थी. श्राद्ध और विवाह के जूठे पत्तलों का भोज. अभिजात्य संस्कारों के मुंह से उगले हुए अंधेरे का भोज. इसी अंधकार को टोले के लोग सदियों से चाटते रहे हैं. बड़ा भाई आज पकवानों की याद में क्षुधा-पीड़ित हो गया था. उसके बाप और पूर्वजों की सारी आत्माएं इसी अबूझी प्यास को ले मसान तक गयी थीं. फिर भी यह जालिम भूख नहीं मिटी. उनकी हथेलियों में कितना गहरा सूराख या कि तमाम नैराश्यजनित अंधकार को पीने के बाद भी वे आज तक भूखे ही थे.

जागेसर आह्लादित हो कर बोला—बड़े ही घर के आदमी थे बेचारे. कभी किसी को दुख नहीं पहुंचाया. सुनते हैं कि पांच मिठाइयों का भोज है. शुद्ध घी की बनी हुई सारी चीजें हैं. मैं तो आज रात खाना भी नहीं खाऊंगा. तब कल डटकर माल उड़ाया जायगा. मेरी बात क्या करते हो, टोले के अधिकांश घरों में आज चूल्हे नहीं जलेंगे. दूसरे घरों में गांव-ज्वार के रिश्तेदार आकर जम गये हैं. मेरे यहां तो पत्तल लूटनेवालों की ही कमी है. अगर मेरा तीनों छोड़ा रहता तो आंगन में पत्तलों का ढेर लग जाता. लेकिन विधाता को तो कुछ और ही मंजूर था.

जागेसर को अचानक बेटे की याद आ गयी और एक बार उसकी आंखें फिर से गीली हो गयीं. छंगुरी भाई के निष्कपट चेहरे को चुपचाप देखता रहा.

सचमुच ही दूसरे दिन जब टोले के लोग श्राद्ध का भोज खाने जाने लगे तो छंगुरी ने उनका रास्ता रोक लिया. उसकी हरकत किसी को भी पसंद नहीं आयी. छंगुरी ने उत्तेजित हो कर कहा था—एक दिन भरपेट खाने से तुम्हारी भूख हमेशा के लिए नहीं मिट जायेगी. फिर क्या जरूरत है कि दूसरे के जूठे पत्तलों को चाटा जाये.

काका ने कहा था— ये भूख कभी मिटने वाली नहीं है. जो पेट आज तक नहीं भर सका, वह सराध का भोज खाकर नहीं भरेगा, लेकिन सामाजिक परंपरा के अनुसार हम लोगों को जूठे पत्तलों को लूटना है और तुम्हें मना करने का कोई अधिकार नहीं है.

काका अपनी बातों की पुष्टि के लिए उपस्थित लोगों को देखने लगे थे. सभी के चेहरे पर खामोश स्वीकृति की स्पष्ट छाप दिखाई दे रही थी. कुछ ने तो भुनभुनाकर कहा— भला गांव-ज्वार की बातों में शहरिया फैशन लादने का कौन-सा रिवाज है? बड़े बबुआ की शादी-सराध में हम लोग जूठे पत्तलों को उठाते रहे हैं. अगर हम छोटी जाति के लोग यह काम नहीं करेंगे तो क्या वह लोग अपने हाथों से पत्तल उठायेंगे?

छंगुरी निरुत्तर हो गया था. उसे कतई आशा नहीं की कि सदियों से दमनचक्र में पिसते रहने के कारण उनकी मानसिकता इतनी टूट चुकी है कि उस पर स्वाभिमान का लेप नहीं चढ़ाया जा सकता.

उस दिन मैंने छंगुरी की बातों का समर्थन किया था लेकिन टोले के अधिकांश लोग हमारी खिलाफत करते रहे. जागेसर भाई को भी मन मसोस कर रुक जाना पड़ा था. छंगुरी के दिल का आक्रोश देखकर भोज में जाने की उनकी हिम्मत नहीं हुई थी.

तीन-चार दिन बाद टोलेवालों ने हम लोगों को जातिच्युत कर दिया था. हम पर तरह-तरह के व्यंग्य-बाणों की वर्षा की गयी, हमें टोले का दुश्मन करार किया गया और टोले की तमाम कद्दावरी आंखों का शिकार बने हुए मुझे फिर एक बार और छंगुरी के पाप का प्रायश्चित करना पड़ा.

★ ★

सुबह से ही जागेसर बहुत खुश था. दोनों भाइयों के बीच यह बात निश्चित हुई कि तहसीलदार साहब के कर्ज का बोझ आज से हमेशा के लिए उतार देंगे और अपनी रेहन पड़ी जमीन वापस ले लेंगे. खानदान के पाप को हमेशा-हमेशा के लिए उतार देने की खुशी में जागेसर मछलियां पकड़ने चल पड़ा था और बांस पर दिन उगते ही छिवड़ी भरकर मछलियां ले आया था.

अपने छोटे भाई को देखते ही बोला—आज से इस वंश का नया जीवन शुरू होगा. तुम जाकर तहसीलदार को रुपये चुका दो और रेहन का कागज ले आओ. मैं आज तुम्हें अपने हाथों से मछलियां बनाकर खिलाऊंगा.

छंगुरी को देखते ही तहसीलदार साहब भीतर से जलभुन गए. चारखाने की रंगीन लुंगी और लंबे बालों से टपकते खुशबूदार तेल पर नजर पड़ते ही उनका दिल ऐंठने लगा.

छंगुरी के आने की सूचना उन्हें मिल गयी थी. उन्हें यह भी पता था कि पलटू बाबू के श्राद्ध में इस छोकरे ने जातिवालों को जूठे पत्तल नहीं उठाने के लिए उकसाया है.

यह बात किसी को पसंद नहीं थी कि जागेसर अपनी रेहन पड़ी जमीन धीरे-धीरे छुड़ाता चला जाये. सचमुच ही जूट मिल में नौकरी करता हुआ अपनी तेरह कट्ठे जमीन रेहन से मुक्त करा चुका था और अब सिर्फ यही छः कट्ठे गिरवी पड़ी थी.

कल ही तहसीलदार साहब ने अपने कुछ आदमियों के साथ सलाह-मशविरा किया था. सिर से ऊंचा होते पानी को देखकर सभी सशंकित हो उठे थे. पानी का निकास आवश्यक था.

छंगुरी उनके सामने बैठ कर लाइटर से बीड़ी जलाता हुआ बोला — बाबू, मेरा हिसाब कर दीजिए. कल तक ही छुट्टी ली है. ड्यूटी पर वापस लौट जाऊंगा.

उसकी बातें सुनकर तहसीदार साहब के रोएं जल उठे. लेकिन उन्होंने अपने चेहरे पर लिजलिजी संवेदना

प्रकट करते हुए कहा—अरे भैया, थोड़ी देर सुस्ता लो. तुम्हारा हिसाब कर देता हूं. तुम्हारे बाबू जबतक जिंदा थे हमलोग उसे ही तुम्हारे गांव का सरगना मानते रहे हैं. तुम कोई गैर थोड़े ही हो. कहो तो तुम्हारे सामने रेहन का कागज फाड़ कर फेंक दूं.

छंगुरी उनकी आत्मीयता देखकर अनजाने ही उनकी ओर खिंच गया. दोनों घर-द्वार, जूट मिल और कलकत्ते की रेलमपेल वाली जिंदगी के बारे में घुलमिल कर बातें करने लगे.

अचानक तहसीलदार साहब ने अपना मोहरा फेंकते हुए कहा— देखो छंगुरी, तुम मेरी बातों का गलत मायने मत लगा लेना. तुम तो घर के लड़के जैसे हो. तुम्हें आगाह करना हमारा कर्तव्य हो जाता है. क्यों नहीं तुम अपने साथ अपनी बीवी को रखते हो? दस मुंह, दस तरह की बातें.

छंगुरी की समझ में कुछ नहीं आया. उनके चेहरे पर आंखें गड़ाते हुए उसने पूछा——क्या बात है, साब? दस मुंह-दस तरह की बातें. आखिर बात क्या है?

तहसीलदार साहब द्वारा फेंका गया मोहरा शतरंज के चौकोर खाने में जमकर बैठ चुका था. उन्होने कहा—मुझे कहनी तो नहीं चाहिए लेकिन लोगबाग कहते हैं कि तुम्हारी बीवी ओर जागेसर के साथ बुरा संबंध है. देखो भैया, मेरे कहने का मतलब है कि अपनी स्त्री को भी साथ ही रखो तो दूसरे लोगों को बोलने का मौका तो न मिलेगा. इज्जत बार-बार नहीं मिलती है.

उनकी बातें सुनते ही छंगुरी की उंगलियों में सुलगती बीड़ी छूटकर नीचे गिर गयी. कुछ देर तक वह शून्य मस्तिष्क से तहसीलदार साहब को देखता रहा. उसे महसूस होने लगा कि कोई खौफजदा अंधेरे का शैलाब उसे चारों ओर से जकड़ता जा रहा है. दुहरे-तिहरे धुंध में वह धीरे-धीरे डूब चुका है और उसके चारों ओर परोक्ष रूप से जागेसर और दुखनी के कहकहे उसे झंझोड़ रहे हैं. वह बोला—अभी हिसाब-किताब बंद रखिए. मैं जरा इसकी सही जानकारी ले लूंगा. याद रखियेगा, अगर आपकी बातें सही निकलीं तो मैं अपने ही हाथों से भाई और बीवी के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा और अगर गलत हुई तो वे ही हाथ आपकी ओर बढ़ जाएंगे.

तहसीलदार साहब ने पैंतरा बदलते हुए कहा— इसमें इस तरह बौखलाने की क्या जरूरत है. जा कर गांव वालों से पूछ लो. एक ही नहीं, सारे गांव के लोग इस बात को जानते है.

छंगुरी बुझती हुई बीड़ी अपने जूते से मसलता हुआ उठ खड़ा हुआ. जिस रास्ते से वह गुजरा, लोगों ने जागेसर और दुखनी के बीच बुरे संबंधों की ही बातें उठायीं. पाठशाला के सामने दो-चार व्यक्ति पुआल पर बैठे हुए धूप में देह सेंक रहे थे, छंगुरी को टोकते हुए एक व्यक्ति ने कहा— तुम तो अपने को इज्जतदार कहते हो, लेकिन बीवी यहां सूने घर में रामलीला करती है, भैसुर के साथ..... छि : छि :. फिर ठहाकों की अनुगूंज से वह भयाक्रांत हो उठा था. वह चाहता था कि टोले तक पहुंचनेवाली पगडंडी जल्दी-से जल्दी समाप्त हो जाय और अंधेरी परतों में घुसकर वह अपने अस्तित्व को हमेशा के लिए विलीन कर दे.

आंगन में पहुंचते ही उसने देखा कि भाई चूल्हे के पास बैठा हुआ मछलियां तल रहा था और दुखनी उसे मदद पहुंचा रही थी. छंगुरी को देखते ही जागेसर बोला— आ गया. ले आया रेहन का दस्तावेज? तुझे अपने हाथों से आज मछलियां खिलाऊंगा. कड़ू तेल में बनायी हैं. कनियां क्या जानेगी कि तली हुई मछलियों का क्या स्वाद होता है. इसके मां-बाप तो तेल का इस्तेमाल सिर्फ पर्व-त्यौहार में ही करते हैं.

दुखनी बड़े भाई का मजाक सुनकर हंसने लगी थी. निष्कलुष चेहरे पर स्निग्ध मुस्कान बहुत देर तक तैरती रही. अचानक छंगुरी दुखनी के बाल पकड़ कर बोला— बता तेरे और जागेसर भाई के बीच क्या संबंध हैं?

सुनते ही कड़ाही पर जागेसर के झुके हाथ ढह गये. ठोकर से चूल्हे पर चढ़ी कड़ाही उलट गयी और सारी मछलियां आग और जमीन पर छनछन की हल्की आवाज छोड़ती हुई बिखर गयीं.

छंगुरी आपे से बाहर हो गया था. दुखनी को जमीन पर पटक कर घूंसे-लात से मार रहा था और अपने प्रश्नों को पूछता जा रहा था. जागेसर आंखें तरेर कर बोला— किसने तुम्हें क्या कह दिया जो अगिया-बैताल बने आये हो? पहले बात तो समझ लो. वे लोग चाहते हैं कि. . . .

छंगुरी बिना कुछ समझे भाई से उलझ गया और देखते ही देखते दोनों आपस में गुंथ गये. चूल्हे की आग बिखर कर उनकी देह और कपड़ों को झुलसाने लगी. दुखनी भयभीत नेत्रों से उन्हें देखती हुई चीख-पुकार मचाने लगी. लड़ते हुए आखिर छंगुरी ने अपने भाई को दबोच ही लिया और उसके मुंह तथा शरीर पर तबतक जलती हुई लकड़ी से प्रहार करता रहा जब तक कि टोले के लोग जमा नहीं हो गये.

जागेसर अस्पताल में पड़ा-पड़ा आखिरी सांसें गिन रहा था. छंगुरी के शरीर में भी जगह-जगह फफोले उग आये थे और बगल की खाट पर पड़ा हुआ वह भी कराह रहा था. दोनों भाइयों की अवस्था देख कर दुखनी की आंखें रोती हुई सूज गयी थी. मैं बार-बार दुखनी को चुप कराता हुआ धैर्य बंधा रहा था.

बरामदे पर पुलिस तैनात थी और हत्या करने के प्रयास में खाट पर कराहते हुए अभियुक्त छंगुरी पर नजर रखे हुई थी.

अचानक छंगुरी बेहोशी की हालत में बड़बड़ाने लगा— मुझे बचाओ. इन हाथों से मुझे बचाओ. ये मुझे दबोचने के लिए चले आ रहे हैं. इन्हीं हाथों ने मेरे भाई को मुझसे अलग कर दिया. अब ये मुझे अपने आपसे अलग कर रहे हैं. छंगुरी की खौफजदा बातें सुन कर मैं भी भयभीत हो उठा था. मुझे लगा कि शून्य की परतों से कई छिपे हुए हाथ मेरी ओर लपके चले जा रहे हैं और उनकी गिरफ्त में मेरा गला भी निरंतर कसता चला जा रहा है. □□□

विशेष भूअर्जन पदाधिकारी,
गंडक योजना नं.—२, मोतीहारी (बिहार)

उस दिन बाबा एकाएक बड़ा लगने लगा था. उसका नर्सरी में एडमिशन हो गया था. और जब उसको स्कूल ड्रेस पहना कर जूते-मौजे बांध कर खड़ा किया गया, तो उसकी मम्मी, मीरा को लगा कि उसका बेटा एकदम से पढ़-लिख कर पायलट बन जायेगा, जैसा कि वह अकसर अपनी सहेलियों के बीच में बैठ कर कहती थी— मैं तो अपने बेटे को पायलट बनाऊंगी और सारी दुनिया घूमूंगी. . . वैसे भी उसको घूमने का बहुत शौक था. बड़ी मम्मी 'मीरा की सास' ने जब बाबा को देखा तो उनको अपने बेटे के बचपन के दिन याद आने लगे थे, जब कि वह ऐसे ही स्कूल ड्रेस पहन कर स्कूल जाता था, उनके बेटे की और पौते की शक्ल काफी मिलती-जुलती थी. कई आदतें भी एक-सी थीं, जैसे किसी चीज का मोह तक नहीं, सभीसे साफ बात करना आदि-आदि. . . उन्होंने बहुत ही प्यार से उसके बालों पर हाथ फेरा और मीरा से बोलीं— ठीक ऐसा ही मेरा जीतू लगता था, बाबा के पापा का पूरा नाम जीतेंद्र था. बड़ी मम्मी उनको प्यार से जीतू बुलाती थीं.

बाबा स्कूल क्या जा रहा था, सभी को खुशी हो रही थी. उसके पापा भी कमरे से निकल कर बाबा के पास आ कर उसको ऊपर उठाते हुए बोले— तू ही तो मेरा भविष्य है, बाबा का नाम भी उन लोगों ने भविष्य रखा था. बाबा अपने पापा को देख कर बोला—मैं स्कूल जाने से डरता नहीं हूं, पापा. सचमुच वह और बच्चों की तरह स्कूल जाने से घबड़ा नहीं रहा था.

उसके दादा अपने कमरे से ही चिल्ला रहे थे कि— बाबा को मेरे पास लाओ, मैं भी तो देखूं. उनकी तबियत ठीक नहीं रहती थी. उनके बायें हाथ-पैरों में पैरालेसस का असर था, इसलिए वह जल्दी से अपनी खाट से उठ नहीं पाते थे.

बस चुपचाप जो थी वह थी उसकी पंद्रह साल की आया अन्नी, वह समझ ही नहीं पा रही थी, न आगे, न पीछे, बिल्कुल भौचक्की-सी बाबा को लगातार देख रही थी, मीरा के कहने पर वह बाबा की चीजें उठा-उठा कर देती जा रही थी, जैसे कोई मशीन हो यद्यपि वह कई दिनों से सुन रही थी कि बाबा को स्कूल जाना है उसके लिए यह लाना है, वह लाना है. पर उसने कभी देखा भी नहीं था कि बच्चे स्कूल कैसे जाते हैं. वह लगातार सोचती जा रही थी कि बाबा तो स्कूल चला जायेगा फिर वह क्या करेगी इस घर में. उसका सब काम बाबा से ही जुड़ता था. अब वह अकेले क्या करेगी. और सब कामों के लिए एक दूसरी आया थी. वह सिर्फ बाबा के काम संभालती थी. वह अपनी तकलीफ कहे भी तो किससे. उस समय तो बाबा के स्कूल जाने की सबको इतनी खुशी हो रही थी कि जैसे बाबा दुबारा जन्म ले रहा हो. उस बीच वह यदि उदास हो गयी तो लोग यही सोचेंगे कि अन्नी ने कहीं अपशगुन तो नहीं कर दिया है. इसलिए चुपचाप वह बाब की तैयारी देखती रही, वैसे रोज वही बाबा को कपड़े पहनाती थी पर उस दिन मीरा ने सारा काम अपने हाथ में ले लिया था इस बात से वह और भी दुखी थी. बाबा को तैयार करके मीरा स्वयं तैयार होने अपने कमरे में चली गयी थी. उस बीच बाबा अन्नी के पास आ कर बोला— अन्नी, तू भी चल न मेरे साथ स्कूल, अन्नी अपन साथ-साथ बैठेंगे. अन्नी को शायद बाबा की बात अच्छी लगी थी, वह तुरंत बड़ी मम्मी के पास खुशी-खुशी पहुंची और बोली— बड़ी मम्मी मैं भी स्कूल जाऊंगी, बाबा के साथ पढ़ूंगी. यह सुन कर बड़ी मम्मी को बहुत जोर से हंसी आ गयी. बोलीं— क्या पागल हो गयी है अन्नी, बच्चों के साथ इतनी बड़ी लड़की पढ़ती है? उनकी हंसी देख कर अन्नी सहम गयी थी. उसको यह नहीं समझ में आया कि क्यों नहीं पढ़ सकती. वह चुपचाप बाबा की उंगली पकड़ कर किचन से बाहर वाले कमरे में आ गयी थी. उसीके पीछे बड़ी मम्मी भी हंसते हुए बाहर वाले कमरे में आ कर मीरा से बोलीं— उस समय तक मीरा तैयार हो कर आ गयी थी— सुनो मीरा, अन्नी भी बाबा के साथ स्कूल पढ़ने जायेगी, कितनी भोली है बिचारी. मीरा भी अन्नी की तरफ देख कर मुसकरा दी थी. अन्नी अभी तक समझ नहीं पायी थी कि उसने क्या गलत कह दिया है. वह चुपचाप बाबा को ले कर मीरा के साथ स्कूल चल दी थी.

* *

बात असल में यह थी कि अन्नी अनाथालय की लड़की थी, उसने देखा ही नहीं था कि इतना भरा-पूरा घर. उसने मां-बाप को भी किताबों में पढ़ा था. वह क्या जाने मां अपने बच्चे को कैसे-कैसे प्यार करती है, कितनी-कितनी आशाएं लगाती हैं. उसने तो एक यंत्र की तरह जीना सीखा था. सुबह उठना, खेलना-कूदना, पढ़ना-लिखना, खाना खा लेना और वक्त से सो जाना.

बस सुबह उठने के बाद सब बच्चों को लाइन बना कर जो प्रार्थना गवायी जाती थी, वह उसे अभी तक याद थी.

तुम्हीं हो माता
पिता तुम्हीं हो
तुम्हीं हो बंधू
सखा तुम्हीं हो.

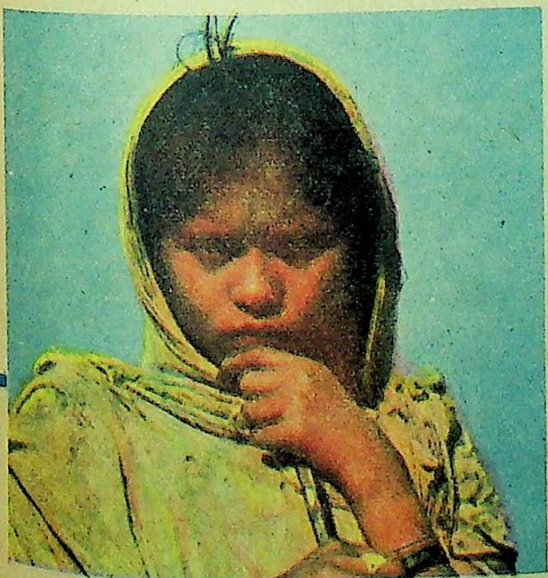
प्यार की सीमाएं हैं

• शांता वर्मा

इससे उसको बहुत ताकत मिलती थी. वहां यही सिखाया जाता था कि जिसकी कोई मदद नहीं करता उसकी भगवान मदद करता है. अन्नी बारह साल तक उन चाहर दीवारियों में बंद यही सुनती आ रही थी. शायद उसी ताकत से वह एक दिन रात में वहां से भाग निकली थी. और बिना टिकट गाड़ी में बैठ कर पूना से बंबई आ गयी थी. उसके बाद कितने ही दरवाजों के चक्कर लगा-लगा कर इस घर तक पहुंच गयी थी, जहां कि उसको पूर्णरूप से सुरक्षित आश्रय मिल गया. शुरू-शुरू में उसको किसी बात का सलीका ही नहीं था. फ्राक फटी है तो फटी है, बाल बिखरे हैं तो कुछ परवाह ही नहीं है, जैसे किसी आजाद पंछी की तरह इधर-उधर बाबा को लिये-लिये घूमा करती थी.

बड़ी मम्मी का मन बहुत नरम था. उन्हींके प्यार से इन तीन सालों में वह काफी निखर आयी थी. जब भी वह मैकसी पहन कर बाबा को ले कर बाहर निकलती थी, तो दो-चार लोगों की निगाहें उसके ऊपर जरूर अटक जाती थीं. पर उसको किसी चीज की जैसे परवाह ही नहीं रहती थी. वह तो अपने बाबा में इतनी डूबी हुई रहती थी कि कोई क्या देख रहा है, उसको मालूम ही नहीं पड़ता था. उसको तो जैसे आदमी से बोलते डर लगता था.

घर-बाहर उसको एक धुन थी वह और उसका बाबा. अन्नी के आने से मीरा भी बाबा की तरफ से मुक्त हो गयी थी. उसकी ताश गोष्ठी जोर पकड़ने लगी थी. ढेर सारी सहेलियां घर में आती थीं, और जाती थीं, और ताश चलता रहता था, कभी-कभी मीरा भी जीतेंद्र के आफिस जाने के बाद स्वयं सहेलियों के साथ बाहर चली जाती थी. इस बीच अन्नी और भी आजादी के साथ बाबा को ले कर बतियाती रहती थी. या कोई तसवीरों वाली किताब निकाल कर देखती रहती थी. और बाबा को उलटी-सीधी कहानियां गढ़-गढ़ कर सुनाया करती थी. इन सबसे बाबा भी अन्नी को बहुत प्यार करने लगा था. खाये तो अन्नी, सोये तो अन्नी, खेले तो अन्नी, सारे दिन



आर. एन. प्रसाद

उसको अन्नी चाहिए थी. और अन्नी भी उसका जो काम करती थी बड़े प्यार से करती थी. खाना खिलाती थी तो उसकी पसंद की चीजें ही प्लेट में परोसती थी, फिर एक-एक कौर ढंग से बना कर स्वयं खिलाती थी.

कभी-कभी बड़ी मम्मी अपने पड़ोसियों के बीच बैठ कर कहती थीं कि — जितना बाबा का अन्नी ध्यान रख सकती है, मैं भी नहीं रख सकती हूं. वह तो उसको ऐसे रखती है कि उसको कहीं कांटा तक न चुभ जाये. मैं तो दादी के कामों में ही इतनी फंसी रहती हूं कि बाबा को प्यार करने तक का समय नहीं मिलता, और मीरा को तो तुम लोग जानते ही हो, कितनी मस्त है. उसे नहीं मालूम उसका बच्चा क्या खा रहा है, क्या पी रहा है. बस कपड़े बनवा कर रख दिये हैं जिसका कि उसको खुद शौक है. उसके अलावा उसे कुछ फिकर ही नहीं.

इन तीन सालों में अन्नी और बाबा का रिश्ता जैसे भाई-बहन का हो गया था. यहां तक कि रक्षा बंधन वाले दिन अन्नी उसको बड़ी-सी राखी बांधने लगी थी.

इन्हीं सब कारणों से वह यह सोच ही नहीं सकती थी कि बाबा उससे अलग हो कर स्कूल भी पढ़ने जायेगा. वह तो यही सोचती थी कि हमेशा हमेशा बाबा और उसका खेल ऐसे ही चलता रहेगा. इसीलिए सुबह से बाबा की तैयारी वह अचंभित हो कर देख रही थी. और अंदर नितांत अकेलापन महसूस कर रही थी.

एक बार बाबा ने कहा भी था — मम्मी आज तुम क्यों मुझको कपड़े पहना रही हो, तुम जा कर सो जाओ, अन्नी सब ठीक कर देगी. परंतु मीरा ने कहा — तू बेटा आज स्कूल जा रहा है न, अगर तेरे कपड़े ठीक नहीं होंगे तो तेरी टीचर तुमको पप्पी नहीं करेगी. बाबा को स्कूल जाने का बहुत मन था. उसके सामने वह अन्नी का प्यार भी भूल गया था. उसने अपने पापा से सुन रखा था कि जो बच्चे स्कूल जाते हैं उनको परियां दिखाई देती हैं, और उनको ढेर सारी मिठाई खाने को मिलती है, मिठाई उसको बहुत पसंद थी. इसलिए वह स्कूल जाने के लिए मन से तैयार हो गया था.

रास्ते में चलते-चलते यही सब बातें उसके दिमाग में घूम रही थीं. आज वह बाबा के मामले में मीरा से नीचा महसूस कर रही थी.

वैसे हमेशा बाबा जब भी मीरा से जिद्द करता तो वह अन्नी से ही कहती थी— 'देखो, इसे संभालो और नीचे जा कर आइस्क्रीम टाफी खरीद दो जिसकी वह जिद्द कर रहा होता था. इसीसे अन्नी को लगता था कि बच्चा बाबा को पूरा संभालने वाली वह है, मीरा नहीं है.

रास्ते में अचानक उसने देखा कि बाबा की उंगली मीरा ने पकड़ ली थी. जिस तरह से अन्नी सब कुछ बर्दाश्त करती जा रही थी, उसको एकाएक मीरा से ईर्ष्या होने लगी थी, वह सोचने लगी थी कि यही मेमसाहब है, जिसने बाबा को उससे अलग किया है. उसका अधिकार छीना है. पर मीरा को इस बात का कहीं अहसास ही नहीं था.

स्कूल पहुंच कर इतने सारे बच्चे देख कर उसका अपना अनाथालय याद आने लगा था, उसको लगा कि

इन चहारदीवारियों के अंदर भी बच्चे कितने खुश रह सकते हैं. बहुत से मां-बाप उसको इकट्ठे देखने को मिले थे. वह उत्सुकता से इधर-उधर देखने लगी थी.

स्कूल में पहुंचते ही मीरा ने बाबा की नर्सरी क्लास का पता लगाया और बाबा को ले कर वहां पहुंची. उसी समय एक सुंदर-सी टीचर बाहर निकल कर आयी. मीरा से कुछ अंग्रेजी में बात कर के बाबा को अंदर ले गयी. पर बाबा बराबर अन्नी को नरमाई आंखों से देखता जा रहा था. अन्नी का भी मन हुआ कि उसको जाने से रोक ले, पर बीच में मीरा थी. जिसकी डांट से वह डरती थी. बस, उसने मीरा से डरते-डरते यही सब पूछा था कि बाबा कब घर आयेगा. मीरा ने उसे समझाते हुए कहा था—ठीक साढ़े बारह बजे बाबा को यहां लेने आ जाना.

उसी समय से अन्नी का मन उखड़ने लगा था. यद्यपि वह मीरा के साथ-साथ घर वापस जा रही थी फिर भी उसको लग रहा था कि वह बहुत खाली-खाली लग रही है. उसको बराबर बाबा का ध्यान आ रहा था कि कहीं स्कूल में उसको किसी चीज की जरूरत हो गयी, तो किससे कहेगा.

एकाएक उसको उसकी सुंदर-सी टीचर का ध्यान आ गया था. उसका मन भारी होने लगा था. उसने उस टीचर को बहुत ध्यान से देखा था, वह उससे कहीं अधिक सुंदर थी. उसकी ड्रेस भी उससे अधिक साफ और अच्छी लग रही थी. उसको लगा कि बाबा यदि उसको प्यार करने लगा तो वह कहां जायेगी, कौन है उसका इस दुनिया में. बड़ी मम्मी मुझको क्या दे सकती हैं, बस खाना कपड़ा, पैसा और अपना बंटा हुआ प्यार.

★ ★

घर आते ही सीधे वह शीशे के सामने पहुंची, उसने अपनी बिखरी हुई लटों को धीरे से संभाला और अपनी मैक्सी को बड़े गौर से देखा. उसी समय से उसने सोच लिया था कि क्यों नहीं वह बाबा की टीचर से ज्यादा सुंदर लग सकती है. उसके मन में एक स्पर्धा की भवना आ गयी थी. वह सीधे बड़ी मम्मी के पास पहुंची. वह नाश्ता बनाने में व्यस्त थीं. उसी समय बोल उठी—मेम-साहब, मैं ऐसे कपड़ों में स्कूल नहीं जाऊंगी, मुझे तो अच्छे वाले कपड़े चाहिए.

बड़ी मम्मी ने उड़ती हुई नजर से उसको देखा और दिलासा दी कि सब बन जायेंगे, तसल्ली रखो और प्लेट में आमलेट डाल कर दादा के कमरे में चल दीं. दादा उसी समय नाश्ता करते थे. जिसको बड़ी मम्मी स्वयं अपने हाथों से बनाती थीं.

अन्नी चुपचाप उनको देखती रही, उसकी समझ में नहीं आ रहा था कि वह किधर से अपना काम शुरू करे. मीरा भी अपने कमरे में जा कर लेट गयी थी, वह इतनी दूर पैदल चल कर थक गयी थी. अन्नी चुपचाप दरवाजे खोल कर बाहर निकल आयी थी और बाहर गेट पर जा कर चुपचाप खड़ी हो गयी. खाली मन जाने कहीं भटकने लगा था. एक तो बाबा का ध्यान उसको लगातार आ रहा था. दूसरी तरफ उस टीचर से ईर्ष्या जोर पकड़ती जा रही थी. तीसरे साढ़े बारह तक अपना समय भरना चाह रही थी.

उसी समय दो लड़के बिल्डिंग से हंसते हुए निकले. अन्नी की खाली निगाह आज अचानक उनकी तरफ चली गयी. उनमें से एक ने, जो कि थोड़ा तेज था, अन्नी को देख कर आंख मारी. अन्नी को बहुत अटपटा-सा लगा. वह चुपचाप घर की तरफ चली आयी. घर में आते ही फिर एक खालीपन, इतने में बड़ी मम्मी ने उसे देखा, देखते ही बोलीं—अन्नी तू कहां चली गयी थी? मैं तो दादा के कामों में इतनी फंसी रही कि तेरा ध्यान ही नहीं रहा. तू ने कुछ खाया है या नहीं, अन्नी उनकी तरफ उदास-सी देखती रही. बड़ी मम्मी ने किचन में जा कर उसको दो पराठा और सब्जी खाने के लिए दी और कहा—जा बेटा, बाबा के गंदे कपड़े पड़े हैं उनको धो कर डाल दे.

अन्नी ने जल्दी से कपड़े धो कर सूखने को डाल दिये और जा कर घड़ी देखने लगी. घड़ी में अभी साढ़े दस बजे थे. उसके मन में आया कि क्यों न अभी से स्कूल चली जाये और बैठे-बैठे वहां के बच्चों के साथ बाबा को देखे. उसने तुरंत अपनी छोटी-सी अलमारी से अच्छी वाली मैक्सी निकाली, जो कि बड़ी मम्मी ने उसके बाहर जाने के लिए बनवायी थी और पहन कर शीशे के सामने खड़ी हो गयी. उसने अपने बाल भी थोड़े-थोड़े बाबा वाली टीचर की तरह काढ़ने की कोशिश की, पर कुछ बात नहीं बन पा रही थी, इसलिए खुले ही छोड़ दिये. जो कि उसके ऊपर अच्छे लग रहे थे. और बड़ी मम्मी को वहीं से आवाज लगायी और कहा—मैं स्कूल बाबा को लेने जा रही हूं, उसे डर था कि बड़ी मम्मी कहीं उसे रोक न दें. इसलिए जल्दी से बाहर भाग गयी.

बाहर आ कर उसने देखा कि दोनों लड़के वहीं जमे हुए हैं. वह तीर-सी स्कूल की तरफ चल दी. दोनों लड़के बिल्डिंग के ही नौकर थे. उनमें से एक, जो थोड़ा तेज था, वह अमेरिकन कपल के घर में काम करता था. वह दस बजे के बाद फ्री हो जाता था क्योंकि उसके साहब और मेमसाहब दोनों काम पर चले जाते थे. दूसरा निठल्ला था वह हमेशा काम न करने के बहाने नीचे घूमा करता था. अन्नी को देखते ही दोनों उसके पीछे लग गये. और स्कूल तक पहुंच गये थे. अन्नी को डर भी लग रहा था और सुख भी हो रहा था. वह मन में सोच रही थी कि उसकी ड्रैस जरूर अच्छी लग रही होगी इसलिए यह दोनों उसके पीछे आ रहे हैं.

स्कूल की छुट्टी में अभी देर थी, उसे गेट पर से ही एक चपरासी ने रोक दिया था. उसने यह नहीं सोचा था, वह तो सीधे बाबा के क्लास तक जाना चाहती थी. और उसकी टीचर को अपनी ड्रैस दिखाना चाहती थी. पर मजबूरी में वह वहीं स्कूल की सीढ़ियों पर बैठ गयी थी. उसने देखा, लड़के दूर पर खड़े-खड़े उसे घूर रहे हैं. वह भी उनको कभी-कभी देख लेती थी.

★ ★

छुट्टी होते ही बाबा को ले कर सीधी घर चली आयी थी. और जल्दी-जल्दी बाबा की स्कूल ड्रैस उतारने लगी थी. बाबा बराबर उसको स्कूल की बातें बता

रहा था--अन्नी पहले तो मुझे तुम्हारी बहुत याद आयी. मैं रोने लगा. अन्नी को इस बात से बहुत तसल्ली हुई, उसने कहा--तू चला क्यों नहीं आया? मैं कैसे आता, टीचर जी हैं न, उसने मुझको गोदी में उठा लिया और मुझको टाफी दी, मैंने वह टाफी तेरे लिए रख ली है. और जेब से टाफी निकाल कर अन्नी के मुंह में दे दी. फिर अन्नी को अच्छा नहीं लगा, उसे जिस बात का डर था वही हुआ. उसको लगा कि कुछ दिनों में बाबा को अपनी टीचर अच्छी लगने लगेगी. फिर वह कहां जायेगी, उसी समय उसको वह दोनों लड़के याद आने लगे, जो उसे बाहर मिले थे. फिर भी वह बाबा के काम रोज की तरह करने लगी.

बाबा का स्कूल का और उन लड़कों का सिलसिला ऐसा बंधा कि धीरे-धीरे अन्नी का मोह बाबा की तरफ से हट कर उस तेज वाले लड़के की तरफ हो गया.

कभी-कभी तो वह बाबा को घर में छोड़ कर सीधे नीचे आ जाती थी और उन लड़कों को खोजने लगती थी.

अब दोनों में तेज वाले लड़के ने अन्नी की कमजोरी पकड़ ली थी. वह कभी-कभी अन्नी से अकेले में भी मिलने लगा था. और अन्नी भी न जाने कितने-कितने बहाने करके बाहर भाग आती थी. बड़ी मम्मी ने उसको कई बार रोका भी--अन्नी, तू पहले की तरह बाबा को अपने पास नहीं रखती है. . .इसका उसने एक ही उत्तर सीख लिया था--मम्मी, अब तो वह थोड़ा बड़ा हो गया है, वह अपने आप सब कुछ कर लेता है. बड़ी मम्मी को ज्यादा डांटने की आदत नहीं थी. वह यही सोच लेतीं कि-- बच्ची है, कुछ तो मन का करेगी. इसी तरह मीरा ने भी उसको टोका था पर अन्नी उसके सामने पड़ती ही नहीं थी.

एक बार बड़ी मम्मी से किसी पड़ोसिन ने ही कहा, जिनके पास उनका बैठना-उठना होता था, 'कि अन्नी आपकी एक लड़के से लगी हुई है, कभी इधर-उधर पांव पड़ गया तो आपकी बड़ी मुसीबत हो आयेगी. सुनते ही बड़ी मम्मी के दोनों कान गर्म हो गये, और गुस्से से मुंह लाल हो गया. बोलीं--कौन कहता है? पड़ोसिन ने कहा--हमारा नौकर तो बाहर आता-जाता रहता है. उसीने बताया है, मैंने तो आपसे इसलिए कह दिया कि वह लड़की है उसको संभालना भी आपको ही है.

बड़ी मम्मी का वहां मन नहीं लगा--सीधे घर चली आयीं और अन्नी को घर में ढूंढ़ने लगीं. अन्नी उस समय घर पर नहीं थी. उन्होंने तुरंत अपनी दूसरी वाली आया को अन्नी को बाहर ढूंढ़ने के लिए भेजा.

अन्नी तीसरे माले की सीढ़ियों पर बैठी अमरीकन के नौकर के साथ कमर में हाथ डाल कर कुछ बातें कर रही थी. उसने जब आया को उसकी तरफ आते हुए देखा तो उठ कर घर की तरफ चल दी. घर में घुसते ही सबसे पहले सोफे पर बैठी बड़ी मम्मी मिलीं, उनका मुंह लाल देख कर वह एक कोने में दुबक गयी. दूसरी वाली आया ने उन्हें पूरी सूचना दी. बड़ी मम्मी से गुस्से के कारण ठीक से बोला नहीं जा रहा था. उन्होंने यही कहा--अन्नी, तुमको यह क्या हो गया है?

पहले तो अन्नी उनको गौर से देखती रही फिर बिलकुल ऐसे बोली, जैसे कुछ हुआ ही नहीं-- मम्मी, गुस्सा क्यों होती हो. पहले बाबा मुझको प्यार करता था तब तो तुम कभी गुस्सा नहीं हुईं अब वह नौकर प्यार करता है तो तुम . . . और नरमाई आंखों से बड़ी मम्मी को देखने लगी.

बड़ी मम्मी को लगा कि उसको अपने सीने से लगा लें. पर उनकी हिम्मत नहीं हुई. चुपचाप जा कर बिस्तर पर लेट कर सोचने लगीं. □□□

एक ग़ज़ल • महेश अनघ

हम खोज रहे हैं उसे जो आस-पास है,
ये जिंदगी अपने लिए घर की तलाश है.

जो भी मिला वो एक टुकड़ा उम्र ले गया,
जुड़ता नहीं किसी से भी ये मन उदास है.

जितने भी उजले ख्वाब थे वे रात बन गये,
फिर भी न जाने कौन सी सुबह की आस है.

पूजा के वक्त देवता पत्थर बना रहा,
वैसे तो जर्रे-जर्रे में उसका निवास है.

स्कैभैंगो · राकेश वत्स

रातरानी की खुशबू हवा में घुली है. थोड़ी-थोड़ी नमी भी है. साफ है कि बरसात अपना बचपन छोड़ने की तैयारी कर रही है.

एक दस-बारह साल का मोहक शक्ल वाला लड़का ब्रश माथे पर लगा कर सलाम करता है और पूछता है—साब पालिश?

मैं उसको मना करने से पहले आसमान की ओर ताकता हूं. लड़का समझ जाता है और मुझे भी समझाने की कोशि करता है—ये साब, बरसने वाले बादल नहीं हैं. इस वक्त की पालिश कल दिनभर भी आपके जूतों का साथ देगी, लाइये दो मिनट में कर देता हूं.

लड़के के बात करने के ढंग से मैं प्रभावित होता हूं. लेकिन बियर बार का जलता-बुझता लाल अक्षरी नाम मुझे अपनी ओर खींच लेता है. मैं लड़के की तरफ बीस पैसे का सिक्का बढ़ाता हूं—पालिश, फिर कभी सही. लड़का ले लेता है और बिना कोई जबाब दिये खिसक जाता है.

बार के अंदर ही हल्की-हल्की-सी चकाचौंध और दबे-से शोर में जब तक पूरा नशा नहीं हो जाता, तब तक मैं एक ही सवाल से लड़ता रहता हूं—लड़के ने जाते वक्त मुझे सलाम क्यों नहीं किया? नशा बहुत तेज हो जाता है तो मैं अपने हाल ही में बने दोस्त मिस्टर चावला की कोठी पर सो रहा होता हूं. चावला एक पैसे वाला आदमी है और मैं इनकमटैक्स आफिसर का अभिन्न मित्र हूं. बीसवीं सदी की दोस्ती के लिए बस इतना-सा आधार काफी है.

सुबह आंख खुलती है तो लड़का ट्रे में चाय का कप रखे मुझे जगाता है. कप मेरे हाथ में थमा कर चला जाता है, लेकिन एक क्षण बाद ही वापस लौट आता है और बीस पैसे का सिक्का टेबल पर रख कर बोलता है—ये आपके पैसे! और बिना मेरी ओर देखे तेजी से मुड़ जाता है.

मैं उसे 'जरा रुको' कह कर रोकता हूं.

—जी? वह मेरे सामने खड़ा होकर उंगलियों के नाखून कुतरने लगता है.

—एक पैकेट सिगरेट तो मंगवा देना, मैं जेब से पैसे निकाल कर उसे पकड़ाना चाहता हूं.

—रहने दीजिये, सिगरेट आपके पास अभी पहुचती है, बोल कर वह कुदाली-सी मार कर बाहर निकल जाता है, पर दहलीज को पार करते ही मिस्टर चावला से टकरा जाता है. चावला उसकी धकेल से गिरते-गिरते संभलता है और एक बार लड़के की सहमी आंखों में कड़वी नजरों से देख कर अपना कीमती नाईट गाऊन झाड़ता है. इसके बाद वह कुर्सी पर आ बैठता है और मुस्करा कर पूछता है—कहो, नींद अच्छी आयी थी?

मैं नींद के सवाल का जवाब देकर लड़के की बाबत पूछता हूं. पता चलता है कि वह चावला साहब का छोटा भाई है. नाम है समीर, प्यार से लोग उसे सोमू कहते हैं. स्वर्गवासी मां-बाप के प्यार ने उसे बिलकुल बिगाड़ कर रख दिया है. अक्सर स्कूल से भाग जाता है. पूछो तो जवाब देता है, पढ़ने-लिखने से क्या लाभ?. . . . जब बी. ए.,-एम. ए. पास भी रिक्शा चलाते हैं तो वह तो बिना पढ़े-लिखे भी आराम से चलाई जा सकती है! छोटे किस्म के लोगों के साथ घूमना ज्यादा पसंद करता है. वह जह चावला जैसे इज्जतदार आदमी के खानदान पर एक बदनुमा धब्बा है और यह धब्बा दिन-ब-दिन फैलता चला जा रहा है आदि-आदि.

मैं लड़के के साथ हुई रात की मुलाकात को दबा जाता हूं और पूरे आठ साल तक दबाए रखता हूं. आज के इस दिन तक भी जब कि हम दोनों दोस्त एक-दूसरे को लंगोटिया कहते हैं, दो-चार छोटे-छोटे बिजनेस भी हमारे साझे हैं, चावला जैसा धनवान हो जाना मेरी मंजिल है और चावला को मेरी जरूरत. कभी किसी बात पर अनबन भी हो जाती है तो हम दोनों इनकम टैक्स आफिसर की सलाह से फैसला कर लेते हैं. अब वे हमारे दोनों के अभिन्न मित्र हैं.

चावला का इस बीच बहुत विकास हुआ है. आज उसके पास कार तथा कोठी है और शोहरत भी. लेकिन आज भी वह छोटे भाई सोमू को अपने खानदान के उज्ज्वल इतिहास पर एक कलंक-सा मानता है. इस कलंक के बारे में वह चिंतित भी दिखाई देता है. कभी-कभी नशे में तो यहां तक बक देता है, 'शायद यह लड़का मेरी मां के किसी गुप्त अपराध का परिणाम है!' और ऐसा बक कर वह नीट पीना शुरू कर देता है.

आज फिर बारिश आने के आसार हैं. देसी गुलाबों की खुशबू हवा में घुली हुई है. मैं और मेरा दोस्त रोज गार्डन के किनारे लगी कार में बैठे बियर पी रहे हैं. पता नहीं कहां से बेमतलब की एक बहस हमारे बीच आकर बैठ गयी है. दोस्त का विश्वास है कि चाहे व्यवस्था कोई भी हो, चाहे भगवान ही सीधा दुनिया का शासन क्यों न सम्हाल ले, छोटे आदमी की नियति छोटापन ही रहेगी. उसे कोई बदल नहीं सकता. बदल जाने की क्षमता, जिस वर्ग को सर्वहारा कहा जाता है, उसमें होती ही नहीं.

मैं दोस्त के इन विचारों को एक ढकोसला करार देता हूं. सुरक्षित लोगों के दिमागों में पैदा हुआ शोषण का पुराना हथकंडा कहता हूं. दिशा बदल कर बहस इस दर व्यक्तिगत स्तर पर उतर आती है कि उदाहरण भी व्यक्तिगत ही पेश होने लगते हैं. मैं परोक्षतः मिस्टर चावला को बुर्जुआ और उसके छोटे भाई को सर्वहारा सिद्ध करने की कोशिश करता हूं. वह मुझे पेटी-बुर्जुआ कहकर दोगलेपन का मुझ पर आरोप लगाता है. बढ़ते-बढ़ते बात यहां तक बढ़ जाती है कि चावला गुस्से में आकर बियर की बोतल सड़क पर पटक कर तोड़ देता है और कार स्टार्ट कर के घर की ओर चल देता है.



पूरा रास्ता इंजन चलने की आवाज के सिवा दूसरा कुछ भी सुनाई नहीं देता. कार घर के सामने आकर रुकती है तो तेज हार्न के लगातार बजने की आवाज से सारा मुहल्ला चौंक उठता है. एक चीखती-सी आवाज के साथ गैरेज का शटर खुलता है, कार के अंदर पहुंचते ही वह बंद भी हो जाता है.

अपने सोने के कमरे में पहुंच कर देखता हूं तो बिस्तर हमेशा की तरह बड़े ही साफ-सुथरे ढंग से बिछाया हुआ मिलता है. घर का इस तरह का सारा काम छोटा ही करता है और प्रायः बाजार से छोटी-मोटी चीजें लाने का काम भी वही सम्हालता है. न जानने वाला आदमी सोच भी नहीं सकता कि वह चावला साहब का भाई है. देखते ही पहला खयाल यही आता है कि घर का नौकर है.

गैरेज की बत्ती बंद करके छोटा खाना गर्म करता है और टेबल पर लगा कर मुझे आवाज देता है. मेरे टेबल पर पहुंचने से पहले ही चावला भी चुपचाप आकर बैठ जाता है. यहां भी मुंह में ग्रास चबाने की चप-चप के सिवा दूसरा कुछ भी सुनाई नहीं देता. कभी-कभी चम्मच किसी कटोरी या प्लेट के साथ टकरा जाता है तो लगता है कि बहस मेरे और चावला के बीच अभी भी मंडरा रही है.

खाना खत्म होता है तो छोटा हाथ पोंछने के लिए दोनों को तौलिये देता है. हाथ पोंछ कर मैं अपने कमरे में चला जाता हूं और चावला अपने कमरे में, बाद में छोटा किचन में जाकर खाना खाता है और सारे बर्तन एक जगह इकट्ठे करके, जीने के पास ही, बरामदे में बिछे तख्तपोश पर लेट जाता है.

कुछ देर बाद ही हमारे मकान की बत्तियां बुझने लगती हैं, मिसेज चावला किचन को ताला लगा कर चाभिया छनकाती हुई चावला के कमरे की ओर चली जाती हैं. इधर मुझे नींद ही नहीं आती. बरसाती हवाएं बार-बार खिड़की का पर्दा उठा जाती हैं. रात के काले सन्नाटे में मुझे, तख्तपोश पर छोटे के मुंह से लगी बीड़ी का लाल अंगारा बड़ा डरावना-सा लगता है.

★ ★

सुबह इस लाल अंगारे की समस्या का ही हल ढूंढ़ा जाना है. मुझे पता है, वास्तव में इस समस्या के हल के लिए ही फोन करके मुझे बुलाया गया है. छोटे ने पहली बार पैत्रिक संपत्ति का बंटवारा करने की बात उठाई है और वह इस बात के लिए कटिबद्ध है.

छोटा मेरी बात आसानी से मान जाता है, यह सब को पता है. वह मेरे से जरा दबता है, यह मुझे भी पता है. छोटे की कुछ ऐसी कमजोरियां मैं जानता हूं, जिन्हें शायद चावला नहीं जानता. जानता होता तो आज छोटा इस घर में न होता. छोटा भी इस बात को जानता है, इसलिए चोर-उचक्का साबित होने से वह डरता है. कभी-कभी अकेले में मुझे आगाह भी कर देता है—बंधु, यह सब कुछ बीरजी को न बताना, बीरजी उसका अर्थ कुछ और भी निकालेंगे, पैसे वाले लोगों की समझ कुछ और ही ढंग की होती है, वे भूख और गरीबी की रोशनी में किसी घटना को देखते ही नहीं.

मेरा भी उस घटना या दुर्घटना से अचानक ही सामना हो गया था. उस दिन मैं बस से उतर कर स्कूटर का

इंतजार कर रहा था कि अचानक मेरी नजर छोटे पर जा पड़ी थी. एक मामूली-से ढाबे के सामने लोग उसे घेरे खड़े थे. उस पर आरोप था कि लगभग एक महीना पहले जेब में पैसे न होने पर भी उसने ढाबे में खाना खाया, जब पैसे वसूल करने के लिए ढाबे के मालिक ने, ढाबे के पिछवाड़े इससे बर्तन साफ करवाने शुरू किये तो मौका पाते ही एक बड़ा-सा पतीला लेकर खिसक गया और उसे कबाड़ी की दुकान पर बेचकर चंपत हो गया.

ढाबे का मालिक छोटे को पुलिस के हवाले करना चाहता था, लेकिन मेरी रुचि उसमें देख, उसने ऐसा नहीं किया. ढाबेवाला भी जानता था कि मैं इनकम टैक्स आफिसर का दोस्त हूं. अपनी पेशियां भुगतते हुए उसने कई बार मुझे उसके पास बैठे देखा था. जाते-जाते उसने मुझे अलग बुला कर कह भी दिया था, 'जनाब जरा साब से सिफारिश कर देना, क्यों मुझे परेशान कर रहे हैं? आप देख ही रहे हैं, मैं एक गरीब आदमी हूं.'

बाद में छोटे ने मुझे बताया था कि लेट घर पहुंचने की वजह से भाई साहब ने भाभीजी को खाना देने से मना कर दिया था. उसका खयाल था कि उसकी जेब में पैसे हैं, लेकिन खाना खा लेने के बाद उसे याद आया था कि पैसे तो वह रिक्शा के मालिक को बकाया किराए के दे आया है. उस समय उसने यह स्वीकार करने में भी आनाकानी नहीं की थी कि कभी-कभी वह शहर से दूर, माडल टाऊन में रिक्शा चलाकर अपनी ऊपर की जरूरतें पूरी करता है. जरूरत की बात पर उसने अपना दर्द भी रोया था कि अपनी जरूरतें इसी तरह खून-पसीना बहा कर तब तक पूरी करनी पड़ेगी, जब तक दुनिया में सही सुबह नहीं हो जाती और आदमी के हकों का बंटवारा नहीं हो जाता. उसी दिन मैंने भी छोटे को अपने शोषकों और शोषितों के बारे में विचार बताये थे. विचार सुनकर वह मुग्ध हो गया था कि मैं कामरेड हूं. उसी दिन से मुझे उसने बंधु कहना शुरू कह दिया था.

बहरहाल इस वक्त अपने मुलायम पलंग पर लेटा मैं भी छोटे की तरह सुबह का इंतजार कर रहा हूं. मुझे लग रहा है कि जैसे यह सारी समस्या छोटे की नहीं, मेरी भी है. मैं अपने आपको समझा रहा हूं कि मुझे छोटे का पक्ष ले लेना चाहिए और कोई ऐसा रास्ता निकालना चाहिये जिससे छोटा अपने पैरों पर खड़ा हो जाए, बड़े भाई का मोहताज न रहे. छोटे का सारा अतीत और सारा भविष्य मेरी आंखों के सामने घूम रहा है, मैं उससे बचने के लिए सोने की कोशिश कर रहा हूं.

आंख लगे अभी थोड़ी ही देर होती है कि मुझे लगता है जैसे कोई दरवाजा थपथपा रहा है. समझता हूं, पड़ोस का कोई आवारा लड़का सिनेमा देख कर लौटा होगा. उस तरफ से ध्यान हटाकर सोने की फिर कोशिश करता हूं लेकिन मेरा खयाल गलत निकलता है. वास्तव में दरवाजा इसी घर का पीटा जा रहा था. पहले छोटा चावला के सोने के कमरे का दरवाजा पीट रहा था, जिसके खुलते ही एक भयंकर समस्या खड़ी हो गयी थी, और अब चावला मेरे कमरे का दरवाजा पीट-पीट कर मुझे जगाने की कोशिश कर रहा है.

मैंने अपने कमरे का दरवाजा खोला तो चावला के कमरे में से छोटे का बोलना सुनाई देने लगा— तुम लोग मुझे इस तरह नहीं दबा सकते, सिर फोड़ दूंगा या फुड़वा लूंगा. मैं कुत्ते की तरह मारा-मारा फिरूं और तुम लोग ऐश करो! अब यह नहीं चल सकता. पुलिस को बुलाने की धमकी देते हो तो बुलाओ. पुलिस क्या साली मुझे खा जाएगी? वह अंधी है कि नहीं देखेगी? मेरा हक मार-मार कर कारें खरीदी गयी हैं, बिल्डिंगें बनाई गयी हैं. बुलाओ पुलिस को! पुलिस को भी देख लूंगा और तुम्हें भी!

चावला मुझे पकड़ कर स्टोर रूम की तरफ ले गया. वहां खड़े होकर पहले उसने सामने की हवेली की ऊपर की मंजिल पर निगाह दौड़ाई. मंजिल की खिड़कियां खुली थीं और उनमें से अंधेरे के कारण कुछ भूत से लग रहे चेहरे झांक रहे थे. चावला ने उनकी तरफ पीठ कर ली और मुझे से धीरे-से पूछा — बहुत ज्यादा पिये हुए है, कहो तो पुलिस को फोन किया जाए!

—अभी ठहरो! कहकर मैं छोटे के पास पहुंचा. मिसेज चावला बीच के कमरे में खड़ी कांप रही थीं. दोनों बच्चे मम्मी की टांगों के साथ चिपके टुकर-टुकर ताक रहे थे. छोटा अंदर चावला के मसहरी लगे गुदगुदे बिस्तर पर पसरा था और पूरे कमरे में ठर्रई बदबू प्रेत की तरह मंडरा रही थी.

मुझे देखते ही वह उठ बैठा और बोला — जी नहीं, मैं दारू नहीं पीता. आज मन बहुत दुःखी था, बहुत कलप रहा था, बर्दाश्त नहीं हुआ तो थोड़ी-सी पी ली. देखो तुम बीच में न पड़ना, बंधु! मेरा हक है, मुझे अपने हक के लिए लड़ने दो. तुम अगर दलाल का काम करोगे तो मुझसे बुरा कोई न होगा, मैं कहे देता हूं.

मैंने प्यार से उसका बाजू पकड़ कर उसे खड़ा किया. छाती से लगाकर उसका माथा चूमा. फिर दाढ़ी को हाथ लगाकर कहा— चलो, चलकर तुम मेरे बिस्तर पर सो जाओ, तुम्हारे हक की बात कल सुबह होगी, सोफी हालत में!

उसने धक्का देकर मुझे पीछे धकेल दिया और चीखा—देखा बन गये न दलाल! ज्यादा से ज्यादा तुम क्या कर सकते हो? हां-हां क्या कर सकते हो? यही साबित करोगे न कि मैं चोर हूं, उचक्का हूं? हां मैं चोर हूं, उचक्का हूं. लेकिन सब कुछ अपने हक के लिए हूं. मेरा हक है इसलिए मैं यहीं सोऊंगा. तुम में ताकत हो तो उठाओ. उठाओ!! वह फिर बिलकुल सीधा पलंग पर पसर गया और जेब से शीशी निकाल कर लेटे ही लेटे दारू डकारने लगा.

उस वक्त पलंग पर पसरा वह पूरा दानव लग रहा था. आठ साल पहले की, उसके चेहरे की मोहकता बिलकुल खत्म हो चुकी थी. उसकी धंसी हुई आंखें और पिचके हुए गाल किसी नरकंकाल के सिर की तरह डरा रहे थे. टांगों पर से पायजामा उठ जाने से पिंडलियां

की मांसरहित मोटी-मोटी हड्डियां साफ दिखाई दे रही थीं. और वह रह-रह कर बेबसी में हिचक रहा था.

बाहर आकर मैंने चावला को समझाया. मिसेज चावला और बच्चों को सोने के लिए अपने कमरे में भेजा. इसके बाद रात के पूरे दो बजे मैं और चावला मिसेज चावला के कमरे में बैठकर समस्या का हल ढूंढ़ने लगे.

अंदर से अब भी छोटे का बहकना सुनाई दे रहा था. लेकिन हम अपने काम में मस्त थे. काम के साथ-साथ ड्रामा चल रहा हो जैसे— साले समझते हैं दूसरों को बरबाद करके खुशी की जिंदगी जी लेंगे. मजदूर जाग उठा है तो वह हक के लिए क्यों नहीं लड़ेगा? मजदूर कुत्ता नहीं है कि सूखी हुई दो रोटियां पाकर सारी जिंदगी दुम हिला-हिला कर गुजार देगा. कहां गया त्रिपड़ीबाली जमीन का पैसा? कहां गयी अदालत वाली गली की हवेली की रकम? हरामजादे सब बेच के हड़प कर गये. हड्डियां चबा जाऊंगा, हड्डियां. मजदूर जाग उठा है तो अपने हक के लिए लड़ेगा. हक नहीं मिलेगा तो मार देगा या मर मिटेगा.

सहसा अंदर से आवाजें आनी बंद हो गयीं. आवाज की जगह अब सुनाई देने लगे गहरी नींद में सो जाने के बाद के खुर्राटे. हम दोनों ने इस शोर-शराबे के बीच समस्या का जो हल निकाला, उससे पूरी तरह सहमत हो कर अंदर गये और बेखबर छोटे को उठा कर बाहर तख्तपोश पर ले आए —एक बार सो कर अब यह सुबह ही उठेगा, चावला बड़बडाया. चावला की आवाज सुनकर मिसेज चावला बाहर निकलीं और मेरे पास आकर जैसे पति अपने से छुपाकर मुझे बताने लगीं— देखिये, आप शायद नहीं जानते, सारे झगड़े की जड़ है रिक्शा, छोटे को सिर्फ नयी रिक्शा चाहिये.

—हां, अंकल रिक्शा में बिठाकर हमें रामलीला दिखाने ले जाया करेंगे. बड़े लड़के ने भी हामी भरी.

फिर चावला के निकट आते ही मिसेज चावला बच्चों को साथ लेकर अपने कमरे में चली गयीं. चावला साहब भी मेरी पीठ थपथपाकर अपने कमरे में चले गये. जाते-जाते वे मुझसे कह गये— जरा बाहर का खयाल रखना, दरवाजे बंद करके न सोना जबकि अंदर जाते ही उन्होंने अपने दरवाजे अच्छी तरह से बंद कर लिये थे.

★ ★

चावला के दरवाजे बंद होते ही सामने की खिड़कियां भी एक-एक करके बंद होने लगीं. भुतहे चेहरे अब पूरे शरीरों के साथ जलते हुए शीशों के अंदर हाथ नचा-नचा कर नाच रहे थे. मैंने सिगरेट सुलगायी और छोटे के तख्तपोश पर बैठकर नाच को देखने लगा. बत्तियां बुझ गयीं तो नाच भी बंद हो गया और मैं उठकर अपने बिस्तर पर चला आया.लगा जैसे नींद अब नहीं ही आए-गी. थोड़ी देर करवटें बदलने के बाद खयाल आया, छोटे की शीशी में अगर थोड़ी-सी बची पड़ी हो तो क्यों न उसे चुपके से मारा जाए, सुबह छोटा जो पूछेगा सो देखा जाएगा, सुसरी नींद तो ठीक ढंग से आ जाएगी.

सुबह छोटा हमेशा की तरह ट्रे में चाय का कप लेकर आया तो वह हल्का-हल्का मुस्करा रहा था. चाय लेकर मैंने उसे पास ही बिठा लिया. रात के कारनामे के लिए उसे शबाशी दी और पूछा— अब तुम्हारा क्या प्रोग्राम है?

मेरा सीधा सवाल सुनकर पहले वह थोड़ा हिचका, फिर बोला—बंधु, मेरा हक बस मुझे दिला दो, कौन आदमी क्या करता है, कैसी जिंदगी जीता है, हमें इससे कोई मतलब नहीं.

—हक कैसा?

वह थोड़ा चौंका— हक कैसा होता है?

—मेरा मतलब है जमीन-जायदाद, रुपया-पैसा, कपड़े-गहने, इनमें से क्या?

—यही कि मां-बाप की जायदाद, इन्होंने जो दस साल पहले बेची थी, उसमें से मेरा हिस्सा मुझे मिल जाना चाहिये.

—ठीक है, कहकर मैं अंदर गया और अपने साथ चावला को लेकर लौट आया. चावला ने पहले से ही सारा हिसाब बना रखा था. पूंजीपति भविष्य के खतरों के प्रति सचेत होता है. मांग सुनते ही अंदर से वह बही उठा लाया. पता चला कि जमीन और मकान के पूरे पंद्रह हजार मिले थे. छोटे के हिस्से आए साढ़े सात हजार. साढ़े छः हजार छोटा थोड़े-थोड़े करके अबतक ले चुका है. चावला ने बीड़ियों के लिए लिये गये दस पैसे से लेकर वैष्णोंदेवी जाने के लिए दिये गये पचास रुपये तक की पूरी एक फहरिस्त छोटे के हाथ में थमा दी.

छोटा फहरिस्त को उलट-पलट कर देखता रहा. फिर मेरी तरफ देखकर बोला—नतीजा क्या निकला?

उसके सवाल का जबाव दिया चावला ने —नतीजा यह निकला मेरे भाई कि अब तक इस घर में रहकर जो तुम खाते-पीते रहे हो, उसको मिला कर पूरा पांच हजार तुम्हारी तरफ निकलता है.

छोटा तड़पा —है न सरासर बेईमानी? घर में रहकर जो नौकरों की तरह काम करता रहा हूं, उसका कोई हिसाब ही नहीं?

मुझे समझने में देर नहीं लगी कि चावला इस वक्त जो कुछ है, उस पंद्रह हजार रुपये की ही बदौलत. पंद्रह हजार दिखा कर ही वह बैंक से लोन लेकर इतना बड़ा बिजनेस खड़ा कर सका. कायदे से छोटे को सारी कमाई का आधा मिलना चाहिये था. लेकिन मुझे सिर्फ चावला से मतलब था, इसलिए मैंने बात सम्भाली —देखो भाई, हिसाब तो तुमने सुन लिया, अब बताओ कि तुम्हें पैसा किस बात के लिए चाहिये?

—मैंने रिक्शा खरीदनी है, गुस्से में छोटे की गर्दन की नसें फूल गयी.

छोटे की मांग की सीमा देख, चावला के मुख-मंडल पर रौनक उभर आयी. वह गदगद होकर बोला—यह हुई न अपनेपन की बात. यूं कहो कि काम करना है. मिस्टर सुरेश, पूछो कि आजकल रिक्शा कितने की आती है?

छोटे ने मेरे पूछने से पहले ही बता दिया —नौ सौ रुपये की.

चावला ने सौ-सौ के दस नोट निकाल कर उसके सामने बिछा दिये. छोटे की आंखों में चमक आ गयी. वह जोश में आकर मस्ताया—ठीक है, बस मुझे नयी रिक्शा दिला दीजिये, बाकी न मैंने आपसे कुछ लेना न आपको देना, आप अपना खुद समझें.

—लेकिन यह बात लिखकर देनी पड़ेगी साथी? मैंने छोटे को टटोला.

—जब मैं वह कह रहा हूं तो लिख देंगे.

सुनते ही चावला लपक कर अंदर चला गया और टाइप किया हुआ एक छोटा-सा कागज लेकर लौट आया. आते ही उसने कागज मुझे थमा दिया —इस पर दस्तखत होने चाहिये.

मैंने कागज छोटे के हाथ में थमा दिया. उसने कागज उलट-पलट कर देखा. अदालती भाषा समझ नहीं आयी तो बोला — तुम ही बता दो बंधु, क्या लिखा है?

कागज लेकर मैंने सारांश में बता दिया कि यही लिखा है कि हिसाब करके मैंने अपने बड़े भाई चावला से अपने हक के सारे रुपये बसूल पाए, अब मुझे कुछ भी लेना-देना नहीं है.

—यह तो ठीक लिखा है, कहकर छोटे ने झट से दस्तखत कर दिये. मैंने दो सौ रुपये और दिला दिये. छोटा कृतज्ञता से भर उठा और जेब में रुपये डालता हुआ इस बात के लिए भी वचनबद्ध हो गया कि इस कोठी में वह दुबारा कदम नहीं रखेगा.

उधर टेबल पर नाश्ता लगने की सूचना मिसेज चावला ने छोटी बच्ची के हाथ भिजवा दी थी. लेकिन छोटे ने नाश्ता करने से भी इनकार कर दिया. 'जब इस घर पर हमारा कोई हक ही नहीं तो फिर नाश्ता कैसा?' बोल कर वह खड़ा हो गया और भरी-भरी-सी आंखों से बड़े भाई तथा बड़े भाई के बीवी-बच्चों को देखता हुआ कोठी से बाहर हो गया. मिसेज चावला अपने दोनों बच्चों के साथ खिड़की में से उसे जाता देख रही थीं. मुझे लगा जैसे एक अत्याचार उन पर भी हुआ है, क्योंकि औरत और बच्चों का कोई वर्ग नहीं होता, कोई जात नहीं होती, मर्द जो कुछ बोला है, वह उसे करना ही पड़ता है. मेरे मुंह से निकल गया — इस समझौते पर छोटे का टिके रहना मुझे मुश्किल लगता है.

सचमुच कुछ दिन बाद ही जब कि मैं चावला की नयी कार में बैठा बियर-बार की तरफ जा रहा था कि गली के मोड़ पर छोटे की रिक्शा अचानक गाड़ी के सामने आकर अड़ गयी. बड़े भाई ने हार्न बजा-बजा कर छोटे को हट जाने के लिए चुनौती दी, लेकिन छोटा गर्दन अकड़ा कर, पागलों की तरह मुस्कराता रहा. सहसा पास से एक सिपाही भागकर आया और गाड़ी को सैल्यूट मारकर छोटे पर पिल पड़ा. विवश हो कर छोटे ने कुत्ते के अंगड़ाई लेने की तरह शरीर तानकर कार के मडगार्ड में उलझी रिक्शा बाहर खींची और गली का मोड़ काटकर, कड़वी आंखों से हमें देखता हुआ आंखों से ओझल हो गया. □□□

सरस्वती कालेज, अंबाला छावनी, हरियाणा

चम्मच भर चीनी

• राही मासूम रज़ा

पता नहीं रात खत्म हुई थी या नहीं. पता इसलिए नहीं कि आंखें बंद हों तो रात और दिन में फर्क करना मुशकिल हो जाता है. और वह लगभग बारह -चौदह साल से आंखें बंद किये जी रहा था ---या शायद मर रहा था.

मैंने उससे कई बार कहा भी कि आंखें बंद करने से वास्तविकता नहीं बदलती पर उसने हर बार यही जवाब दिया कि---यार यह आंखें खोलने का युग ही नहीं हैं,किसी ने सूरज के सातों घोड़ों को समय के रथ के पीछे जोत दिया हैं. और वर्तमान से भविष्य की तरफ जाने वाला रास्ता जैसे बंद हो गया है. सूरज के घोड़े समय को अतीत की तरफ खींचे लिये जा रहे हैं. समय सूरज के उलटे जुते हुए घोड़ों से कमजोर है. तो इस चक्कर में कौन पड़े--- जब मैं जानता हूं कि मैं अकेला धारे की दिशा नहीं बदल सकता तो आंखें खोल के अपने डूबने और हारने का तमाशा क्यों देखूं---

उसकी यह बात एक तरह से दिल को लगती भी है. इसीलिए हमेशा की तरह मैं फिर चुप हो गया. पर मुझे लगा कि वह अपनी बंद आंखों से मेरी तरफ देख रहा है. और उसके मुर्दा होंठों पर बहुत दूर से चल के आयी हुई, थकी-मांदी-सी एक मुस्कराहट हैं.

बोला --- मेरी चाय में शकर जरा ज्यादा डालना.

मैंने पूछा --- क्यों? शकर यूं ही बहुत मंहगी है--- शकर खाने से दिल की बीमारियां भी हो जाती हैं.

वह हंस पड़ा. फिर बोला — दिल? जाना जाता है कि इस राह से लशकर गुजरा. दिल है कहां यार यह नगर सौ मरतबा लूटा गया . . .

मैंने जल कर कहा---जिंदगी गजल के बाहर भी है.

वह बोला---हां. पर जिंदगी गजल के अंदर भी है--एक चम्मच चीनी तो और डालो यार.

मैं झल्ला गया---कहा न कि शकर मंहगी हो गयी है.

उसने पूछा---अच्छा यह बताओ कि पिछले सत्ताईस-अट्ठाईस बरसों में मेरे सिवा सस्ती क्या चीज हुई है?

यह सवाल सुन कर मैं कांप गया.

उसके सवाल के प्याले में जो जहर था उसे देख कर तो शायद शिवजी भी घबरा कर दो कदम पीछे हट जाते.

देवताओं ने समुंदर को मथा,
जहर भी, अमृत भी मिला.
जहर पीने के लिए,
एक ही हाथ बढ़ा.
देवताओं ने समुंदर को मथा.
---एक कतरे को मगर कौन मथे?
देवता मुझसे बड़े हों,
तो मथें मेरी तरह,
एक कतरे को जरा------ :
जहर पी लेने को तैयार हूं मैं.
इंद्र दरबार में है कोई,
जो आगे बढ़ कर,
बूंद मंथन का उठा ले बीड़ा?
किसने अपने को मथा,
मेरे सिवा ---
मेरे ही जैसे दीवानों के सिवा?
इंद्र दरबार में कोई नहीं,



• एस. टी. चौधरी

सब उठ गये,
सन्नाटा है.
अब यहां कोई नहीं, कोई नहीं, कोई नहीं------
मेरे सिवा.
देवताओं के नगर से तो वही मेरी जमीं अच्छी थी.

उसकी आवाज मेरे दिल के गुंबद में गूंजती रही. फिर आवाज खत्म हो गयी. गूंज बाकी रही. और वह गूंज मुझ पर तपती हुई रेत के जर्रों की तरह बरसती रही और मेरे विचारों और मेरी भाषा और मेरे शब्दों और मेरी आवाज , मेरी जाग और मेरी नींद के बदन पर छाले पड़ते रहे. —

और गूंज के उस बेरहम सहरा में उसकी आवाज फिर आयी इसीलिए कहता हूं कि मेरी चाय में एक चम्मच चीनी और डाल दो.

फिर सन्नाटा.

उसकी आवाज इतनी साधारण थी कि मैं डर गया. मैंने जल्दी से शकर-दान में चमचा डाला. परंतु चमचे ने शकर को जैसे ही छुआ वैसे ही भरा हुआ शकर-दान खाली हो गया और दो मुट्ठी चीनी सिमट कर आधा चम्मच चीनी बन गयी.

और वह खिलखिला कर हंस पड़ा. बोला — कथाकारजी, इस शकर-दान में बस इतनी ही चीनी थी. वास्तविकता बस यही आधा चम्चम है. बाकी सपना है. सपना, यह आधा चम्मच चीनी जल्दी से मेरी चाय में डाल दो नहीं तो यह भी गायब हो जायेगी. और मुंह की कड़वाहट कम करने के लिए इस आधा चम्मच वास्तविकता की मिठास भी नहीं मिलेगी.

मैंने घबरा कर आधा चम्मच चीनी की तरफ देखा. मुझे लगा कि चीनी जैसे आधा चम्मच से भी कम रह गयी हैं. मैंने जल्दी से वह आधा चम्मच से भी कम चीनी उसकी प्याली में डाल दी.

उसने प्याली को अपनी तरफ सरका लिया और फिर अपने बायें हाथ से प्याली में चीनी घोलने लगा.

मैंने पूछा—बायें हाथ से शकर क्यों मिला रहे हो?

उसने कहा— जिसे तुम मेरा बायां हाथ समझ रहे हो, वह दर-अस्ल मेरा दायां हाथ है.

मैंने कहा— अच्छा, अच्छा. मैं समझा कि लेफ्टिस्ट होना फैशन हो गया है इसलिए तुम प्रैक्टिस कर रहे हो.

वह हंस पड़ा—फैशन की बात नहीं. बात यह है कि दाहिना हाथ सलाम करते-करते इतना थक गया है कि कोई काम करना हो तो मजबूरन बायां हाथ चलाना पड़ता है. पर मुझे तो कुछ करना ही नहीं है. बायां हाथ बेकार पड़ा-पड़ा खराब हो रहा है. चाहो तो यह बायां हाथ बेच कर थोड़ी-सी चीनी खरीद लावो. चाय साली अब भी कड़वी है.

चाय की दूसरी चुसकी ले कर उसने बुरा-सा मुंह बानाया.

मैंने सोचा कि उसका बायां हाथ में ही क्यों न लेलूं. मुझे एक बायें हाथ की जरूरत भी है. मेरा अपना बायां हाथ तो इधर बरसों से सुन्न पड़ा हुआ है.

तो मैंने पूछा—क्या लोगे अपने बायें हाथ का?

उसने कहा — एक चम्मच चीनी.

मैंने कहा— अभी लाया.

उसकी हंसी ने दरवाजे तक मेरा पीछा किया. पर मेरे पास उसकी हंसी का मतलब समझने का वक्त नहीं था. मैं अपने पुराने बायें हाथ की जगह एक नया बायां हाथ पाने की जल्दी में था.

चम्मच भर चीनी के लिए मैं दुकान-दुकान भटका. दुकानों पर चीनी की बोरियां थीं पर मेरे हाथ का चम्मच नहीं भरा. दुकानदारों से चम्मच में बोरियें डलवाता और देखता कि चम्मच आधा खाली है. मैंने सारे शहर की चीनी खरीद ली पर चम्मच खाली का खाली रहा.

मैं थका-हारा फिर उसके पास लौट आया.

उसकी आंखें बंद थीं और अपने बायें हाथ से चाय की प्याली में चीनी घोंट रहा था.

—लाये? उसने मेरे पैरों की थकी हुई आहट से पूछा.

—न, मैंने कहा— इस शहर में चम्मच भर चीनी है ही नहीं.

—दुकानों पर गये होगे?

—हां, और कहां जाता?

वह हंस दिया—पागल! दुकानों में चीनी है पर तुम्हारी जेब में दाम नहीं है. चम्मच भर चीनी का दाम नहीं है.

मैं झल्ला गया — दाम नहीं है?

—हां.

—तो फिर यह क्या है? और मैंने उसके मुंह पर अपने बैंक की किताब खींच मारी. वह हंसने लगा. मेरा पारा चढ़ने लगा. मुझे यकीन था कि वह मेरा मजाक उड़ा रहा है.

वह हंसते-हंसते बोला — गुस्सा थूक कर आंखें बंद करो और लेट जाओ. एक चम्मच चीनी लाना तुम्हारे बस की बात नहीं.

—हरामजादे. मैं चीख पड़ा. सामने पड़ी हुई खाली दवात मैंने उसे खींच मारी—एक छनाका हुवा. आईना टूट गया और मैंने महसूस किया कि जैसे मेरे मुर्दा हाथ में धीरे-धीरे जान आ रही है.

कड़वी चाय की ठंडी प्याली उसी बायें से उठा कर मैंने एक सांस में खाली कर दी.

इंद्र दरबार में है कोई,
जो आगे बढ़ कर,
बूंद मंथन का उठाले बीड़ा?
किसने अपने को मथा,
मेरे सिवा,
मेरे ही जैसे दीवानों के सिवा?
इंद्र दरबार में कोई नहीं,
सब उठ गये,
सन्नाटा है

वह सन्नाटा चम्मच भर चीनी बन गया और मेरी चाय मीठी हो गयी. □□□

१०, देवदूत, बैंडस्टेंड, बांद्रा (पश्चिम), बंबई - ५०

एक पंजाबी लघुकथा

कैले की बहू

● रामसरूप अणखी

गज्जन, चन्नण और कैला—तीनों भाई थे. मां की उम्र अस्सी के आसपास होगी. गज्जन वगैरा बहन-भाई तो आठ-नौ थे, पर बाकी अब वही तीनों बचे थे. गज्जन बुढ़ापे में पांव रख रहा था. चन्नण चालीस से ऊपर और कैला पैंतीस से ऊपर था.

बाप उनका अमली था पूरे तौर पर. पांच पांच तोले की भरी डिबिया को आठवां दिन पार नहीं करने देता था.

बाप अफीम खाता था और गज्जन ने शराब को मुंह से अलग न करना सीख लिया था. शराब में अंधा हुआ, सोता पड़ने पर, जब वह घर लौटता तो बड़बड़ाता हुआ ललकार कर कहता—उठा दूंगा तेल में से कौड़ी! और मां माथे पर हाथ मार कर वहीं बैठ जाती. बाहर खेत में जा कर बाप-बेटे ने कभी एक फली तक नहीं तोड़ी थी. आये साल जमीन का टुकड़ा गिरवीं रख देते और फिर पूरी क्यारी चबा जाते! जब बाप मरा, मां ने सुख की सांस ली.

गज्जन के बाप को आसपास के लोग खूब जानते थे. गज्जन के रिश्ते के लिए लोग आते और लौट जाते. और फिर चन्नण की बात भी शरीके वालों ने नहीं बनने दी. घर में भूख बसी हुई थी...

एक दिन चन्नण ने मां से सलाह की.

—गज्जन की बात तो अब सौ कोस दूर गयी. मेरी भी छोड़. अगर कैले का हम ब्याह कर दें, तो मां, तुझे जाती बार का कुछ सुख मिल जायेगा.

—अब तो पैसों का कोई रिश्ता ही सिरे चढ़ेगा! चन्नण की मां बोली.

—आदमी का बच्चा तो भई, लाख और करोड़ में भी मुश्किल से मिलता है. पैसों के रिश्ते में कोई बुराई तो नहीं!

चन्नण ने कई लोगों से बात की कि कहीं पैसों वाला रिश्ता ही मिल जाये.

आखिर सुलक्षिणी घड़ी आयी. मेड़ों वाले घीचर ने दो हजार का एक रिश्ता ला दिया. सात सौ सगाई से पहले दिया गया. तेरह सौ ब्याह से दस दिन पहले देने की बात रही.

आज ब्याह में पूरे दस दिन बाकी थे. तेरह सौ रुपयों की बात तो अलग, तेरह सौ ठीकरियां इकठ्ठी करना भी मुश्किल बात थी.

सेठ धौंकलमल का पूरे धौले में ब्याजू नावां चलता था. नब्बे दे कर वह सौ पर अंगूठा लगवा लेता.

जैसे-तैसे करके चन्नण दोपहर को ही धौंकल की दुकान पर पहुंचा. एक-दो बार सिर मार कर धौंकल मान गया—जिसके साथ उठना-बैठना हो, उसे जवाब भी तो नहीं दिया जाता! फिर उसने धीरे से कहा—दस ऊपर तेरह सौ दे कर चौदह सौ का लेखा—तीस तुझे छोड़े! दिन छुपते ही आ जाना. दो गवाह ले आना.

मां के साथ पूरी बात करके चन्नण आटे वाली मशीन पर गया, इधर-उधर भी देखा पर गज्जन कहीं भी बैठा नजर नहीं आया. भारती का डेरा उसका पक्का अड्डा था. चन्नण भी वहीं जा पहुंचा. गज्जन नीम से पीठ टिकाये बाहें टांगों को लपेटे वहां बैठा था.

—हम कब से वहां बैठे तेरा इंतजार कर रहे हैं! धीरे से खांस कर चन्नण ने कहा.

—भई जब एक बार मैंने कह दिया कि मेरी उमर नहीं है! मुझे बता, इसमें मुझे क्या कमाई होगी? गज्जन का कोरा जवाब था.

—लेकिन भाई से बड़ी कौन-सी चीज है, बता? चन्नण ने नरमी धार ली.

—मैंने तुझे सिरे की बात बता दी है, अब तुम दोनों जैसे जी में आये करो.

—गज्जन, तुझे कुछ सोचना चाहिए. मां के हाथ देख, अब कांपते हैं और सिर हिलता है. अगर कैले का परिवार बस जाये तो हम दोनों की रोटी भी चलती रहेगी.

—ये बातें लौंडों-लपाड़ों को शोभती हैं. मैं तो साठ के पास पहुंचा हुआ हूं. धौंकल बनिये का तेरह सौ अगर न दे पाये तो मेरी गरदन में फांसी अलग पड़ी रहेगी. मेरी तो अब उम्र ही नहीं रही! गज्जन ने सही बात दोहरा दी.

—मैं ही कौन बाईस साल का हूं! मैं तो कहता हूं कि भई, अगर छोटा भाई ब्याहा जाये, तो हमारा भी टुक्कड़ पकता रहेगा. बुढ़िया अगर घर पर न हो तो कोई पड़ोसिन तक आग लेने नहीं आती.

गज्जन गरदन झुकाये तिनके से लकीरें खींचता रहा. चन्नण उससे पास खड़ा सांटी से धरती पर बैल-मूतने बनाता रहा. थोड़ी देर सुस्ता कर वह फिर बोला—कैले की बहू जब बाहर जाया करेगी और जब उसके फूल-सितारों वाले घाघरे का नाड़ा टखनों तक लटकता होगा तो गज्जन, तेरे कलेजे में आग न मचेगी?

—फिर तो सालों, तुम दोनों एका कर लोगे. मुझ खूसट को कौन पास फटकने देगा!

—तू बड़ा भाई है. पांच करना चाहे पचास करना! चन्नण ने बांह से पकड़ कर गज्जन को खड़ा कर लिया... □□□

(अनुवाद : सुदीप)

रात के साये के बाद

● कन्हैयालाल गांधी

उसने देखा तो दो बजने में दस मिनट बाकी थे. रात का सन्नाटा सायं-सायं कर रहा था. वह दुबला-पतला इनसान अब भी अपने छोटे से आंगन में ऊपर-नीचे घूम रहा था. कभी उसके चलने की रफ्तार तेज हो जाती तो कभी वह ऐसे संभाल कर पैर रखता जैसे जमीन को भी अपने बोझ से बरी रखना चाहता हो.

यकायक जोर से बादल गरजे. बिजली की टेढ़ी-मेढ़ी कौंध आकाश में घूम गयी. सुषमा ने देखा कि उसका भाई इतनी रात बीते दालान के चक्कर काट रहा है. बड़े स्नेह से उसने पुकारा—भैया? अचानक यह शब्द सुनकर तुषार ने अपनी चारपाई की ओर कदम बढ़ाये, लेकिन दूसरे क्षण लौट कर उसने वही क्रम जारी रखने का निर्णय किया.

सुषमा का तुषार के प्रति स्नेह 'राखी' और 'भैयादूज' तक ही सीमित नहीं था. दस वर्ष पूर्व जब उसके पिता की मृत्यु हुई थी, तो उस समय उसने अभी किशोरावस्था में भी पदार्पण नहीं किया था. वह अभी ग्यारहवें वर्ष में ही थी. बीमार हालत में ही बिस्तर पर पड़े-पड़े जब पिता ने सुषमा का हाथ तुषार और रीता भाभी के हाथ में दिया था, उस समय की सारी तसवीर आंखों के सामने छा गयी. उस समय तुषार अट्ठाईस का था. बड़ी दीदी की आयु चौबीस की थी और छोटी की बाईस. यह वह जमाना था कि जब कन्या का विवाह बीस की आयु तक न होता, तो आशंका होने लगती थी और चौबीस के बाद आशंका निराशा में बदलने लगती. बूढ़े बाप की आंखों से यही आशंका और निराशा आंसू बन कर उस समय बही थी. सुषमा को मालूम था कि भैया ने कितनी तकलीफों में डूब कर भी अपने दायित्व को निभाया है. वह दफ्तर में केवल असिस्टेंट ही है, फिर भी उसने सुषमा को बी. ए. तक पढ़ाया था और छह जनों का परिवार भी चलाया.

लेकिन भैया आज इतने व्याकुल क्यों हैं? उदास तो वह प्रायः रहते ही हैं. लेकिन प्रायः ग्यारह बजे तक तो सो ही जाते हैं. क्या कहीं वह लड़के वाले, जो दो रोज पहले मुझे देखने आये थे, उन्होंने 'न' तो नहीं कर दी. लड़के की मां तो मां, लड़का खुद भी यही जानने के लिए बेचैन था कि हमारा मकान अपना है या किराये का, क्या कोई हमारी जमीन भी है या नहीं? भैया क्यों नहीं समझते कि लड़का साथी की नहीं, सम्पत्ति की तलाश में में था. लेकिन भैया भी करें तो क्या करें, समाचार पत्रों के विज्ञापन देखते-देखते हार गये; इधर-उधर जा-जा कर जूते घिस डाले. किसी को केवल पंजाबी कन्या चाहिए, तो किसी को ऊंचे व्यापारी की बेटी. किसी के लड़के की भांवरें तभी पड़ेंगी जब लड़की वाला अस्सी हजार खर्च करेगा और किसी की शर्त है कि लड़की वाला लड़के को एफ. आर. सी. एस. के लिए इंग्लैंड जाने का खर्चा देगा. और फिर उनके सामने बड़ी और छोटी दीदी की तसवीरें घूमती होंगी. इसी प्रकार के विलोड़न और मन्थन की प्रक्रिया के बीच सुषमा की आंख फिर लग गयी.

चिंता भी एक निराली स्थिति है. कुछ लोग इसे पी कर मिटा लेते हैं और कुछ सो कर. जो जागते रहते हैं, उन्हें चिंता मिटा डालती है. तुषार अब भी दालान में घूम रहा था. वातावरण में सन्नाटा था. रोशनी के नाम पर चांद-सितारे भी आकाश से रूठ कर न मालूम कहां चले गये थे. उनका स्थान काली घटनाओं ने ले लिया था. उस घने अंधेरे में व्यक्ति को अपना हाथ भी दिखाई नहीं देता था, तो वहां पड़े व्यक्तियों में कौन जाग रहा और कौन सो रहा है, इसका तो पता लगने का प्रश्न नहीं था.

एकदम बादल की दो-तीन बार गरज से फिर आकाश गूंज उठा. पांच साल का नीटू, जो रीता के साथ चारपाई पर सोया हुआ था, अपनी मां के गले चिपक गया और अर्द्ध-जाग्रतावस्था में बड़बड़ाने लगा—मैं गाड़ी जरूर लूंगा. रीता ने जोर से उसकी पीठ पर एक तमाचा रसीद किया और चिल्ला कर बोली—फिर वही बात? सुबह से 'गाड़ी-'गाड़ी' का मंत्र जपते

● सतीश चव्हाण



चले जा रहे हो. सो जाओ चुपचाप? चपत से नीटू पहले तो पूरी तरह जागा और फिर सिसकना शुरू किया ही था कि रीता ने गुस्से में दो तमाचे और रसीद करते हुए डांट कर कहा—चुप हो जाओ, नहीं तो जान निकाल लूंगी. और फिर नीटू की सिसकियां धीरे-धीरे नींद में डूब गयीं.

तुषार एक धोती और बनियान पहने अभी भी आंगन के चक्कर काट रहा है. नीटू रीता और तुषार की अकेली संतान था. नीटू को लगा हुआ तमाचा उसे चाबुक जैसा लगा था और उसकी रफ्तार और भी तेज हो गयी थी. थोड़ी देर में रीता फिर चिल्लाई—दालान के चक्कर लगाने से क्या बनेगा? जब कुछ कर नहीं सकते, तो अपनी और दूसरों की नींद क्यों हराम करते हो? उबाल निकलने के थोड़ी देर बाद, रीता को नींद आ गयी क्योंकि दिन में बहुत वर्षा के कारण घर में पानी भर गया था और भाभी और ननद का शरीर पानी निकालते-निकालते टूट गया था.

तुषार अभी तक नंगे पैर घूम रहा था. ऐसा लगता था कि रीता की डांट का उस पर कुछ भी असर नहीं हुआ. 'तंग आमद, बजंग आमद' रीता ने कई दिनों से तुषार को हर संभव अवसर पर फटकारना शुरू कर दिया था. उसका स्वभाव भी उसके रूखे बालों और शरीर के समान रूखा हो चुका था. लेकिन तुषार इससे परिचित हो गया था. उस पर रीता के प्रहारों का प्रभाव यों नहीं पड़ता था, जैसे सूखे पेड़ पर ओले या वर्षा का. लेकिन रह-रह कर नीटू की गाड़ी की मांग उसके शरीर में ऊपर से नीचे तक लहर मार उठती . कल उसका जन्मदिन है और उसे भी पावस की तरह अपने जन्मदिवस पर पच्चीस रुपये की खिलौना-गाड़ी चाहिए. वे लोग परसों सुषमा का शगुन मांगते हैं. उन्होंने कहा है, कि शगुन में पांच सौ एक से कम में काम नहीं चलेगा. और अभी तक मुश्किल से इधर-उधर से बटोर कर तीन सौ ही मिल पाये हैं. फिर यह पच्चासी कहां से लाऊं?

फिर बादल गरजे . आकाश में बिजली की कौंध से उजाला हो गया . रीता की आंख फिर खुली तो उसने देखा कि तुषार अभी वैसे ही घूम रहा है. सुबह के पौने पांच हो चुके थे. औरत का मन आखिर कब तक कठोर रहता, पिघल गया. वह उठकर बैठ गयी और बोली—अब तो थोड़ा आराम कर लो. फिर दिन भर तुम्हें काम करना है. सुबह नौ बजे के गये शाम को सात बजे लौटते हो. अड़तीस वर्ष की आयु में तुमने बाल सफेद कर लिये और मुंह पर झुर्रियां भी पड़ने लगीं. आज्ञाकारी पति की भांति तुषार रीता के पास पड़ी अपनी चारपाई पर लेट गया. रीता ने बात जारी रखते हुए कहा—अपने पड़ोसी पावस के पिता को देखो. तुम्हारी अपेक्षा उसकी तीस रुपये ही तो अधिक आय है और उसके घर में रेडियो, फ्रिज, कालीन, बढ़िया फर्नीचर सभी कुछ है. दो लड़कियां और एक लड़का है. लड़कियों के लिए एक-एक टुकड़ा जमीन का है और लड़के के लिए मकान है. और यहां दिन का भोजन है तो रात का नहीं . तुम घर में अधिकांश धोती-बनियान में रहते हो और मैं पुराने पेटीकोट और ब्लाउज में. आखिर लड़कियां और नीटू भी उन्हें देखते हैं. वे हमारे बारे में क्या सोचते होंगे. मैंने तुम्हें यह कभी नहीं कहा कि तुम किसी के सामने हाथ फैलाओ, लेकिन आती माया को तो न दुत्कारो. अगर कुछ पल्ले नहीं होगा तो सुषमा के हाथ कैसे रंगोगे? नीटू को कैसे पढ़ाओगे? मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूं, जैसे कि मैं कई बार पहले भी कह चुकी हूं कि इस आमदनी को मैं अपने लिए कभी न छुऊंगी. रीता कभी बोलती जा रही थी, कि दिन का उजाला होने लगा. उस प्रकाश में रीता ने देखा कि तुषार तो सो चुका है. वह उठी और अंदर घर के काम में लग गयी.

* *

समय था सुबह के सात. सूरज की प्रथम किरणों से तुषार की आंख खुली, तो उसने देखा कि केवल नीटू सो रहा है, बाकी सब उठ गये हैं. वह जल्दी से उठा तो आधे घंटे में दफ्तर के लिए तैयार हो गया. साधारणतया वह दफ्तर के लिए आठ बजे रवाना होता था परंतु आज वह साढ़े सात बजे ही चल पड़ा.

रास्ते में जिलाधीश चंद्रकांत का घर था और वह रोजाना उसकी कोठी के सामने से गुजरता था. जब वह दफ्तर जाता तो चंद्रकांत समाचारपत्र पढ़ रहे होते और जब तुषार लौटता तो जिलाधीश महोदय अपने कुत्ते से खेल रहे होते. आज तुषार कुछ पहले जा रहा था. जिलाधीश अपने लान में घूम रहे थे. उन्होंने थैला हाथ में लिये तुषार को आफिस की ओर जाते देखा. वे काफी दिनों से तुषार से बातचीत करने को उत्सुक थे. काफी सोचने पर उनसे यह गुत्थी हल न हो सकी थी कि यह व्यक्ति जब सुबह को हिरण की भांति भागता हुआ दफ्तर जाता है, तो शाम को घर लौटते समय इसकी टांगें बोझल क्यों लगती हैं? चंद्रकांत कोठी के गेट पर आये और तुषार से 'हैलो' करते हुए कहा— आज इतनी जल्दी कैसे जा रहे हैं? तुषार ने कहा— बस, ऐसे ही.

जिलाधीश के कहने पर तुषार उनकी कोठी के अंदर गया. इतने में खानसामा चंद्रकांत के लिए चाय लाया. खानसामा ने एक प्याली तुषार को दी और एक अपने मालिक को. खानसामा चला गया और दोनों परस्पर बातें करने लगे. बातचीत के दौरान चंद्रकांत को पहली बार पता चला कि तुषार उसी के दफ्तर में काम करता है. जब बहुत-सी दूसरी बातों के बाद चंद्रकांत ने तुषार को 'उस गुत्थी' को सुलझाने के लिए मजबूर किया तो उसने कहा— श्रीमान्, इसके लिए आपको मेरे घर तक चलना होगा. तुषार का घर कोई दो किलोमीटर की दूरी पर था. चंद्रकांत ने गाड़ी निकाली और तुषार को उसमें बिठा दोनों उसके घर की ओर चल पड़े. घर से दो सौ गज की दूरी पर तुषार ने देखा कि उसकी तीनों बहनें और उसका इकलौता पुत्र नीटू घर से बाहर चारपाई पर बैठे हैं. नीटू उठ गया है और तीनों बहनें बारी-बारी उसका माथा और मुख चूम

कर उसे जन्मदिन की बधाई दे रही है. तुषार आगे जाने से घबड़ा रहा था, इसलिए उसने चंद्रकांत से प्रार्थना की कि वह गाड़ी वहीं रोक दें. चंद्रकांत ने ऐसे ही किया.

तुषार ने कहा— ये तीनों मेरी बहनें हैं. पिता इनकी सारी जिम्मेदारी मुझ पर छोड़ दस वर्ष पहले इस दुनिया से चल बसे. बड़ी दो बहनें अब चौंतीस और बत्तीस वर्ष की हो चुकी हैं. जिसने छोटे बच्चे को हाथ में लिया है, उसकी आयु इक्कीस के लगभग है. इसके विवाह के लिए बड़ी मुश्किलों से लड़का ढूंढ़ा है. शगुन पर लड़केवालों की मांग पांच सौ एक रुपये की है. बाद की बात बाद में होगी. यदि परसों तक उनको शगुन देने का प्रबंध न हो सका तो यह अवसर भी हाथ से जाता रहेगा. अभी तक तीन सौ ही जुटा पाया हूं. दुर्भाग्य की बात कि, आज ही मेरे पुत्र का जन्मदिन है. उसकी मांग है कि पड़ोसी के लड़के के समान उसे भी आज खिलौना-रेलगाड़ी चाहिए जिसका मूल्य पच्चासी रुपये है. इसीलिए उसके जाग जाने से पहले ही मैं घर से निकल पड़ा था, यद्यपि मैं प्रतिदिन आठ बजे घर छोड़ता हूं.

इतने में चंद्रकांत और तुषार ने देखा, सुषमा नीटू को लिये गाड़ी की ओर आ रही है. बच्चों की मोटर-गाड़ी के लिए स्वाभाविक उत्सुकता होती है. तुषार ने साहब से जल्दी गाड़ी लौटाने की प्रार्थना की. साहब के बंगले पर पहुंच, तुषार उतर कर चल गया और शाम को नित्य के समय ही घर लौटा. घर आने पर पत्नी ने प्रसन्न मुद्रा में एक पैकेट हाथ में दिया. पत्नी खुश थी कि सुबह के परामर्श पर अमल हो गया. तुषार के पूछने पर कि पैकेट कहां से आया, रीता ने बताया कि एक सफेद गाड़ी पर कोई महिला आयी थीं, वे दे गयी हैं. सुषमा कह रही थी कि यही गाडी सुबह भी इधर आयी थी. तुषार को पहेली कुछ खुल गयी. पैकेट खुलना शुरू हुआ. घर के सभी सदस्य आसपास बैठ गये. नीटू रीता की गोद में था. लो, पैकिट खुल गया. उसमें एक थी रेलगाड़ी और एक था लिफाफा जिसमें दो सौ-सौ के नोट थे. उसने पैकेट रीता और नीटू की गोद में दे दिया और नीटू का सिर चूम लिया.

फिर रात आयी. आज आसमान साफ था. न वहां बादल थे और न बादलों की गरज. लेकिन तुषार आज भी जाग रहा था. यह क्यों? संभवतः बिजलियां उसके मन में अब भी बार-बार कौंध रही थीं. यह बिजलियां थीं, पुरानी यादों की. जिलाधीश की सहानुभूति के प्रति गहरी कृतज्ञता उसकी संकल्प शक्ति को और भी दृढ़ कर रही थी. अनेक स्मृतियां उसके अवचेतन मन से उभर रही थीं. कितने लोगों ने उसे मोहने की कोशिश की थी? उसकी ईमानदारी के प्रति एक जिलाधीश की मान्यता ने उसके संकल्प को एक नयी स्फूर्ति दे दी थी. उसे एक नयी रोशनी दिखाई देने लगी थी और वह इस नयी रोशनी की बांहों की ओर खिचता जा रहा था. □□□

९७, लोदी एस्टेट, नयी दिल्ली.

बल बनाम बुद्धि

एक जंगल में एक सियार रहता था. एक दिन उसने एक हाथी को अपनी मौत मरा पाया. किंतु वह उसके शरीर के कड़े चमड़े को काट न पाया. इतने में ही एक सिंह उधर आ निकला. सियार ने नत-मस्तक हो कर कहा—वनराज, मैं इस हाथी की रक्षा आपके लिए कर रहा हूं. कृपया इसे अपना भोजन बनाइए.

—मैं दूसरे द्वारा मारे गये प्राणी का भक्षण नहीं करता. इसे तुम अपना ही भोज बनाओ, कहकर सिंह अपने रास्ते लगा.

सिंह के जाते ही एक चीता उधर आ निकला. सियार ने सोचा, कि यह भी बलवान है अतएव इसको भी चतुराई से ही निपटना होगा. ऐसा सोच कर उसने झुंझलाये हुए स्वर में चीते से कहा—चाचा, आप मौत के मुंह में क्यों जाना चाहते हैं? इस हाथी को एक सिंह ने मारा है और रक्षा का भार मुझ पर सौंप कर स्नान करने गया हुआ है. मुझे कह गया है कि यदि कोई चीता पास में आये तो उसे तत्काल सूचना दूं—क्योंकि एक बार जब उसने एक हाथी मारा था, और स्नान करने चला गया था तो एक चीते ने उस हाथी को अपना भोज बना लिया था. तब से ही वह इस जंगल को सभी चीतों से खाली कर देना चाहता है.

यह सुनते ही चीता घबड़ा गया और बोला—मेरे प्यारे भतीजे, मेरी जान बख्शो. उसे मेरे आने की सूचना न दो. और वह निकल भागा. चीते के जाते ही एक तेंदुआ आ पहुंचा. उसे देखते ही सियार ने सोचा, इसके दांत बड़े पैने हैं. मैं इनका उपयोग हाथी की मोटी खाल काटने के लिए करूंगा. ऐसा सोच कर उसने उससे कहा—क्यों भतीजे, इतने दिनों तक कहां थे? तुम तो भूखे भी लग रहे हो. यह देखो, सिंह द्वारा मारा गया हाथी यहां पड़ा है. मैं पहरे पर हूं. तुम भी उसका भोजन कर सकते हो बशर्ते उसे काट सको और सिंह के आने के पहले भाग सको.

—नहीं चाचा, इसका गोश्त मुझसे नहीं पचेगा, मैं चला, तेंदुआ बोला.

—घबड़ाओ नहीं, सिंह को दूर से ही आता देख कर मैं तुम्हें सावधान कर दूंगा.

और तेंदुआ ने ज्यों ही हाथी की मोटी खाल काटी कि सियार बोल उठा—जल्दी करो, सिंह आ रहा है. तेंदुआ रफूचक्कर हो गया. इतने में ही एक दूसरा सियार वहां आ पहुंचा. उसे अपनी बराबरी का समझ सियार उस पर तेजी से झपटा. अपने नुकीले दांतों द्वारा उसे धराशायी कर दिया और स्वयं हाथी का भरपूर भक्षण कर गया.

(पंचतंत्र की एक कथा) □□□

आस्था की कतरनें

• भगवान अटलानी

कहते हैं, आकृति हृदय का दर्पण है. मस्तिष्क में पलता या मन में चलता कोई विचार अथवा शब्द मुखमंडल पर अपना प्रभाव अवश्य छोड़ता है. किसी व्यसन अथवा गुणविशेषयुक्त व्यक्ति की मुखाकृति पर तदनुसार चिह्न, संकेत उभरने लगते हैं. वैसे तो यह विचार विभिन्न तर्कों को पक्ष-विपक्ष में आमंत्रित करके विवादग्रस्त होने की क्षमता रखता है, फिर भी व्यक्तिगत रूप से मैं सदैव इस उक्ति की पात्रता को संदेह की दृष्टि से देखता रहा हूं. इस संदेह का कारण मेरी एक सबल मान्यता है. आज की दुनियां में बहुत कम लोग इतने सीधे-सादे रह गये हैं कि वे अपने हृदय की बात सरलता से पढ़ जाने दें. किस के साथ किस समय कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह सामान्य बुद्धि हर पढ़े-लिखे या समझदार व्यक्ति में, मेरे अनुमान से, आदिकाल से ही रही होगी. विचारों को चेहरे से पढ़ लेना तो बहुत बड़ी बात है, आजकल तो कोई वर्षों तक साथ रहने वाले निकटस्थों के चरित्र और विश्वसनीयता का सही जायजा लेना भी मुश्किल होता है.

कुछ दिन पहले उपर्युक्त कथन की सत्यता पर मेरी थोड़ी-बहुत आस्था थी. कुछ स्थितियों में हाव-भाव से अंतर्मन को जान लेने वाली बात मुझे ठीक लगती थी. मगर अब वह हलकी-फुलकी आस्था भी टूट गयी है. आप कारण पूछेंगे तो मैं बता दूंगा. मगर आपसे एक आश्वासन पाना चाहूंगा कि आप मेरी बात को पहले पूरा सुन जायेंगे. बीच में न तो कोई प्रश्न ही पूछेंगे और न कहीं उठ कर ही जायेंगे. दर असल यह आश्वासन मैं इसलिए चाहता हूं कि भावनात्मक दृष्टि से घटना के साथ मेरा गहरा जुड़ाव है. अब तो जुड़ाव न कह कर गहरी टूटन वाली बात मुझे कहनी चाहिए. आप आश्वासन दे रहे हैं? तो ठीक है. आइए, मैं सारी बात ज्यों की त्यों बिना किसी जोड़-तोड़ के आपके सम्मुख रख देता हूं.

हम चार दोस्त हैं, बचपन के. साथ-साथ गलियों में खेले, शरारतें कीं, पिटे, बड़े हुए, स्कूल गये. बाद में कालेज गये, नौकरियों पर लगे, शादी-विवाह हुए, बाल-बच्चे पैदा किये. मगर मित्रता में कोई अंतर नहीं आया. अब केवल मैं और डाक्टर नवीन इस शहर में हैं. डाक्टर छाबड़िया अजमेर में हैं और हमारे चौथे मित्र ओमप्रकाश उदयपुर में एक कंपनी में मैनेजर है.

हां, यहां मैं यह बता दूं कि स्कूली शिक्षा के बाद हमारी पढाई अलग-अलग कालेजों में हुई थी. इसका कारण विषय-भिन्नता था. डाक्टर छाबड़िया को तो शहर ही छोड़ देना पड़ा था. उसे क्योंकि यहां प्रवेश नहीं मिला था इसलिए उदयपुर मेडिकल कालेज में जाना पड़ा था. खैर, हम चारों एक स्थान पर रहे हों या अलग-अलग स्थानों पर. मगर प्रयत्नपूर्वक वर्ष में पांच-दस दिन साथ रहने का सिलसिला जमा ही लेते थे. हम चारों का यही मानना था कि हममें से हर एक दूसरे की खुशी के लिए सब कुछ कुर्बान कर सकता है.

इस वर्ष होली से कुछ दिन पहले मैंने और डाक्टर नवीन ने तय किया कि यह होली हम चारों एक साथ मनायेंगे. एक साथ मनायेंगे, इतना ही नहीं उदयपुर जाकर मनायेंगें. ओम प्रकाश के पास तय तो कर लिया मगर होली का त्यौहार, लोग दूर-दूर से अपने घर आते हैं और हम बाहर चले जायें, यह बात हमारे घर वालों को अच्छी नहीं लगती. पत्नियां भी रूठतीं, नाराज होतीं. इसीलिए हमने एक झूठ बोलने की योजना बनायी. हमने होली से एक दिन पहले अपने अपने घरों पर बताया कि उदयपुर से ट्रंक काल आया है. ओम प्रकाश की पत्नी की तबीयत बहुत खराब है. अस्पताल में भर्ती कराया है इसलिए हम दोनों उदयपुर जा रहे हैं. रास्ते में अजमेर रुकेंगे डाक्टर छाबड़िया के पास क्योंकि उसने एम. बी. बी. एस. उदयपुर से किया है, इसलिए उसकी उपस्थिति लाभप्रद सिद्ध हो सकती है. उसे साथ लेते हुए उदयपुर निकल जायेंगे.

यह बहाना चला और कुछ छिद्रों को छोड़ कर खूब चला. हमारी पत्नियों के अतिरिक्त घर के सब लोग हमारे प्रस्थान की सार्थकता से सहमत थे. हमारी पुरानी मित्रता का परिप्रेक्ष्य उन्हें संतुष्ट करने के लिए यों भी पर्याप्त था. मगर पत्नियां पूर्णतः संतुष्ट नहीं हुई थीं. उनका कहना था, भाभीजी बीमार हैं. देखभाल के लिए या तो उन्हें भी साथ ले जाय जाये या हम लोग भी न



• सुशील भारती

जायें. क्योंकि उन्हें साथ ले जाना हमें बिल्कुल भी स्वीकार्य नहीं था. इसलिए कुछ समझा कर, कुछ नाराजगी का खतरा उठा कर हम लोग अजमेर के लिए रवाना हो गये.

★ ★

ठीक होली के दिन सुबह हमने गाडी पकड़ी. दोपहर एक बजे जब हम डाक्टर छाबड़िया के घर अजमेर पहुंचे, वह अस्पताल से लौट कर भोजन कर रहा था. मुझे और डाक्टर नवीन को सामने पा कर, वह भी होली की दोपहर को, वह चमत्कृत और उत्साहित हो कर उछल-सा पड़ा.

लगभग दस दिन पूर्व उसके घर में दूसरी पुत्री का जन्म हुआ था. सामने पलंग पर उसकी पत्नी नवजात बालिका के साथ लेटी हुई थी. हम दोनों ने आगे बढ कर बच्ची को देखा. डाक्टर छाबड़िया और उसकी पत्नी को बधाई दी कि उन्होंने सौंदर्य को प्रतिमूत किया है. औपचारिकता के नाते हमने सौंदर्य प्रतिमूति की बात की हो, ऐसा नहीं था. गुलाबी फ्राक में लिपटी वह छोटी-सी गुड़िया सचमुच खूबसूरत थी.

हम दोनों भी डाक्टर छाबड़िया की थाली में ही भोजन करने बैठ गये. माताजी रोटियां, सब्जी पहुंचाती रहीं. हम खाते और बातचीत करते रहे. पूर्व निश्चयानुरूप यहां भी हमने ट्रंक काल आने, ओम प्रकाश की पत्नी के अस्पताल में भर्ती होने ओर इस संदर्भ में हमारे वहां जाने की बात, सत्य का मुलम्मा चढ़ा कर गंभीरतापूर्वक कह दी. डाक्टर छाबड़िया को चलने अथवा न चलने की दृष्टि से हमने कुछ नहीं कहा.

भोजनोपरांत हम लोग टहलने बाहर निकले. रास्ते में बात का रूप फिर ओम प्रकाश की ओर मोड़ कर, हम



किन परिस्थितियों में घर से निकले हैं, पत्नियों ने हमारे प्रस्थान को कैसे लिया है, ये और इस तरह की अन्य बातें हमने कह डालीं. इस प्रकार जमीन तैयार करने के बाद मैंने उससे पूछा — चलने के बारे में तुम्हारा क्या इरादा है?

—चलेंगे. उसके कथन में विशेष उत्साह नहीं था. लेकिन डाक्टर नवीन और मैंने उसके इस शब्द को तूल दे कर 'मजा आ गया' 'हमेशा ऐसा ही कहा करो' 'यह हुई न कोई बात' जैसे वाक्य जड़ दिये.

घूम-फिर कर तीन बजे लगभग घर लौटे तो मैं शारीरिक रूप से क्लांत अनुभव कर रहा था. पूछा तो डाक्टर नवीन ने भी यही बात कही. इसलिए हम दोनों तो आंखें बंद करके सो गये. डाक्टर छाबड़िया की तीन वर्षीय बड़ी बच्ची नीलम को हलका-सा बुखार था. वह उसकी परिचर्या, आमोद-प्रमोद ओर सेवा-सुश्रूषा में लगा रहा.

जब मेरी नींद खुली, कमरे में हर ओर अंधेरा था. मैंने उठ कर लाइट जलायी. घड़ी देखी, सात बजे थे. मेरे उठने, लाइट जलाने ने डाक्टर नवीन की निद्रा में व्यवधान उपस्थित किया ही होगा. मैंने आवाज दे कर रही-सही कसर भी पूरी कर दी.

मैं हाथ-मुंह धोने बाहर निकल आया. लौटा तो देखा, मोढ़े पर आसीन डाक्टर छाबड़िया उनींदे-से डाक्टर नवीन को कुछ समझाने का प्रयत्न कर रहे हैं. डाक्टर नवीन की मुद्रा से लगा कि न तो वह कुछ समझने को उत्सुक है और न समझाने की कोशिश कर रहा है. तौलिये से मुंह पौंछता मैं उनके निकट पहुंचा तो डाक्टर नवीन ने एक लंबी जमुहाई ली ओर मेरी ओर संकेत करते हुए कहा—इसे बताओ.

मैंने डाक्टर छाबड़िया की तरफ देखा —क्या बात है, भई?

डाक्टर छाबड़िया के स्वरों में असमंजस और संकोच था—यार वो नीलम की तयबीत खराब चल रही है. फिर सी. एम. एच. ओ. से झगड़ा चल रहा है. वह छुट्टी मंजूर नहीं करेगा.

मेरे होठों पर अनायास ही मुसकराहट तैर आयी—नीलम को तुम दवा दे रहे हो न? एक-दो दिन की दवा भाभीजी को समझा दो. परसों नहीं तो उससे अगले दिन हम लौट ही आयेंगे. कल का सार्वजनिक अवकाश है. रही परसों की बात, तो तुम बीमारी की अर्जी लिख कर पड़ोसी को दे चलो. आकस्मिक अवकाश, वह भी तबीयत खराब होने की स्थिति में, सी. एम. एच. ओ. को मंजूर करना ही पड़ेगा.

—तुम समझते नहीं हो, पहले भी उससे छुट्टी के चक्कर में ही झगड़ा हुआ है. लीव विदाउट पे करवा देगा.

—मैं थोड़ा झुंझला गया, देखो, हमारी तरफ से कोई दबाव नहीं है. तुम चलना चाहो, चलो, न चलना चाहो, मत चलो. मगर ऐसे भौंडे और घटिया तर्क मत दो. साफ कह दो कि चलने की इच्छा नहीं है.

मेरे अंतिम वाक्य ने जैसे उसे बच निकलने का अवसर दे दिया—ठीक है, तुम मेरे बारे में अगर इस तरह

सोचते हो तो ऐसा ही सही. मेरी चलने की इच्छा नहीं है तो मत चलो.

हम तीनों के बीच गहन तनावयुक्त मौन ने डैने पसार लिये. हमारे सिर झुक गये. मुद्रा विचारपूर्ण हो गयी. हम इस स्थिति से तब उबरे जब माताजी ने बाजार से सब्जी लाने के लिए छाबड़िया को आवाज लगायी.

उसके जाते ही डाक्टर नवीन ने मुझे अपराधी-सा ठहराते हुए कहा— तुम्हें इच्छा-अनिच्छा वाली बात नहीं कहनी चाहिए थी. उसे इनकार करने का अवसर मिल गया.

मैं उखड़ गया — क्यों? क्यों नहीं कहनी चाहिए थी यह बात? वह हमारी बेटी की शादी में आया हुआ कोई बराती है क्या कि हाथ-पांव जोड़ कर उसे राजी करें? स्थिति की नजाकत और उसमें अपनी उपादेयता के आधार पर उसे चलने या न चलने का निर्णय करना चाहिए था. झूठी बहानेबाजी करके वह आखिर क्या सिद्ध करना चाहता था?

मेरी तल्खी से किनाराकशी करते हुए डाक्टर नवीन ने कहा— सब ठीक है. लेकिन उसे यह अवसर नहीं देना चाहिए था, बस. खैर चलो. एक बार फिर बात करके देख लेंगे.

—मैं तो अब बात करूंगा नहीं. तुम्हें करनी हो तो करो.

उसके लौटने के बाद हम तीनों बाहर निकले. बस-स्टैंड से रात्रि-सेवाओं का समय पूछ कर स्टेशन पहुंचे. प्लेटफार्म पर आ कर कॉफी का आर्डर दिया. इस दौरान मैं प्रायः मौन था. कॉफी के मग हाथ में आने के साथ ही डाक्टर नवीन ने उससे कहा — यार डाकसाब, आज मूड बड़ा फिलासफराना हो रहा है. तुम बुरा न मानो तो एक बात पूछूं?

—पूछो, डाक्टर छाबड़िया ने जिज्ञासु मुलायमियत से कहा.

—तो बताओ, हम लोग क्यों जी रहे हैं? मर क्यों नहीं जाते?

वाक्य समाप्त होते-होते मुझे आभास हो गया कि डाक्टर नवीन ने विषय का सूत्र पकड़ लिया है. प्रस्तुतीकरण की इस विचित्र किंतु सटीक तैयारी का स्पर्श पा कर मुझे बरबस हंसी आ गयी. अपनी हंसी को छिपाने के लिए मैं मग हाथ में ले कर उन दोनों से थोड़ा दूर हट गया. कॉफी समाप्त करके मदार गेट से अंडे, व्हिस्की और बियर खरीदकर घर पहुंचने तक डाक्टर नवीन आदर्श उपदेशक और डाक्टर छाबड़िया समर्पित श्रोता में परिणित हो चुके थे.

घर पहुंचे तो हम तीनों यार मुक्त अनुभव कर रहे थे. घर छोड़ने और वापस लौटने के बीच हमारा जैसे कायाकल्प हो गया था. किसी तनाव, किसी गंधि की नाममात्र परछाई भी हमसे कोसों दूर थी. एक दिलखुश ताजगी, एक लुभावनी आत्मीयता हमारे स्नेह को बुरी तरह छलकाये दे रही थी.

साढ़े दस बज चुके थे. हमें साढ़े ग्यारह वाली बस पकड़नी थी. डाक्टर नवीन को मैंने घड़ी दिखाई—

—अब तैयारी करो डाक साब, समय हो गया है.

—यार, तुम दोनों मेरे साथ चलो. माताजी को कन्विन्स करना पड़ेगा.

—हम क्या बात करेंगे? जो कुछ करना-कराना है, तुम ही कर लो.

वह प्रतिवाद न कर पा कर अनिच्छापूर्वक बाहर चला गया. हम दोनों ने एक दूसरे की ओर मुस्कराहटें उछाली.

—तुमने एक बात सोची है?

—क्या?

—वहां पहुंच कर जब इसे पता लगेगा कि भाभीजी स्वस्थ हैं, तब क्या होगा?

—जब तुमने यहां इतना किया है तो वहां भी कुछ कर ही लोगे.

—वहां मैं कुछ नहीं करूंगा. तुम्हें ही संभालना पड़ेगा.

हमें अपनी बातचीत का क्रम एकाएक ही तोड़ देना पड़ा. वह वापस लौट रहा था—हो गयी बात?

—नहीं. तुम लोग चलो.

—क्यों? फिर क्या हो गया?

—वे मान नहीं रही हैं. तुम चल कर समझाओ.

मैंने और डाक्टर नवीन ने आंखों ही आंखों में एक दूसरे को आने वाली स्थिति का नेता पद संभालने के संकेत किये. दोनों ने ही ये सांकेतिक प्रस्ताव ठुकरा भी दिये. अंततः प्रस्तावित करने और निरस्त करने का सिलसिला जारी रखते हुए हम डाक्टर छाबड़िया के साथ उस कमरे में आ गये जहां उसकी जच्चा, पत्नी लेटी हुई थी. माताजी कुछ फासले पर बिछी चारपाई पर बैठी थीं.

* *

माताजी से औपचारिक वाक्यों के आदान-प्रदान के बाद हम दोनों चुप हो गये. हम दोनों ही इस प्रतीक्षा में थे कि दूसरा पहल करेगा. डाक्टर नवीन ने जब मौन को तोड़ने के प्रति थोड़ी-सी भी उत्सुकता नहीं दिखाई तो विवशतः मुझे ही प्रारंभ करना पड़ा—इसे भेज नहीं रहे हैं क्या?

मैंने यह मुलायम अनुरोधपूर्ण प्रश्न छाबड़िया की माताजी से किया था. मगर उत्तर उसकी पत्नी ने दिया—ये वहां जाकर क्या करेंगे?

उनके लहजे की सख्ती मुझे अच्छी नहीं लगी. फिर भी मैंने भरसक स्वाभाविक बने रहने का प्रयत्न किया—हम लोग वहां जाकर क्या करेंगे?

—आप लोगों का क्या है? संयुक्त परिवार है. पीछे की कोई चिंता है नहीं.

—आप समझती हैं, हमारे आने से वहां सब लोग खुश हैं?

—हों, तभी तो आप जा रहे हैं.

रोकते-रोकते भी मेरे स्वर में व्यंग्य व रोष घुल मिल गये—जी नहीं, आपको गलतफहमी है. सौ-सवा सौ रुपये जबरदस्ती खर्च करके लौटने पर कोई किसी

का स्वागत नहीं करता.

—कोई स्वागत करे या न करे, हमें इससे क्या करना है. हम तो यह जानते हैं कि इन्हें उदयपुर नहीं जाना चाहिए.

—हम बुरे समय पर किसी के काम नहीं आयेंगे तो हमारे यहां कौन आयेगा. डाक्टर छाबड़िया का स्वर था. स्वर नहीं, मिमियाहट थी. यह मिमियाहट भी समर्थन की मुद्रा में मौन बैठी माताजी की ओर फूटी थी.

—इसमें बुरे समय पर काम आने की क्या बात है? यहां आपकी लड़की भी तो बीमार है. वे अस्पताल में भर्ती हैं. डाक्टर देख ही रहे होंगे. आपके जाने से कोई चमत्कार तो होने से रहा. डाक्टर छाबड़िया को डांटते हुए उसकी पत्नी ने जोर से कहा.

मुझे बेहद क्रोध आ गया—नीलम के मामूली बुखार में आपको इसकी जरूरत महसूस हो रही है. वहां भाभी-जी अस्पताल में पड़ी हैं. आपको कुछ विशेष नहीं लगता. इसकी उपस्थिति नीलम के लिए चमत्कारपूर्ण हो सकती है. जहां से इसने एम. बी. बी. एस. किया है, वहां जा कर यह कुछ नहीं कर सकता. मुझे तो आपकी मानवीयता पर संदेह होने लगा है.

वे रुद्ध कंठ से बोलीं—वो तो मैं जानती हूं. आपके दबाव में आ कर ये जरूर जायेंगे. अपनी मासूम बच्ची को मरता छोड़ कर दूसरों को ठीक करने दौड़ेंगे.

उनके कंठ की रुद्धता और आंखों में भर आये पानी ने मुझे उलटा अधिक उग्र बना दिया—हम लोग न तो दबाव डालते हैं और न बरगलाते हैं. रही इसके जाने-न जाने की बात, तो जिनके दोस्त डाक्टर नहीं हैं, वे भी इस दुनिया में जिंदा रहते हैं, मर नहीं जाते. ये आपके पति हैं. आप चाहे इन्हें अब भेजिए चाहे मरने के बाद अर्थी को कंधा देने भी मत भेजिए, हमें क्या करना है!

फिर मैंने पिटे प्रेमी की तरह सिर झुका कर बैठे डाक्टर छाबड़िया को संबोधित किया—मैं खुले आम कह रहा हूं. चलने के लिए हमारी ओर से कोई दबाव नहीं है. हम उधर बैठे हैं. फैसला कर के बता देना.

हम लोग वहां से उठ कर आ गये. जी बिल्कुल उखड़ गया था. इच्छा होती थी, इसी क्षण यहां से चल दें. निरंकुशता और बुद्धिहीनता के तांडव ने हमें कमजोर कर रख दिया था. अगर वह छाबड़िया की पत्नी है तो हम भी तो उसके मित्र हैं. हमारा कोई अधिकार नहीं बनता है क्या उस पर?

सवा ग्यारह बजे छाबड़िया उदास और बोझिल चेहरा लिये धीरे-धीरे कमरे में गया. दो खामोशियों में सम्मिलित हो कर तीसरी खामोशी ने वातावरण को असहायता की सीमाओं तक भारी बना दिया.

अपनी दांव पर लगी प्रतिष्ठा को हम हसरत से देख रहे थे. हमारी बात अधिक वजनदार थी. इसके बाद भी यह देखना था कि पत्नी और मित्रों में से वह किसे वरीयता देता है. निर्वाक, धड़कते हृदय से हम उसके निर्णय की प्रतीक्षा कर रहे थे.

दो-तीन मिनट बाद उसने पूछा—क्या समय हुआ है?

हमारे हृदयों में एक अदृश्य आशावाद का संचार हुआ. हम अनायास ही सोच गये कि वह साथ चलने का निर्णय ले कर आया है.

—ग्यारह बीस. डाक्टर नवीन ने बड़ी अपेक्षा के साथ कहा.

—तो चलो, मैं तुम्हें बस स्टैंड छोड़ आऊं.

एक क्षण के लिए एक दूसरे को देखते हुए मैं और डाक्टर नवीन स्तब्ध रह गये. फिर अपनी-अपनी अटैचियां साथ ले कर उठ खड़े हुए.

मात्र पत्नी के दबाव के कारण, इतना घनिष्ट होते हुए भी, मित्र की सहायता से इनकार करने वाले को विश्वसनीय माना जा सकता है क्या? गनीमत है कि बीमारी वाला किस्सा हमारा गढ़ा हुआ विशुद्ध झूठ था, अगर सच होता तो? इतने लंबे समय की मित्रता भी जब हमें चकमा दे गयी तो आस्था डिगेगी नहीं क्या?

इसीलिए मैं कह रहा था कि मुखाकृति को हृदय का दर्पण मानने वाली उक्ति पर जो थोड़ी बहुत आस्था थी, अब वह भी धुल-पुंछ गयी है. □□□

भगवान भवन, १–ए–१३०, आदर्श नगर, जयपुर—३०२००४

गौरैया और बंदर

एक जंगल में एक नर-गौरैया अपनी मादा के साथ एक वृक्ष की शाखा पर घोंसला बना कर रहा करता था. एक दिन भीषण वर्षा में एक बंदर ने उस वृक्ष के नीचे शरण ली. सर्दी से ठिठुरता हुआ वह दांत किटकिटा रहा था. उसके हाथ पैर अकड़-से गये थे. उसकी यह हालत देखकर दयावश मादा-गौरैया ने उससे कहा—तुम्हारे हाथ-पैर इस तरह बने हुए हैं कि तुम आदमी जैसे लग रहे हो. फिर क्यों नहीं इस भीषण सर्दी का अनुभव कर अपने लिए घर बना लेते, मूर्खराज?

यह सुन कर बंदर ने सोचा, कुछ लोग अपने को बड़ा बुद्धिमान समझते हैं. यह मादा-गौरैया भी उन्हीं में से एक है. अतएव क्रोध में आकर उसने कहा— ऐ बदतमीज मादा, चुप रहती है कि मैं तेरा मजा किरकिरा कर दूं!

किंतु मादा-गौरैया उसे उत्तम घर बनाने की सलाह देती ही रही. इस पर बंदर से न रहा गया. वृक्ष पर चढ़ कर उसने उसके घोंसले को तार-तार कर दिया. नर और मादा-गौरैया असहाय-से देखते ही रह गये. □

('पंचतंत्र' की एक कथा)

वापस नहीं • बीर राजा

वह पहले से भी ऊंची आवाज में रोने लगी. उसकी समझ में यह बात नहीं आ रही थी कि कोई कभी किसी मृत व्यक्ति के प्रति ऐसा सलूक भी कर सकता है? भाई उसकी ऊंची आवाज से और भड़क उठे— मातम हमारे घर नहीं है, उसके घर में है. मैं भौचक्का हो कर उन्हें देखने लगा. वह चाचा तो क्या, किसीके बारे में भी ऐसी बातें नहीं कह सकते थे. लेकिन यह बातें उन्होंने खुद कही थीं, भले ही जिंदगी में पहली बार— हमें वहां जरूर चलना चाहिए. मैं अजब कशमकश में फंसा था.

—नहीं, हम वहां नहीं जायेंगे. उसे तो बहुत पहले मर जाना चाहिए था जब तुम वहां से भाग कर नहीं आये थे. बल्कि उससे भी पहले जब हम बरबाद नहीं हुए थे. हाथ में पकड़े तार को मेरे ऊपर फेंक दिया— मैं भी उनकी वही आवाजें सुनना चाहता हूं जो मैंने उन दिनों तुम्हारी मां की सुनी थीं. वह गुस्से में नहीं थे जो रोज होते थे, ना ही उनका वह रूप था जो मैं वर्षों से देख रहा था. वह इंतकाम की आग में जल रहे थे जो उनकी तबीयत में शामिल नहीं था. माथे पर उभरी हुई लकीरें उनके अंदर की हलचल के साथ फैलती और सिकुड़ती. उनकी आंखें बीच की हर रुकावट को भेद कर दूर देख रही थीं. जहां से उन्हें उन दिनों की बातें याद आ रही थीं, जो दिन कभी के पीछे रह गये थे और भूत थे— मैंने वह आवाजें भी महसूस की हैं जिन्हें उन दिनों मैंने नहीं सुना था.

थोड़ी देर पहले जब तार वाले की आवाज आयी तो मैं अपने कमरे में बैठा हुआ बाहर से छन कर आती हुई आवाजें सुन रहा था. भीड़ में जिन आवाजों को सुनना मुश्किल होता है या जिनका एहसास भी नहीं होता, उन्हीं को अकेले बैठ कर सुनना और अलग-अलग करके पहचानना एक दूसरा अनुभव होता है. सुबह से शहर में बिजली नहीं थी. मैं अधूरा काम छोड़ कर बाहर के शोर-गुल में डूबा हर आवाज को पकड़ रहा था कि ऐन उसी वक्त तार वाले की पुकार सुनायी दी.

भाभी भी तेजी से भाग कर मेरे पास खड़ी हो गयी थी— कहां से? सब खैरियत तो है? उसके लिए कहीं से तार का आना सिर्फ खतरे की अलार्म होती है. तार के नाम से ही उसमें एक हलचल पैदा हो जाया करती— क्या लिखा है? मुझे चुप देख कर उसने दुबारा पूछा.

वहां से तार तो क्या एक खत की उम्मीद भी नहीं थी. तार पढ़ने के बाद मैंने बहुत कोशिश की कि किसी तरह उनका चेहरा मेरे सामने आ जाये लेकिन मेरे साथ अक्सर ऐसा होता है, जब भी मैं किसी व्यक्ति को याद करता हूं तो उसी वक्त उसका चेहरा मेरी याददाश्त से ओझल हो कर कहीं खो जाता है. मैं तार को इस तरह देख रहा था जैसे वह वहीं से निकल कर मेरे सामने आ जायेंगे— चाचा नहीं रहे, यह सुनते ही वह रोने लगी. मैं चौंक कर उसे देखने लगा. उसने कभी उन्हें नहीं देखा था, ना ही उनका कभी जिक्र घर में हुआ था. क्या एक अनजान व्यक्ति के लिए कोई इतनी जल्दी रो सकता है? और मैं तो एक लंबे अरसे से उन्हें भूल ही चुका था.

—क्या हुआ? तुम क्यों रो रही हो? भाई उसकी आवाज सुन कर लपके थे. वह तार देखते ही वह एकदम चुप हो गये. निरंतर तार की एक सतर को पढ़ रहे थे. थोड़ी देर में कहीं खो गये. आंखें अपने आप बंद हो गयीं और अंदर की ओर कस कर खींच लीं. तार मुट्ठी में मिच गया— चुप करो. इसमें रोने की क्या जरूरत है? उन्होंने एक झटके से आंखें खोलीं, जैसे नींद से जगे हों.

भाई गुस्से में अपने कमरे में दीवार पर टंगी तसवीर के सामने जा कर खड़े हो गये थे— इधर आओ. उनके स्वर में गुस्से के साथ प्रार्थना भी थी. वह पत्थर की तरह अचल थे. केवल आंखों से आंसू बह रहे थे. उस कमरे में आ कर जो खुशी सदा मिलती थी वह नहीं थी. वहां रखी हुई हर चीज पराई लग रही थी— तुमने मां और बाऊजी की यही एक तसवीर देखी है. लेकिन मैंने उनकी वह तसवीर भी देखी है जब वह पिंजर बन चुके थे. छोटी-छोटी जरूरतों के लिए उनके हाथ पसरते थे. चाचा जालसाजी से सब हड़प चुके थे. उन दिनों मां अकसर रोती तो बाऊजी कहा करते— अब झगड़ने में क्या पड़ा है? जिस रात उनकी मृत्यु हुई थी, उस रात मरने से पहले दरवाजा बंद कर के उन्होंने वह सारे कागजात जला दिये थे जिनमें चाचा के खिलाफ सबूत थे. इस पर भी चाचा का मन नहीं भरा था. भाई जेब से रूमाल निकाल कर तसवीर पर जमी हुई गर्द की परत को साफ करते जा रहे थे. शीशे के नीचे से दो हंसते हुए चेहरे उभरते आ रहे थे. मानो कोई आ कर उस तसवीर को आज ही वहां टांग गया हो और हम पहली बार उसे देख रहे हों— एक दिन, उन्होंने रूमाल वाले हाथ को ऊपर उठाया— उसने गुस्से में मुझे सीढ़ियों से धकेल दिया. मैं गठरी की तरह लुढ़कता हुआ नीचे जा गिरा और वहीं पड़ा कराहता रहा. नीचे आ कर वह मुझ पर फिर झपटा और अपने दोनों हाथों से मेरा सर पकड़ कर दीवार से पीटने लगा. वह खट-खट मैं आज भी सुन सकता हूं जैसे कोई पत्थर से दीवार को पीट रहा हो. रात को मुझे बाहर फेंक कर बोले थे— दफा हो जा यहां से. वह रात मुझे आज भी याद है.

बंद दरवाजों के आगे मैं सोच रहा था, कहां जाऊं? मेरा कौन है? भाई को शायद यह खबर भी नहीं थी कि मैं उनके पास खड़ा हूं. उन्होंने घूम कर मेरी तरफ देखा लेकिन वह मुझे नहीं देख रहे थे. सिर्फ उनकी आंखें खुली थीं और वह कहीं और थे. पलट कर फिर तसवीर को 'देखने लगे. दोनों हाथों में कुर्सी के हत्थे

को कस कर पकड़ लिया. उनकी एड़ियां ऊपर उठ गयीं. उनके टूटते हुए शब्द सुनाई पड़ रहे थे. लैंप से निकलता हुआ कड़ुआ धुआं कमरे में भर चुका था, जिससे आंखों में जलन हो रही थी. मद्धम रोशनी में उनका वजूद रहस्य से भरा लग रहा था. उनके हिलते हुए हाथों की छाया दीवार पर तरह तरह की शक्लें बना रही थी जैसे दो व्यक्ति लड़ रहे हों, कभी गिर पड़ते, कभी उठ कर फिर लड़ पड़ते— कभी एक दूसरे को घूरने लगते.

मैं चकित था. इतना आगे निकल जाने के बावजूद वह पीछे कैसे खिसक गये? क्या अपने निजी दुख की छाया कभी बाकी चीजों पर भी छा सकती है? तरह तरह की बातें मेरे अंदर उठ रही थीं. फिर इतना गुस्सा यदि किसी को भी आ सकता था तो वह मैं था और कोई नहीं हो सकता था. मुझे आज उनकी मृत्यु पर कोई खुशी नहीं हुई और न ही गुस्सा आया. एक लंबे समय से मुझे उनका कभी ध्यान भी नहीं आया. मैं तो उन्हें भूल ही चुका था. जब कि वहां से आने के बाद मैंने उन्हें कत्ल करने का अहद किया था. उन दिनों छुरे के नाम से ही मुझ में सनसनी दौड़ जाया करती.

★ ★

यहां आने के बाद भाई ने जब पहली बार मुझे पैसे दिये, वह दिन मेरे लिए किसी त्योहार से कम नहीं था. मैं एक बड़ा चाकू खरीद कर ले आया. वह पीतल के दस्ते वाला एक लंबा चाकू था, जो कड़कड़ की आवाज के साथ खुलता था. मैं बाहर बैठा उसकी धार तेज कर रहा था. मुझे पता ही नहीं चला भाई कब मेरे पीछे आ कर खड़े हो गये— ये तू क्या कर रहा है? चाकू ले कर उसकी तेज धार पर उंगली फेरने लगे.

—मैं छुरा तेज कर रहा हूं.

—छुरा! उन्होंने हैरानी से मुझे देखा था, मानो उन्होंने इससे पहले कभी छुरे का नाम न सुना हो.

—हां हां, इससे मैं उनका खून करूंगा,

—किसका?

—मैं चाचा का खून करूंगा. छुरा उनसे छीन कर एक ही झटके में सामने दरवाजे पर दे मारा जो बीच में जड़ गया— एक ही बार में सब खत्म. मैं उछल पड़ा था. —तेरे बाजुओं में अगर इतनी ताकत थी तो तू वहां से भाग कर यहां क्यों आया? मुझे धकेल कर अंदर ले गये थे.—आयंदा ऐसी हरकत मत करना. मैं हैरानी में उन्हें देखता रह गया था. मुझे तो पूरी उम्मीद थी कि वह कहेंगे कि कर दे उसके टुकड़े.

वह सारी स्कीमें एक जासूसी उपन्यास की तरह अपने आप खुलती जा रही थीं, जो उन दिनों मैंने भाई से चोरी से बनायी थीं. एक दिन तकिये से चाचा का पुतला बना कर चाकू से वार कर रहा था. जब चाकू पुतले के सीने में उतरा— बेटे अब तेरा काम खत्म. वह पीछे खड़े थे— अरे तू फिर चाकू ले आया. बंद कर इस तमाशे को, तेरी यही हालत रही तो यहां किस किसको मारेगा?

एक दिन जब उन्हें पता चला कि मैं उनसे चोरी से काम की तलाश में घूमता हूं और मुझे कहीं काम नहीं मिल रहा तो वह हैरान रह गये थे— तुझे अभी काम की पड़ गयी है. तू पहले अपने को कुछ बना तो ले. फिर एक दिन एक खत दे कर बोले—यह चिट्ठी लो. तुझे वहां काम मिल जायेगा. जब मैं खत ले कर चित्रकार कृष्णकुमार के पास पहुंचा तो वह पत्र पढ़ कर बार बार मुझे देख कर हंस रहे थे.

—तेरा काम अभी से शुरू हो गया. उनकी आंखें शरारत से भरी थीं जो उसी पल पहले की तरह गंभीर हो गयी थीं और किसी गहरी सोच में डूब गयी थीं, यही उनकी आदत थी. मैं उन्हें देख कर सोच रहा था ना



● नरेंद्र एन. शाह

जाने खत में भाई ने क्या लिखा है?— तू काम क्यों चाहता है? मुझे चुप देख कर खुद ही बोले थे—इसीलिए कि तू भाई पर बोझ न बने. खुद अपने पांव पर खड़ा हो कर भाई की मदद करे. तेरा नाम हो. लोग तुझे तेरे काम से पहचानें, तू खुद कमाये.

—जी, हां, मैंने जोश में कहा था जब कि मैंने कभी भी उन बातों के बारे में सोचा नहीं था. मैं तो रौ में कह गया था. उन्हें चुप और सोचता देख कर स्टूडियो में टंगी पेंटिंग देखने लगा था जो बहुत अजीब और मेरी समझ से बाहर थीं. स्टैंड पर बिना सिर के एक नग्न स्त्री की अधूरी पेंटिंग रखी थी.

—लेकिन इससे क्या होगा? ऐश से रह कर, सारा दिन खा-पी कर, दूसरे दिन सुबह निकल देना भी कोई जिंदगी है? नहीं है. अपनी जिंदगी के लिए अपनी पहचान होनी चाहिए जो बिल्कुल अपनी हो, दूसरों की नकल न हो. कुछ लोग ऐसे भी होते हैं जिनकी बातें सुनने के लिए, जिनका काम देखने के लिए लोग तरसते हैं. यही उनकी पहचान होती है. एक चित्र की ओर इशारा कर के बात जारी रखी—तुम्हें यह तसवीर समझ आ रही है? नहीं. इसके पीछे एक दूसरी भाषा है जो सभी को आ सकती है. तुम सारा दिन दीवारों पर चाचा की तसवीरें बनाते रहते हो. उन्हें छड़ियों से पीटते हो. उनके पुतले बना कर उन पर चाकू मारते हो.

मैंने अचंभे में उन्हें देखा था. यह तो मेरे बारे में सब कुछ जानते हैं? मैंने यह सोचा था उस दिन. क्या तुम उनकी ऐसी तसवीर बना सकते हो जिसे देख कर महसूस हो कि वह लोभी और जालिम थे? वह मुझे अपनी बातों और अपने प्रभाव में जकड़ चुके थे— इसके लिए तुझे बहुत काम करना होगा. सीखना होगा. छिपी हुई बातों को मालूम करना होगा. जैसे तुझे चाचा क्यों मारते थे? कौन सी बात थी जो उनसे यह सब कराती थी?

मैं बरसों उनके साथ जुड़ कर कब अपने पुराने कस्बे के संसार से टूट कर यहां की भरपूर दुनिया में खो गया मुझे इसका बिलकुल पता ही नहीं चला और न कभी इसका एहसास हुआ.

भाई तसवीर के सामने खड़े सिगरेट पी रहे थे. धुएं के चक्कर फैल कर खिड़की से बाहर भाग रहे थे. भाभी और उनके दोनों लड़के आ कर खामोश खड़े थे. लड़कों ने उन्हें कभी भी गुस्से में नहीं देखा था. वह हैरानी से उन्हें देख रहे थे— आप छोटे भैया की बात क्यों नहीं मान लेते? वहां जाने में हर्ज ही क्या है? भाभी ने मनहूसियत को तोड़ा.

—नहीं, हम वहां नहीं जायेंगे. जाने और ना जाने से क्या फर्क पड़ता है? महज एक रस्म ही तो पूरी होगी. अगर भाई साहब को इसमें ठेस लगती है तो हम वहां क्यों जायें? मुझे लगा यह बात मैंने न कही हो बल्कि कोई दूसरा आदमी कह कर भाग गया हो.

—क्या कहा? उन्होंने चौंक कर मुझे देखा. जेब से फिर रूमाल निकाल कर तसवीर को घूरने लगे, मानो वहां कुछ घट रहा हो जो आंख झपकते ही ओझल हो जायेगा— तुम कभी इस तसवीर को साफ नहीं करती?

भाई खामोश और सब कुछ बर्दाश्त करने वाले व्यक्ति थे. वह अपना निजी दुख और अंदर की बात कभी किसी पर जाहिर नहीं करते थे. एक नामालूम तसल्ली में हमेशा डूबे रहते, एक दीवानगी की हद तक मस्त रहते. दिन को एक कालेज में पढ़ाते थे. रात को टाऊन हाल के पीछे पार्क में एक फ्री स्कूल चलाते थे जो पिछले कई वर्षों से बराबर चल रहा था. वहां उनके दूसरे साथी भी आ कर पढ़ाते थे. रात को जब शहर के होटलों और रेस्तराओं में छुट्टी होती तो वह स्कूल शुरू होता था. वह स्कूल और होटल मजदूर ही उनकी जिंदगी थी.

* *

चाचा के घर से भाग कर जब वह यहां आये थे तो तीन-चार दिन से भूखे घूम रहे थे. एक होटल के बाहर वह बैठे थे तभी दिवाकर उनके पास आ कर खड़ा हो गया था—तू घर से भाग कर आया है? बेटा, यहां सभी भाग कर ही आते हैं. वह इतना कह कर भाग कर होटल के अंदर चला गया और वहां से रोटी चोरी कर के ले आया था—ले खा. जब तक यह होटल है, कोई भूखा नहीं मर सकता. हम न हों तो इन सालों के होटल बंद हो जायें. तू भी यहीं आ जा. करूं सिफारिश? वह हंसता हुआ उन्हें शहर की नयी-नयी बातें बता रहा था— होटलों में पेट भर फ्री रोटी मिलती है और पैसे भी. बस इसीलिए सब यहां आ कर दफन हो जाते हैं. फिर यहां से भाग नहीं सकते. तू भी आ बेटे अपनी कब्र में. जब भी भाई मूड में होते, यह किस्सा जरूर सुनाते. इसीलिए आगे निकल आने पर भी वह अपना रिश्ता होटल के दोस्तों से तोड़ नहीं पाये थे.

शादी के बाद शुरू में भाभी बहुत चिढ़ती थी— तू भी उन्हें कुछ नहीं समझाता, उलटा तू भी उनके साथ लगा रहता है, क्या रखा है वहां? उसने तुनक कर कहा था— कभी उन्हें ऐसी बात न कह देना, शायद इससे बढ़ कर उन्हें बुरी बात और कोई न लगे. लेकिन भाभी की समझ में यह बात नहीं आयी थी— यह भी क्या हुआ, रात के बारह बजे तो वहां पढ़ाई शुरू होती है. आधी रात तो इसी में बीत जाती है. उस रात वह उनका इंतजार करती रही— आपको कुछ घर की भी सुध रहती है? जब भी देखो आप वहीं रमे रहते हैं. वह उनके आते ही भड़क उठी थी. वह हंसते हुए सब सुनते रहे— मैं जानता हूं, तुम्हें परेशानी होती है. जिस तरह मैं तुम सबके बिना नहीं रह सकता, इसी तरह उन सबके बिना भी नहीं जी सकता. वह सब किस मजबूरी और परेशानी में घरों से भाग कर, अपने घरों की दुर्दशा संभालने यहां आते हैं—और यहां की ऊपरी तड़क-भड़क जल्दी उन्हें खा जाती है. उन्हें भी तो कोई दिवाकर मिलना चाहिए. तुम इस गटर की बदबू नहीं जानती? क्या पता, दिवाकर मुझे न मिलता तो मैं भी किसी गंदे गटर में सड़ रहा होता. तुम भी चाहो

तो मेरा हाथ बंटाया करो. उसके बाद भाभी ने उन्हें कभी कुछ नहीं कहा था.

जिन दिनों मुझ पर चाचा का जनून सवार था. एक दिन मुझे रात के स्कूल में ले गये—तू भी यहां आ कर रोज पढ़ा कर. मैं दो-तीन रात वहां जा कर फिर भाग आता. पढ़ने में मन ही नहीं था—अपने को कुछ तैयार कर लो. इस तरह घूम कर चंद जरूरतें हासिल कर लेना भी कोई बात है. फिर चंद जरूरतों में ही सारी उम्र गुजर जाये तो क्या लाभ? चंद लोग वह भी तो हैं जिन्हें यह सब सुख पैदा होते ही मिल जाते हैं. इसका मतलब तो यह होगा, हम अपनी जिंदगी वहां से पहले खत्म कर देंगे जहां से उन चंद लोगों की जिंदगी शुरू होती है! अब तू खुद फैसला कर, मैं तुझे कभी कुछ नहीं कहूंगा.

जब मैं भी उनके रास्ते पर चल निकला तो बरसों बाद मैं भी घी मिल के पास एक क्लास लेने जाता. जब कई दिन वहां नहीं गया तो वह मेरे पास आये थे—जानता है आज दिवाकर जी पैदल चल कर आये थे. पूछ रहे थे, तू बीमार तो नहीं. जानता है उन्हें इस बुढ़ापे में यहां आने में कितनी तकलीफ उठानी पड़ी. वह अपना गुस्सा इसी तरह जाहिर करते थे.

जलसे, जलूसों के दिनों में घर झंडों, बैनरों, मॉटो और प्ले-कार्डों से भर जाता. हम सब मिल कर पुराने अखबारों पर पोस्टर लिखते. बैठक उनके साथियों से भरी रहती जहां आगे की तैयारी में बहसें चलतीं. जब दिवाकर जी की मृत्यु पर मैं उनका एक बड़ा चित्र बना रहा था तो वह मेरे पास खड़े उसे देखा करते. कभी उनकी आंखें भर आतीं—यदि एक कोआपरेटिव सोसाइटी बन जाये तो इनका आखिरी सपना भी पूरा हो जाये. . .

—तुम इनके लिए मरते हो यह तो सभी बेठौर के लोग हैं. सारा दिन गंदी गालियां बकते आपस में लड़ते हैं. उनके एक मित्र ने उन्हें एक बार ताना दिया था.

—बुराइयां किसमें नहीं. जब हम पैदा ही इनमें होते हैं तो बच कैसे सकते हैं. इसका मतलब यह तो नहीं कि इन्हें ठुकरा दें. उन्होंने तड़प कर कहा था.

मैं अपने कमरे में खिड़की के पास आ कर खड़ा हो गया. सामने से आती हुई किसी न किसी कार की तेज रोशनी खिड़कियों से होती हुई कमरे में घुस आती. हर चीज उजली और धुली हुई मालूम देती. दीवार पर टंगे चित्रों, किताबों की अलमारी और कोने में रखी अधूरी पेंटिंग के ऊपर से भागती हुई रोशनी जब ओझल हो जाती तो लगता, कमरा उदासी से भर गया है. खिड़की से पूरा बाजार दिखाई दे रहा था, जिसके दोनों तरफ दूकानों की लंबी कतारें थीं. जहां हर रोज बत्तियां जला करती थीं और ऊपर जलने-बुझने वाले रंगदार नियोन साइन आंख मिचौली किया करते, आज वहां मोमबत्तियां, लैंप और गैस जल रहे थे, जिनका धुंधला प्रकाश टिमटिमा रहा था. बाजार के बीच में मंदिर के बाहर लटकते हुए घंटों की आवाज एक लय में आ रही थी. कभी रोशनी में घंटे बजाते हुए भगत भी दिखाई दे जाते थे.

उन दिनों कस्बे में भी बिजली नहीं थी. वहां बीच में एक ही बाजार था जहां रात को लैंप टिमटिमाते थे. सिर्फ दीवाली पर वहां यहां की तरह रौनक होती थी. वहां भी बाजार में संगमरमर का सफेद मंदिर था जिसके ऊपर का सुनहरी कलश दिन भर धूप में लिशकारे में चमकता रहता. मंदिर के बाहर और पास के पेड़ पर कई घंटे लटकते रहते जो कभी-कभी तेज हवा के कारण अपने आप बज उठते थे तो उस वक्त भगत लोग झूम कर प्रार्थना करते और सिर झुका-झुका कर प्रणाम करते. मंदिर के पीछे तालाब में पांव डाल कर घंटों का स्वर सुनना, ऊपर आकाश में तारों को गिनना और गिनती गड़बड़ होते ही पांव से पानी को हिला-हिला कर लहरें बना कर फिर हंसते हुए उसमें सितारों का अक्स तलाशना. यह मामूली सुख भी चाचा की जासूस आंखों से बच कर ही मिलता था. पकड़े जाने पर धुनाई हो जाती. मंगलवार को चाचा पूरे परिवार के साथ मंदिर जाते थे. मैं राजू को गोद में उठाये जूतों की चौकीदारी कर रहा था—मैं भी घंटा बजाऊंगा—राजू को तेरा बाप उठायेगा, हरामी. उन्होंने खा जाने वाली नजरों से घूरा.

—नहीं. कभी बच्चों को नहीं डांटते, वह तो स्वयं भगवान होते हैं. पुजारी तुरंत जंगले से बाहर आ गये थे—बजाओ, बजाओ. उन्होंने मुझे गोद में उठा लिया. घंटा बजाने के बाद बहुत देर तक मैं उन्हें देखता रहा. वह सब को प्रसाद बांट रहे थे. मदी, मूषी और दीपा सभी नाच रहे थे—तू भी ले. पुजारी ने मेरे मुंह में बूंदी भर दी. मंदिर से आते ही उन्होंने मेरी पीठ पर एक लात मारी—कमीने, तू हर जगह मेरी नाक कटवाता है. घर चल.

बाजार में फोटो वाली दूकान के सामने मैं हमेशा रुक जाता. वहां पहुंचते ही मेरे कदम अपने आप जम जाते और एक टक सामने लगी एक हंसती हुई स्त्री की तसवीर देखने लगता. वह स्त्री हमेशा मुझे अपनी तरफ देखती मालूम होती. मैं जिधर भी जाता, जिस तरफ से उसे देखता, वह मुझे अपनी ओर बुलाती हुई लगती. उसकी कशिश में मैं सब कुछ भूल जाया करता. —तुझे कितनी बार कहा, तू अपनी इस मां को मत घूरा कर, पता है राजू नीचे गिर रहा है. चाची राजू को छीन कर ले गयी थी. चाचा ने एक थप्पड़ मेरे मुंह पर मारा था. मूषी ने पीछे से आ कर एक लंगड़ी मारी और मुझे नीचे गिरा देख कर आंख मार कर हंस रहा था—कहो बच्चू—बीच बाजार में तमाशा दिखा रहा है, तू? चाचा ने मुझे बालों से खींच कर खड़ा कर दिया था.

वह बड़े अजीब दिन थे. सुबह से रात तक मैं उनकी दूकान और घर के कामों में जुटा रहता, तब भी मेरे कामों में कोई न कोई गड़बड़ वह निकाल ही लेते. मुझे दबोच कर पीटते. उनकी गालियां मेरा पीछा करतीं. उनकी आवाज से ही मैं कांपने लगता. कभी जब बहुत मार पड़ती तो मेरा पेशाब निकल जाता—आज तू ने दूकान देर से खोली—कुत्ते भैंस का चारा नहीं काटा, क्यों? बन दुंवा—आज इसने कपड़े नहीं धोये. बर्तन भी जूठे पड़े हैं—तू ने आज गिलास तोड़ दिया.

जिस दिन मैं वहां से भाग कर आया था उस रात

वह बहुत देर से घर लौटे थे. नशे में धुत्त थे. उनके जूतों की खट्-खट् मेरी कोठरी की तरफ आ रही थी——कहां है वह उल्लू का पट्ठा? वह खट् खट् मुझे अपने सिर पर महसूस हो रही थी——तू शाम को पतंग लूटने गया था? तू तांगे से टकराया था? तेरी चप्पलें चोरी हो गयी थीं. तूने लोगों से चप्पलों के लिए पैसे मांगे थे. बोल हरामजादे, बोलता क्यों नहीं? हर बात के बाद वह एक छड़ी मुझ पर मारते.

मैं उस दिन शाम को पतंग लूटता हुआ एक तांगे के बम से लड़ गया था. मैं दूर जा कर गिरा. जब मुझे होश आया तो सबसे पहले मैंने देखा, मेरे पांव में चप्पलें नहीं हैं. मैं चौंक कर एकदम खड़ा हो चुका था——मेरी चप्पलें. लोग मेरी चीख सुन कर चकित रह गये, वह तो मेरे जख्म और चोटें देख रहे थे. मैं पूरे बाजार में रोता हुआ चप्पलें ढूंढ़ रहा था.

——पूरे बाजार में मेरे नाम की खाक उड़ा आया है. वह मेरे ऊपर उबले——सब कह रहे हैं, मैं तुझे नौकरों की तरह रखता हूं. मैं पीछे पड़े पुराने टब के ऊपर गिर पड़ा था. कोई तेज चीज मेरी पीठ में गड़ गयी और मैं चीख उठा——मुझे बचाओ. मैं मर गया. चाची और बच्चे बाहर आंगन में बुत्त बने खड़े थे. उनके गुस्से के आगे घर में हर चीज थम जाती थी. एक मामूली आहट भी नहीं होती थी, आस पड़ोस के सभी लोग तमाशा देख रहे थे. चाची उन्हें खींच कर ले गयी थीं. उस रात मैं कोठरी में पड़ा झींगुरों और टिड्डियों की सीटियां सुनता रहा. छत के झरोखों से कबूतरों की गुटर गूं सुनाई दे रही थी, वह सब आवाजें मेरे दुख में शरीक थीं.

मैं आंगन में फूलों की क्यारी के पास खड़ा हो कर पीपल के पेड़ को देखने लगा. हवा से पेड़ की शाखें फड़फड़ा रही थीं. पत्तों की खड़खड़ाहट गूंज रही थीं. ऊपर आकाश में तारे थे, जिनसे मेरा गहरा रिश्ता था. कई रातें जाग कर मैं उन्हें देखा करता. मैंने हर तरफ नजर दौड़ायी. हर चीज को एक बार छू कर देखा. आंगन के पीछे बरामदे में रस्सी पर लटकते हुए कपड़े मुरदों की तरह लग रहे थे. गली में सभी दरवाजे बंद थे. हर तरफ खामोशी थी. केवल नाचने वालियों के घरों से घुंघरुओं की आवाजें आ रही थीं. भागते हुए मुझे लग रहा था, कोई मेरे पीछे आ रहा है. . .

★ ★

तार आने के बाद भाई की बातों ने अतीत में एक छेद कर दिया था. वह भूला हुआ वक्त, जिसकी कोई परछाई भी नहीं थी, अचानक जिंदा हो कर सामने आ चुका था. उसकी पकड़ किसी गहरे सपने के टूट जाने के बाद भी जकड़े हुई थी. कब भाई मेरे पीछे आ कर खड़े हुए मुझे पता नहीं था. वह बराबर मुझे ताक रहे थे. उन्होंने धीरे से मेरे कंधे पर हाथ रखा और दूसरे हाथ की उंगलियां मेरे बालों से खेल रही थीं. मैंने उनकी तरफ देखा. हमारे बीच में खामोशी थी. वैसे भी अब हम दोनों अपने कामों में इतने उलझे रहते कि आपस में बातें बहुत कम होतीं—— तुमने अभी क्या कहा था? उन्होंने खामोशी को तोड़ा—— जानता हूं, तुम नहीं चाहते यहां कुछ गड़बड़ हो. उन्होंने खुद ही जवाब दिया—— कभी-कभी ऐसा हो जाता है. हम कितने ही शांत और चीजों के पारखी हों तब भी हम अपने जाती दुखों की गरमी में बह जाते हैं. इसपर किसी का कोई अख्तियार नहीं, लेकिन तुम इतनी देर से क्या सोच रहे हो? वह किसी बोझ से दबे थे.

——यदि चाचा ने हमारी छोटी-छोटी जरूरतें पूरी की होतीं तो हम वहीं रहते और वहीं दम तोड़ देते, उस छोटी जगह में.

——तुम में फर्क आ गया है.

——फर्क! मैंने उन्हें घूरा.

——तुम बहुत बदल चुके हो. तुम अपने निजी दुख से निकल कर दूर पहुंच चुके हो, जहां आदमी दूसरों के लिए जिंदा रह सकता है और दूसरे तुम्हारे लिए लड़ सकते हैं. इस जगह पर दूसरों के दुख और अपने बीच की दूरी खत्म हो जाती है. इसीलिए तुम्हें कभी भी अपनी मुसीबतें याद नहीं रहतीं. मैं हैरानी से उन्हें देखने लगा. यह सच था कि मैं हमेशा अपने कामों में डूबा सब कुछ भूलता रहता हूं. बाद में अपने ही अतीत पर हैरानी होती है.

——जब तुम यहां आये, उन दिनों मैं बहुत परेशान रहता, सोचता तुम यहां की शहरी जिंदगी में कैसे खप पाओगे? अपने निजी दुख को सबसे बड़ा समझने वाला एक न एक दिन जरूर टूट जायेगा. पहले मैंने सोचा, तुम्हारी नफरत और बदले की आग को एक दूसरी लड़ाई में मोड़ दूं. तभी मैंने एक दिन तुम्हें दीवार पर चाचा की शक्ल बनाते देखा. मुझे लगा तुम्हें दिवाकर की नहीं कृष्ण कुमार की जरूरत है और सचमुच उन्होंने तुम्हें सब भुला दिया और तुम्हें इसकी खबर भी नहीं हुई—— क्या कहा? मैंने अपने को ठगा महसूस किया. कहीं अंदर गहरे में उनकी बात छू गयी—— सच पूछो तो मैं इसी बात पर सोच रहा हूं कि जब हम वहां जायेंगे और उन पुरानी जगहों और चीजों को देखेंगे तो कितना अजीब लगेगा. जहां पर अपने परिवार के मिटने के निशान होंगे. अब उन्हें छूने और उनके सामने खड़े होने में हम क्या महसूस करेंगे. वही मकान, वही गली, वही बाजार और वही लोग होंगे जो उन दिनों थे, तब भी हर चीज गैर होगी, हम वहां भी अजनबियों की तरह घूमेंगे. कोई हमसे पूछेगा, अरे तुम उनके लड़के हो. फिर वह खामोशी आ जायेगी जो दो अनजान व्यक्तियों में आ जाती है. . . वह धीरे-धीरे एक रौ में बोल रहे थे. मेरे लिए यह यकीन करना मुश्किल लग रहा था कि थोड़ी देर पहले वह एक जहरीली आग में जल रहे थे.

——अब तुम्हें वहां की हर चीज छोटी लगेगी और वह जगहें भद्दी लगेंगी, जो तुम्हारी याददाश्त में सुंदर होंगी. उन दिनों जो रास्ते लंबे और थका देने वाले होंगे, अब बहुत छोटे होंगे. वहां का पूरा माहौल तुम स्वीकार नहीं करोगे. तुम्हारी और उसकी छाप अलग होगी. क्या मालूम जिस जायदाद के लिए उन्होंने सब

फरेब किया था आज उसीकी छतें ढह पड़ी हों. क्या मालूम उससे भी छिन गयी हो. उन्होंने हंसते हुए अपने दोनों हाथ मेरे कंधे पर रख दिये. उनकी आंखों में वही कशिश, वही जादू था, जो शुरू में मुझे डांटते और लाड़ करते उनकी आंखों में अपने आप आ जाता था—तुम्हें वहां की कभी याद तो आती होगी?

—उन बातों की याद तो कभी नहीं आयी जिन्हें मैं वहां से ले कर भागा था.

—क्या कहा? उनकी आंखों में शरारत थी.

—जिन बातों की कभी चुप के से याद आयी भी उन्हें मैं उन दिनों नहीं देख सका. जिन बातों से हम दुखी होते हैं, जो हमें भावुक बनाती हैं, वही बातें आगे आ कर हम भूल जाते हैं और वे बेजान बन जाती हैं. जो बातें कभी चोरी से, चुपके से याद आती हैं, वह दूसरी बातें होती हैं, जिनके प्रति उन दिनों हमें पता भी नहीं होता जब वह हमारे सामने हो रही होती हैं: वह चौंक कर मुझे देखने लगे. उनकी आंखों से शरारत गायब हो चुकी थी. वह अजीब निगाहों से मुझे टकटकी बांध कर देख रहे थे—उन दिनों, जब किसी दिन चाचा बहुत सुरूर में होते तो वह बैंजो ले कर आंगन में बैठ जाते और घंटों बैंजो बजाते. मदहोशी में इतना डूब जाते कि उन्हें किसी दूसरी चीज की खबर न रहती. मैं भी धीरे-धीरे उनके साथ आवाजों में खो जाता जो तारों की झनझनाहट से निकलती. कभी वह चौंक कर रूक जाते, सिर उठा कर इधर--उधर देखते—जैसे नींद से जागे हों. वहां मेरे सिवा कभी भी कोई दूसरा नहीं होता था. सभी ऊंध कर सो जाते. वह थके हुए कुछ सोचते और मेरे सिर पर दुलार से हाथ फेरते और बैंजो परे कर देते. कभी बैंजो छोड़ कर गाने लगते. बीच बीच में बुदबुदाते तू भी गा— पगले मैं कुछ भी नहीं. कोई भी नहीं बंदे. तू भी नहीं— यही एक लुत्फ है. मुझे अपनी ओर खींच लेते— तुझे मार पड़ती है. तू भी मुझे मार. दो-तीन हाथ अपने चेहरे पर मारते—तू मुझे क्यों नहीं मारता? कभी रोने लगते और अपने अतीत की गोपनीय और फोश बातें सुनाने लगते. कभी अपनी दर्दनाक आवाज में रात के सन्नाटे को छेद कर उदास बना देते. "दुनियां में हूं, दुनिया का तलबगार नहीं हूं"—नशा उतरते ही वह हमेशा अपनी पुरानी दुनिया में लौट आते और यकीन करना कठिन होता कि वह बातें उन्होंने कहीं थीं.

—बिलकुल नई तसवीर. तुम खुद ही बताओ जो बातें तुमने कही हैं, उन्हें सुन कर कोई कह सकता है, यह उन्हीं की असल शक्ल है जो एक खूंखार भेड़िये की तरह हमें मारा करते थे. तुम ही बताओ, जब सब कुछ बदल चुका है, वह बातें भी याद नहीं रहीं. तब भी यह खिड़कियां क्यों खुल जाती हैं. उन्होंने हंसते हुए खिड़की की सलाखों को पकड़ लिया और अपनी भरी हुई आंखों को उधर घुमा लिया. चाचा की नई शक्ल उन्हें दूर तक छू गयी थीं. बाहर से आती हुई रोशनी से उनकी आंखें चौंधिया गयीं. — आज चाचा भी हमारे सामने होते तो हमें न पहचान पाते. वह बराबर हंसते जा रहे थे. उनके उठे हुए हाथ की छाया दीवार पर भागती हुई नाच रही थी. जो अभी घटा वह मुझे बड़ा नाटकीय और वापस न लौटने वाला लगा. लेकिन फिर भी इस बात से तो इन्कार नहीं था कि यह है तो सच ही . एक बात और मेरी समझ में आ रही थी कि आदमी क्रोध में नाटकीय और कृत्रिम कैसे बन जाता है. जबकि सब कुछ पीछे रह जाता है और खुद वह अपनी छोटी दुनिया में रोज बदलता रहता है. □□□

सी-१०४३, महानगर,
सेक्टर- बी, लखनऊ. २२६००६

एक गजल

• महेश अनघ

नींद भर हम तो न पाये जिंदगी भर में.
इस फिकर में, दाग न लग जाये चादर में.

इस कदर कमरा सजाया है उसूलों से.
पांव फैलाना मना अब हो गया घर में.

हाथ अपना कलम अपनी, किस्मतें अपनीं.
लिख लिया जैसा बना हमने मुकद्दर में.

खुद सजायी हैं अदब की महफिलें हमने.
जोश की बातें जहां होती दबे स्वर में.

खोल कर कुछ कह न पाने का नतीजा है.
आग, पानी से निकलती है समंदर में.

एक पंजाबी लघुकथा

इज्जत

● रामसरूप अणखी

उस दिन चंदासिंह घर पर ही था. तिक्खड़ दुपहरी ढलने लगी थी. वह खुले बरामदे में चारपाई पर एक करवट लेटा हुआ था. धीरे-धीरे पंखे को झुला कर चिपचिपे मुंह पर से मक्खियां उड़ा रहा था. एकदम धड़धड़ाहट-सी उसने सुनी. भागती हुई किसी स्त्री की झलक सी मिली थी. हाथ में दुपट्टा. कुरता तो था, लेकिन सलवार?

वह चारपाई से उठ कर आंगन में आ गया.

—अरी बोल री! तू तो चरनो के पास चादर काढ़ने गयी थी! यह क्या गुल खिला आयी?. . . श्यामो का स्वर कुछ ऊंचा था.

चंदासिंह के कानों में घूं-घूं होने लगी—यह तो उसकी बेटी विद्दो थी! वह आंगन से हट कर भीतर की ओर मुड़ा. विद्दो दूसरी सलवार पहन कर जल्दी-जल्दी नाड़ा बांध रही थी. श्यामो अब धीमे स्वर में विद्दो को गालियां दे रही थी और अपनी जांघों पर दोहत्थड़ मार-मार कर बेहाल हुई खड़ी थी.

—क्या बात है? चंदासिंह कड़का.

—बात तो दिख ही रही है. मिट्टी डाल दे. चुप ही भली! श्यामो ने कहा.

चंदासिंह के दिमाग में जैसे कोई भूत घुस आया हो. दीवार के पास ही पड़ा कपड़े धोने वाला थापा उसने उठाया और विद्दो की बांह पर दे मारा. एक जांघ पर भी. श्यामो छुड़वाने लगी तो दो-तीन थप्पड़ उसने उसको भी जड़ दिये और धक्का दे कर उसे दूर फेंक दिया.

विद्दो मचली हुई-सी पड़ी रही. न चिल्लायी और न ही आंखों से आंसू बरसाये. श्यामो जमीन से उठ कर विद्दो के ऊपर लेट गयी. चंदासिंह ने हाथ रोक लिया. थापे को उसने चारपाई पर दे मारा. वह वहां से बाहर आंगन में चला आया. और फिर अपनी पहली वाली खाट पर.

चंदासिंह गांव का धाकड़ जाट था. गांव में उसका ब्याजू पैसा आम चलता था. दो लड़के थे उसके. बड़े का ब्याह हो चुका था. दोनों बेटे मिल-जुल कर खेती करते थे. बेटी बस एक ही थी. यही विद्दो. सगाई हुए चार साल हो चुके थे, पर अभी ब्याह नहीं हुआ था.

विद्दो पड़ोस में ही चार घर छोड़ कर चन्नण छींबे के घर अपनी सहेली चरनो के पास चादर की कढ़ाई के लिए जाया करती. आंख बचा कर, वह वहां से उठती और कुम्हारों की खोली में जा घुसती. चौबारे की मोरी में बैठा मुंदे का लड़का सुरजीत उसका इंतजार कर रहा होता.

गिंदर बग्गा कई दिनों से लड़की की ताड़ में था. आज पीपल की जड़ों में छुपा-सा वह जाने कब से बैठा था. जब लड़की खंडहर की तरफ बढ़ी और उधर सुरजीत ने ऊपर वाली छत से नीचे छलांग लगायी, गिंदर सहज भाव से उठ कर चल दिया. उसके हाथ में एक लंबी-सी लकड़ी थी. सलवार मिट्टी की एक ढेरी पर पड़ी थी. गिंदर आगे बढ़ा. लकड़ी में अड़ा कर उसने सलवार उठा ली और तेजी से खंडहर से बाहर आ गया. सुरजीत ने उसकी पीठ देखी. खंडहर में से तुरंत निकल कर वह भी तीतर हो गया. खंडहर के बाहर आ कर विद्दो ने गिंदर को धीमी-सी आवाज दी—चाचा!. . .गिंदर ने जरा-सी गरदन घुमा कर पीछे की ओर देखा और दीवार में लकड़ी का सिरा अटका कर बांह को सिर से ऊंचा कर लिया.

चंदासिंह माथा थामे बैठा था. बेटी ने उसे जीने योग्य नहीं छोड़ा था!

उनके कानों में आवाजें आयीं. लोगों की कचर-कचर. छोटे-छोटे लड़कों की हंसी. कोई एक ऊंचे स्वर में बोल रहा था—बाहर निकल कर देख रे, बड़े सरदार! माथे से लगा कर देख रे छोकरी का झंडा! बाहर आ रे चंद, नब्बे ले कर सौ पर अंगूठा लगायें तेरी बही पर!

चंदासिंह बाहर आया.

गिंदर ही बोला—पहचान लो, चंदासिंह, सलवार तुम्हारी है?

सारी भीड़ खिलखिला कर हंस पड़ी.

मां-बेटी भी पीछे आ खड़ी हुईं.

श्यामो गालियां दे रही थी. विद्दो गालियां दे रही थी. उनके सामने गिंदर को बात ही नहीं सूझ रही थी. चंदासिंह ने गिंदर के हाथ से लकड़ी छीन ली. सलवार नीचे गिर पड़ी.

—किसकी उठा लाया रे तू यह सलवार? क्या स्वांग धरा है यह तूने? यह हमारे दरवाजे पर ही क्या खेल खल रहा है तू!

गिंदर के मुंह में जैसे जबान ही नहीं थी. अब लोग गिंदर पर हंस रहे थे.

—बोल गिंदर अब मुंह से! भीड़ में से किसी ने कहा.

—यह सलवार आपकी लड़की की नहीं है? गिंदर ने चंदासिंह से पूछा.

—तेरी बहन की होगी जो कुंआरी है! या तेरी बेटी की! हमारी सलवार यह कैसे हुई रे कंजर! श्यामो एड़ियां उठा कर बोली.

—थोबड़ा तोड़ दूंगा साले का! कौन कहता है यह सलवार हमारी है? चंदासिंह के मुंह पर पूरा गुस्सा था. लोग चुप खड़े थे. वे मुसकरा रहे थे. जाने गिंदर पर, या चंदासिंह पर.

गिंदर पीठ घुमा कर भीड़ में से खिसक रहा था.

(अनुवाद : सुदीप) □□□

सारिका मासिक ° सारिका पाक्षिक ° सारिका मासिक

सारिका के विशाल पाठक परिवार के लिए खुशखबरी

सारिका ~~मासिक~~ पाक्षिक

पाठकों के असीम स्नेह को ध्यान में रखते हुए और उन्हें भारत और विश्व की तमाम साहित्यिक गतिविधियों का प्रामाणिक और बेहतर जायजा देने के खयाल से हमें सारिका को पाक्षिक बना देने पर मजबूर होना पड़ा है...

सारिका

बहुत जल्द ही पाक्षिक होने जा रही है !

पाक्षिक सारिका की प्रकाशन तिथि की प्रतिक्षा कीजिए !



घिसे हुए पुर्जे

• वीरेंद्र सक्सेना

दो अक्तूबर को दोपहर का खाना खा कर वह उठा ही था कि दरवाजे पर टैक्सी रुकने की आवाज हुई. कुछ घबड़ाहट, कुछ उत्सुकता में उसने ड्राइंग रूम का परदा हटा कर झांका और यह देख कर संतोष एवं तृप्ति का अनुभव किया कि टैक्सी से उतर कर जो व्यक्ति गेट के भीतर जा रहा था, वह और कोई नहीं उसका बचपन का दोस्त रामनाथ था.

और ड्राइंग रूम में भीतर घुसते ही उसने दोस्त को गले लगा लिया तथा बेटे को आवाज दे कर कहा—मम्मी से कहो, बंबई वाले रामनाथ अंकल आये हैं.

उसकी पत्नी जब तक साड़ी बदल कर और क्रीम-पाउडर की एक और पर्त जमा कर ड्राइंग रूम में आयी, तब तक रामनाथ कमरे में रखे टेलिविजन और फ्रिज पर नजर डाल चुका था. पत्नी को देख कर बोला—कहिए भाभीजी, मजे में तो हैं.

—हां सब ठीक है. और आपके यहां भी सब लोग ठीक-ठाक हैं? भाभीजी कैसी हैं? उन्हें साथ क्यों नहीं लाते आप?

—अरे भाभीजी, रामनाथ जोर से हंसा, बिजनेस के सिलसिले में आता हूं यहां, सो उन्हें कहां साथ लिये फिरूं?

—क्यों? उन्हें ला कर यहां छोड़ दिया कीजिए और फिर आप चाहे जहां बिजनेस के लिए जाइए.

—अच्छा, अगली बार आऊंगा तो जरूर साथ लाऊंगा. इस बार वायदा रहा.

—देखिए, वायदा पक्का कीजिए, झूठा नहीं.

—अजी पक्का क्या, बिल्कुल पक्का समझिए. रामनाथ ने हंसते हुए कहा जिस पर वह और उसकी पत्नी भी हंसने लगी.

कुछ देर बाद पत्नी तो औपचारिकता पूरी करके अंदर के कमरे में चली गयी और दोनों मित्र घुलमिल कर धीमे-धीमे बातें करने लगे.

—आज की रात कोई जश्न हो जाये...

—मैं तैयार हूं, पर यार तुम्हें मालूम है, आज गांधी बाबा का बर्थ डे है यानी ड्राइ डे और आज ही की तारीख से सरकार की ओर से मद्य-निषेध संबंधी नयी नीति की घोषणा हुई है, यह भी तुम्हें पता होगा!

—सब पता है यार, ज्यादा बोर न करो... तुम्हारा फ्रिज क्या बस कोका कोला रखने के लिए है?

—हां यार, उसने स्वीकार किया, घर पर रखने की पत्नी की ओर से इजाजत नहीं है. वह कहती है, कुकर्म जो भी करो, घर से बाहर करो!

—तब तो लगता है तुमने बीवी को काफी सर चढ़ा रखा है. भई, मैंने तो अपनी पत्नी को साफ कहा हुआ है कि तुम जो इतने ऐश-आराम से जीवन बीताती हो, मनचाहे जेवर बनवाती हो और इंपोर्टेड साड़ियां खरीदती हो, उसके लिए अंधाधुंध पैसा क्या सत्कर्म करके कमाया जा सकता है? जब मैं नाजायज तरीकों से पैसा कमा सकता हूं तो दूसरे भी नाजायज काम कर सकता हूं और उसके लिए रोक नहीं सकतीं. शराब तो शराब, मैं चाहूं तो अपने ड्राइंग रूम में किराये की लड़की भी ला सकता हूं और पत्नी से उसके लिए किसी इजाजत की जरूरत नहीं समझता.

सुन कर वह अत्यंत विस्मय से अपने मित्र की ओर देखने लगा. क्या यह वही रामनाथ है जो छात्र जीवन में हर समय आदर्शों और सिद्धांतों की बातें किया करता था तथा कहा करता था कि प्रत्येक पुरुष को एक समय में एक ही पत्नी रखना चाहिए और उसी के प्रति पूरी तरह से वफादार भी होना चाहिए. आज यह कहां से कहां पहुंच गया, इसके बारे में क्या कोई दूसरा कल्पना कर सकता है!

पर स्वयं वह भी तो कहां से कहां पहुंच गया है! अपने छात्र जीवन में वह भी तो पक्का आदर्शवादी था. हर समय समाज को बदलने या उसमें सुधार लाने की बातें किया करता था. सुधार की यह धुन उन दिनों इस बुरी तरह हावी थी उस पर कि उसने शिक्षा पूरी करके किसी और नौकरी की तरफ आंख उठा कर न देखा था और एक कालेज में लेक्चरर बन गया था. लेक्चरर होने के बाद उसने एक भले लड़के की तरह केवल एक लड़की से प्रेम किया था तथा उसी से शादी भी कर ली थी. उस समय उसने इस बात का बिल्कुल ही विचार न किया था कि वह लड़की एक निर्धन परिवार की है और उसकी जाति की भी नहीं है.

वह अचानक संवेदनशील हो कर उन पुराने दिनों के बारे में ही सोचने लगा कि रामनाथ ने उसे दुबारा एक झटका दिया— अरे यार, किस सोच में पड़ गये? शाम को तुम मेरे होटल के कमरे में आना, वहां सब इंतजाम हो जायेगा.

—पर होटल में भी शायद आज के दिन सप्लाई न करें.

रामनाथ उसके कान में फुसफुसाया, — तुम आना तो. 'डिप्लोमेट' का एक 'हाफ' तो मेरी अटैची में ही पड़ा है. आज के लिए तो वही काफी होगा. पर उसके बाद हम लोग डिनर कहां लेंगे, यह तय कर लो.

—अरे हां, तुम इतने दिनों बाद मिले हो, इस खुशी में डिनर मेरी ओर से रहेगा, और वह ऐसी जगह होगा कि तुम भी याद रखो.

—ऐसी क्या याद रखने की बात है? कैबरे

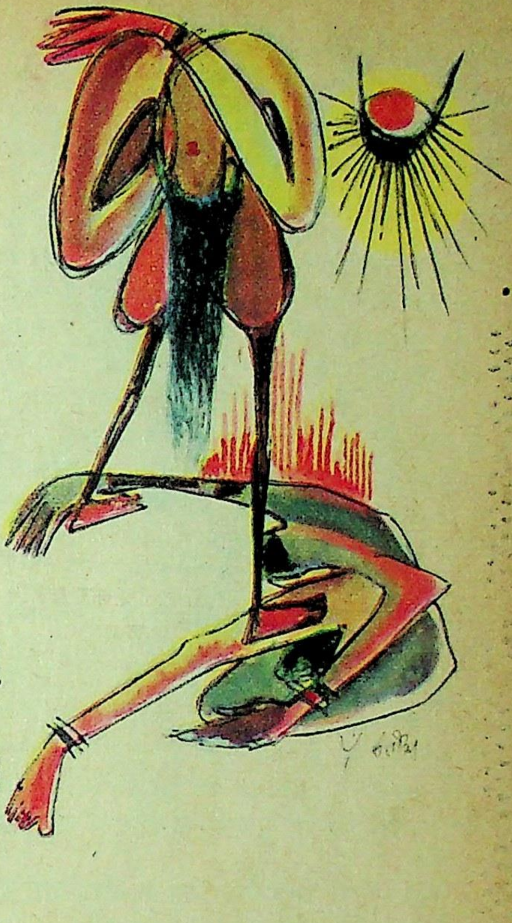
दिखलाओगे, यही न? वे अपन ने बहुत देखे हैं कलकत्ते में.

इस अपेक्षा से उसे कुछ निराशा-सी होने लगी, पर उसने साहस न छोड़ा. बोला— कैबेरे दिखाऊंगा, पर ऐसा-वैसा नहीं. एक जगह बिल्कुल, यानी कम्प्लीटली नेकेड कैबेरे होता है, वहां ले चलूंगा तुम्हें और तुम देख कर दंग रह जाओगे.

—अरे दिल्ली में नेकेड कैबेरे कहां? स्किन कलर की बिकनी जरूर रह जाती होगी आखिर में. तुमने अंधेरे में ठीक से नहीं देख पाया होगा.

—नहीं भाई, मैंने अपनी आंखों से बिल्कुल नजदीक से देखा है. उस रेस्टारेंट में रोशनी भी कम नहीं की जाती और अंतिम तीन शो में वे बिल्कुल नंगी हो जाती हैं. तुम भी अपनी आंखों देख लेना आज, फिर बात करना.

—अच्छा देख लेंगे. पर मैंने भी दोस्त इस छोटी-सी जिंदगी में ऐसे-ऐसे खेल और नाच देखे हैं पैसे के बल पर कि क्या बताऊंगा. और उन्हीं अनुभवों के बल पर अब मैं पूरे विश्वास से कह सकता हूं कि जब तक पूंजीवादी व्यवस्था इस देश में हैं, तब तक न तो सेक्स का ऐक्स-प्लायटेशन रुक सकता है और न ही किसी दूसरे प्रकार के शोषण को समाप्त किया जा सकता है. रामनाथ में इस बार मानो बाहर पंद्रह वर्ष पुराना रामनाथ लौट आया था.



● सतीश चव्हाण

* *

कुछ देर बाद चाय-नाश्ता करके रामनाथ तो चला गया क्योंकि उसे किसी संबंधी से मिलने भी जाना था, पर वह यानी महेश कुछ पुरानी यादों में खो गया.

महेश को वह दिन याद आया जब सात-आठ वर्ष पहले वह मात्र एक लेक्चरर था और रमानाथ आज ही की तरह उससे मिलने आ गया था. तब वह एक छोटे-से दो कमरों के मकान में रहा करता था और ड्राइंग रूम में फ्रिज और टी. वी. के स्थान पर बस लाइब्रेरी से लायी गयी किताबें ही किताबें दिखाई देती थीं. उसमें फर्नीचर भी नाममात्र को ही था क्योंकि शादी में उसे कुछ मिला नहीं था और सूखी नौकरी में घर का खर्च चलाना ही मुश्किल होता था, फिर फर्नीचर कहां से खरीदता. उसकी पत्नी भी अत्यंत सादा साड़ी में बेथैल कप-प्लेटों में रेडीमेड चाय बना कर सामने ले आयी थी जिसे देख कर रामनाथ ने कुछ मुंह सिकोड़ कर कहा था — अरे भाभीजी आपने बेकार कष्ट किया, मैंने तो चाय आजकल छोड़ रखी है. बस कॉफी पीता हूं.

—कॉफी तो हमारे यहां कोई पीता नहीं है, उसकी पत्नी ने संकोच से कहा था.

—कोई बात नहीं, रामनाथ एक कीमती सिगरेट मुंह में दबा कर लाइटर से जलाते हुए बोला था, मैं भी पहले बस दूध ही पीता था, पर आप जानती हैं कि बड़े लोगों का दिन-रात का साथ रहता है तो दिन में कॉफी और रात में व्हिस्की की ऐसी आदत पड़ गयी है कि छूटती ही नहीं.

साला. महेश चंद्र ने मन ही मन कहा था और उसका मन हुआ था कि अपने दोस्त को और भी भद्दी और गंदी गालियां दे कर कमरे से बाहर कर दे. पर न जाने क्या सोच कर चुप रह गया था.

और फिर रामनाथ के वापस जाते ही उसकी प्रेमिका-पत्नी भी उस पर ताने कसने लगी थी— क्या जरूरत है ऐसे लोगों से दोस्ती रखने की?

—अरे वह मेरा बचपन का दोस्त और सहपाठी रहा है और मैंने उसके वे दिन भी देखे हैं जब वह एम. कॉम. में थर्ड डिवीजन के बाद कानपुर की किसी मिल में सौ रुपए महीने की क्लर्की करता था.

—तो आपके दोस्त तो क्लर्क से ऊपर उठ कर 'एसोशिएटेड इंडस्ट्रीज' में सेल्स मैनेजर बन गये पर आप अभी वहीं हैं जहां से नौकरी शुरू की थी. क्या फायदा हुआ आपका एम. एस.-सी. में फर्स्ट डिवीजन लाने का? रहते जिंदगी भर लेक्चरार ही.

—तो तुम भी पैसे को इतना महत्व देती हो. आदमी की समाज में इज्जत का कोई महत्व नहीं है?

—इज्जत भी समाज में पैसे वाले की ही होती है, कह कर पत्नी सहसा चुप हो गयी थी, पर महेश को यह बात काफी देर तक कचोटती रही.

इस घटना के कुछ दिनों बाद ही जब संघ लोक सेवा आयोग से आयकर अधिकारियों के लिए एक विशेष प्रतियोगी परीक्षा की घोषणा हुई तो महेश ने भी फार्म भर दिया था तथा जी-जान से उसकी तैयारी में जुट गया था. भाग्य से वह उसमें चुन भी लिया गया और तब

उसे इस बात का बहुत अफसोस हुआ कि वह कालेज से निकलते ही आई. ए. एस. के कंपटीशन में क्यों नहीं बैठा था. शायद तब उसने अतिरिक्त धन और अधिकार के महत्व को नहीं समझा था. सचमुच वह कितने बड़े धोखे में था.

नये विभाग में आ कर थोड़े ही अर्से में वह वहां के सारे दांव-पेच सीख गया तथा धीरे-धीरे पूंजीपतियों के इशारों को इस सहज भाव से समझने लगा कि उन्हें किसी प्रकार की परेशानी नहीं होती थी और उसका अपना भी भला हो जाता था. घर में आवश्यकता, आराम और फिर विलासिता की अनेक चीजें आयीं, पत्नी के नये जेवर और बच्चों के नये कपड़े बने और बाद में उसकी कुछ शामें भी इस प्रकार गुजरने लगीं जिनकी इससे पहले उसने कभी कल्पना या आकांक्षा भी न की थी.

★ ★

शाम को लगभग छह बजे वह होटल पहुंच गया. रामनाथ ने उसे देखते ही पहले तो हाथ मिलाया फिर पास खींच कर चिपटा-सा लिया. सोफे पर बिठाते हुए बोला — अब बोलो क्या प्रोग्राम है ?

—प्रोग्राम क्या है, बस पहले तो यहीं बैठ कर थोड़ा मूड बनायेंगे, फिर चल कर उस होटल में डिनर लेंगे जहां पच्चीस रुपयों में तुम्हारे सामने पांच लड़कियां नंगी नाचेंगी.

—लेकिन यार, 'स्ट्रिपटीज' का असली मजा तो तब आता है जब ड्रिंक्स वहीं टेबल पर सर्व हों.

—यह तो दिल्ली में संभव नहीं है फिलहाल. पर ड्रिंक्स तो अपन लेकर ही चल रहे हैं. उसका सरूर तो रहेगा ही.

—सरूर क्या खाक रहेगा, जब तक वहां पहुंचेंगे सब खत्म हो चुका होगा. खैर देखा जायेगा—अभी से मूड क्यों खराब करें. कह कर रामनाथ उठा और अटैची से हाफ-बाटल निकाल कर मेज पर रख दी. उसे दो गिलासों में ढालते हुए पूछा, मैं तो 'नीट' लूंगा, तुम?

—पानी के साथ कह कर उसने स्वयं ही जग उठा कर थोड़ा पानी मिला लिया.

इसके बाद दोनों ने गिलास टकराये और धीमे-धीमे घूंट भरने लगे.

—तुमने कुछ नये अनुभव सुनाने को कहा था, कुछ देर के मौन के बाद उसने रामनाथ को छेड़ा.

—अरे हां सुनो, कह कर रामनाथ सुनाने लगा, कंपनी के काम से अकसर दूसरे शहरों में जाना होता ह और वहां मैं अच्छे होटलों में ठहरता हूं. इन होटलों में सारी सुविधाएं तो रहती ही हैं, रात को साथ सोने के लिए जरूरत हो तो अच्छी से अच्छी लड़की भी कमरे में भेज दी जाती है, यह तो तुम्हें मालूम ही होगा.

—हां, मालूम है, दिल्ली में भी ऐसे कई होटल हैं जहां फोन करके लड़कियां बुला दी जाती हैं. मैं भी दो-तीन बार किसी के माध्यम से ऐसे अड्डों पर गया हूं, पर उनमें ज्यादा आनंद मुझे नहीं आ पाता, क्योंकि जल्दी-जल्दी में सब कुछ निपटाना होता है. वह भी सरूर में आ कर खुलता जा रहा था तथा मित्र के सामने अपने अनुभवों को तनिक रोचक ढंग से पेश करना चाहता था.

—तुम भी रहे बस चुगद ही. अरे जब जल्दबाजी करोगे तो आनंद क्या खाक आयेगा? होटल में रात भर रुको. रात भर के लिए 'काल गर्ल' को बुक करो, तब आयेगा पूरा आनंद. उस आनंद में बढ़ोतरी के लिए साथ में एक 'डिप्लोमेट' की बोतल भी तो चाहिए.

—अच्छा तुम अपना वह अनुभव सुनाओ, उसने बीच में टोक कर बात काट दी.

—अच्छा, हां, रामनाथ रस लेते हुए बोला, यह अनुभव कलकत्ता के एक काफी बड़े और मशहूर होटल का है, जहां मैं ठहरा था. वहां सवेरे उठते ही चाय के लिए बैरा आया और बोला—आपको मसाज तो नहीं कराना है ? मैंने पूछा—कैसा मसाज? तो वह बोला—मसाज के लिए हमने खूबसूरत छोकरी रखा हुआ है. करा लीजिए सर, सारा थकान दूर हो जायेगा. मैं रात को काफी थका हुआ पहुंचा था वहां और जाते ही सो गया था. पर थकान अभी तक दूर नहीं हुई थी, अतः 'हां' कह दी.

इतना कहने के बाद रामनाथ ने गिलास में बची हुई व्हिस्की खत्म की, एक और सिगरेट सुलगायी और फिर आगे कहना शुरू किया—लड़की ठीक वक्त पर आ गयी. लड़की क्या तीसेक वर्ष की भरी-पूरी जवान औरत थी. आते ही उसने दरवाजा अंदर से बोल्ट करके अपना गाउन उतार कर एक ओर धर दिया और टू-पीस बिकनी में मेरे सामने आ गयी. कहा—सर आप भी कपड़े खोल दीजिए. मैंने उससे कहा—जो कुछ करना है अपने आप करो और मैं बिस्तर पर सीधे लेट गया. वह भी बिस्तर पर ही आ गयी. पहले तो काफी देर तक हाथ-पैरों की मालिश करती रही चिकने पाउडर के साथ. फिर कपड़े हटा कर कमर, कूल्हे और पीठ को दबाकर थकान दूर की और सबसे बाद में—वही तो खास बात है. . .

—क्या?

—यही कि उसने मेरे शरीर का अंग-अंग और पोर-पोर इतने अच्छे ढंग से दबाया—सहलाया कि मुझे बहुत आनंद आया.

—पर खास बात क्या थी? उसकी उत्सुकता अब चरम सीमा पर थी.

—तुम साफ-साफ ही क्यों जानना चाहते हो खुद ही समझ लो, क्या हुआ होगा?

—तुमनें खुद उससे ऐसा करने को कहा होगा और उसके लिए ऐक्स्ट्रा टिप किया होगा.

—नही भाई, रामनाथ बोला, जो कुछ भी उसने किया अपने आप ही किया था, मैंने उससे फर्माइश किसी बात की नहीं की.

—अच्छा इस 'मसाज' के पैसे कितने लगे?

—मात्र पन्द्रह रुपए. है न सस्ता?

—तुम साले लगता है बिलकुल 'परवर्ट' हो गये हो और थोड़े दिनों में औरत के साथ स्वाभाविक संबंध के लायक ही नहीं रह जाओगे.

—और तुम रह जाओगे? मैं जिस अंधे रास्ते के छोर पर जा पहुंचा हूं, तुम भी तो उसी रास्ते पर बढ़े चले जा रहे हो. हमारे समाज में नाजायज तरीकों से पैसा कमाने की एक होड़-सी लगी हुई है और सब लोग गिरते-पड़ते इसी पैसे के पीछे दौड़ रहे हैं. क्या नहीं?

दूसरा पैग भी समाप्त हो गया. रामनाथ ने शेष बची, व्हिस्की खाली गिलासों में उड़ेल दी और उत्तेजित हो कर कहने लगा—सरकार अगर वास्तव में समाजवाद लाना चाहती है तो उसके लिए देश का सारा काला धन बाहर निकालना होगा. पर उसके लिए सरकारी मशीनरी भी ऐसी होनी चाहिए जिसमें एक भी घिसा पुर्जा न हो.

—अच्छा अब यह भाषणबाजी बंद करो और जल्दी से खत्म करके तैयार हो जाओ. यों ही बातें करते रहे तो डिनर भी रह जायेगा और कैबरे भी नहीं देख पाओगे. उसने रामनाथ को सचेत किया.

—अबे छोड़ यार, क्या रखा है कैबरे में! इतनी सारी औरतों के नंगे जिस्मों को इतने कोणों से देख रखा है कि उनमें अब कोई रुचि ही नहीं रही. तुम इतने दिनों बाद मिले हो, क्यों न यहीं बैठ कर कुछ और बातें करें. खाना भी यहीं मंगवाये लेते हैं, नीचे से.

—जैसी तुम्हारी इच्छा, कहते हुए वह उठा और बाथरूम चला गया. जब लौट कर आया तो देखा रामनाथ बिस्तर पर औंधा पड़ा रो रहा है. देख कर वह सकपका गया और सोचने लगा इसके नशे को कम करने के लिए क्या किया जाये? □□□

डब्ल्यू जेड–४३३१ ४६१, शिवनगर, नयी दिल्ली–११००१८

दो ग़ज़लें

● महेश अनघ

एक

जिंदगी जैसे बने जीना हकीकत है.
और बाकी सब किताबों की नसीहत है.

रास्ते जितने बने जिद ने बनाये हैं.
लीक तो आखिर बुजुर्गों की वसीयत है.

ओढ़ना बेहद जरूरी है नकाबों को.
आदमी की चाह नंगी है, मुसीबत है.

एक अदना आदमी भी बहुत कर लेता.
ऐन मौके पर अड़ी अफसोस, इज्जत है.

तर्क ने कितना बदल डाला सचाई को.
पर नहीं एहसास मर पाया, गनीमत है.

दो

इस अंधेरे में किधर को जाइए.
एक सपना ओढ़कर सो जाइए.

प्रश्न चिह्नों को नहीं सह पाओगे.
इसलिए अंतर्मुखी हो जाइए.

ढूंढ़ती हैं तुम्हें जिम्मेदारियां.
कुछ समय तक भीड़ में खो जाइए.

वहां कोई देखने वाला नहीं.
गलतियों के दाग सब धो जाइए.

सख्त पहरा है तुम्हारे लक्ष्य पर.
कर सको या मर सको तो जाइए.

समय-सर्प

• अनय

बात इस सीमा तक परिणाम में टेढ़ी हो सकती है, माइकेल सेन कभी सोच भी नहीं सकते. अपने अंधेरे कमरे में कभी तन कर खड़े होते हैं, फिर ठंडे एहसास के साथ कुछ सोच कर बैठ जाते हैं. खिड़की के टूटे हुए कांच के टुकड़े कमरे में बिखरे पड़े हैं. तनी हुई मुट्ठियों से टूटी हुई खिड़की को देखते हैं. टूटे हुए शीशे के बाहर फैला हुआ गहरा अंधेरा दिखाई पड़ता है. अंदर से आवाज आती है, 'माइकेल सेन तुम अंधेरे के कैदी हो. तुम्हारे हाथ-पैर अंधेरे में हैं. यही नहीं तुम्हारा दिमाग भी अंधेरे में बंद है. यू आर नो मोर मैन. हा—हा—हा!' उनके गले में बैठ कर कौन हंस रहा है, खोज नहीं पाते. कहना चाहते हैं. समझ नहीं पाते हैं कि किससे कहें? क्या कहें?

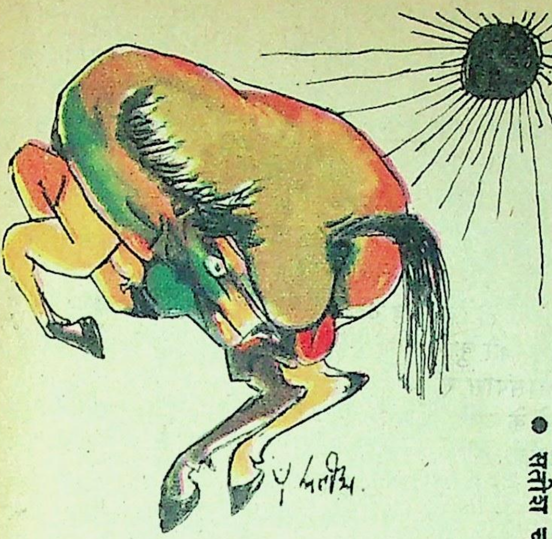
आसपास ही नहीं शहर में भी ऐसे लोग कम ही हैं, जिनसे बात करने का उत्साह माइकेल सेन के मन में रहता है. मजबूरी में उनको उन तमाम लोगों से बातें करनी पड़ती हैं, जिनके प्रति उनके मन में गहरी घृणा रहती है. अक्सर वह अपने फ्लैट में ही रहते हैं और बुढ़िया होती हुई बीवी से लड़ते रहते हैं. खुशी के क्षणों में अपनी प्यारी कुतिया के साथ खेलते रहते हैं. किसी सुखद, शांत क्षण में यदि कुतिया से प्यार कर अपनी सुंदर चमकदार पुरानी गाड़ी को शानदार नजरों से देख रहे होते, और उसी तरह पत्नी भी कर रही होती तो बड़े ही गमगीन हो कर दोनों अतीत के समुद्र में तैरने लगते हैं. यह वह अतीत होता है, जब अंग्रेज हिंदुस्तान में थे. इस क्रिश्चियन कालेज में सभी प्रोफेसर अंग्रेज या क्रिश्चियन थे. आधा मील के एरिया में फैले हुए कालेज में सेन साहब और उनकी मेम साहब के अनेक दोस्त थे. हर शाम रंगीन होती थी, सेन साहब अंग्रेजी के नौजवान अध्यापक थे. अंग्रेजी पढ़ाने वाले सभी अंग्रेज ही थे. सेन साहब भी कम अंग्रेज नहीं हैं. अब तो हाथ से दालभात खाने वाले अंग्रेजी पढ़ाते हैं.कालेज एरिया में उन दिनों कोई भी देशी भाषा नहीं बोलता था. अब सब कुछ बदल गया है. सेन साहब को दुख होता है कि वह भी यदि अपने कई मित्रों के साथ पहले ही किसी तरह लंदन चले गये होते, तो इतने जाहिल लोगों के बीच न रहना पड़ता. इसे जाहिल नहीं तो और क्या कहा जायेगा? कुछ दिन पहले उन्होंने नये हिंदी टीचर से कुछ कहा. यह कहना बिलकुल मजबूरी में कहना था. स्टाफ रूम में कोई और नहीं था. अंग्रेजी विभाग के लोगों को छोड़ कर वे बोलने में सभी से उत्साह नहीं दिखाते हैं. सेन साहब की नजर में अंग्रेजी के टीचर्स को छोड़ कर बाकी सभी गंवार हैं. हिंदी टीचर की बात ने यह विचार उनके मन में पक्का कर दिया— मुझे अंग्रेजी नहीं आती, साहब. उसके मुंह से 'साहब' शब्द में सेन साहब को घृणा का भाव दिखा. दुःखी हो कर अपनी कुतिया से अंग्रेजी बोलते हुए सेन साहब ने यह बात मेम साहब से कही. मेम साहब आग-बबूला हो गयीं— ये कुत्तों की औलाद हैं न. इनको हटरों से पीटनेवाले चले गये. इसीलिए ये किसी का सभ्यतापूर्वक सम्मान भी नहीं कर सकते हैं.

सेन साहब और मेम साहब को लगता है कि सारी दुनियां उनका अपमान करने पर तुली हुई है. उनके विषय में लोगों के विचार बड़े ही गंदे हैं. इसमें दोष किसी का नहीं है. यह देश ही गंदा है. इस देश में उनको क्या, उनकी कुतिया को भी सांस लेने में कठिनाई होती है. आसपास नौकरों के क्वार्टर्स हैं. देखते-देखते पुराने जमाने के अर्दली चले गये. हर बात में 'साहब-हुजूर' कह कर झुके रहते थे. अब जो नये छोकरे आये हैं, साहब नहीं कहते हैं, बाबू कहते हैं. झुकने की तो बात ही जाने दीजिए, टेढ़े रहते हैं, बुलाने पर अकड़ते हुए आते हैं. सेन साहब से ज्यादा इस बात को ले कर मेम साहब नाराज औ दुखी रहती हैं.

हर सुबह कालेज मैदान में मेम साहब अपनी कुतिया को लंबी जंजीर में बांध कर टहलती रहती हैं. साथ में साहब भी रहते हैं. पाइप पीते रहते हैं, और एक हाथ में छड़ी लिये रहते हैं. एक दिन उन दोनों की नजर नौकरों के क्वार्टरों की ओर गयी . नजर टिकी रही.अनदेखा करने का अवसर नहीं था. देखा कि एक मरियल खजुहा कुत्ता एक क्वार्टर के पास रस्सी से बांधा हुआ 'कों-कों' कर रहा है. कुत्ता देखने में बड़ा ही गंदा है. कुत्तों को ले कर साहब और मेम साहब का सौंदर्यबोध काफी ऊंचा है. उन्हें धक्का लगा, हे ईश्वर, साहब और मेम साहब ने मन में एक ही साथ सोचा, आखिर, क्या किया जा सकता है. कोई गंदा कुत्ता भी इतना गंदा हो सकता है! साहब ने मेम साहब के दर्द को समझ लिया—ठीक है मैं कुछ करूंगा.

मेम साहब चौंक गयीं. साहब क्या करेंगे? ये कमीने लोग हैं. इनको मुंह लगाना ठीक नहीं है. साहब को धीरज देती हुई बोलीं — तुम मन छोटा मत करो. भगवान इनको भले आदमियों को सताने का दंड देगा. जरूर देगा. ये लोग तुमको बाबू कहते हैं. मैं सब समझती हूं. मैं तो साहब कहती हूं. तुम्हारी तकलीफ मैं समझती हूं. साहब और मेम साहब ज्यादा देर मैदान में टहल नहीं सके. मन में दर्द था. दिमाग में आहत अभिमान का भाव दर्द को बढ़ा रहा था. सीढ़ियों में चढ़ते हुए दोनों ने देखा कि बंशी कुत्ते को रस्सी से पकड़े हुए, सिर पर गमछा बांधे हुए सड़क की ओर जा रहा है — ये बंशी बैरा सबसे बदमाश है.

जिस कोठी में सेन साहब रहते हैं, वह चौमंजिली कोठी है. इसमें चार परिवार रहते हैं. कोठी फूलों और हरियाली से घिरी हुई है. फूलों की सुगंध हवा के साथ तैरती रहती है. सुगंध की सीमा के उस पार सेन साहब के न चाहते हुए इनसानी बस्ती बस गयी है. बहुत समय पहले यह जगह खाली थी. इस बस्ती में इतने गंदे लोग रहने लगे हैं कि इस साहबी कोठी से उस ओर खुलने वाली खिड़कियां बंद रहने लगी हैं. बस्ती के लोगों में



● सतीश चौहान

आतंक से बचने के लए इन्सानी दया के नाम पर, प्रिंसि पल ने बस्ती की ओर की दीवाल के पास टीन की कोठरियां बनवा दी हैं. इन कोठरियों में नौकरों को रहने का आर्डर दे दिया गया है.

आसपास की फैली हुई गंदी बस्ती के नजदीक सुगंध और हरियाली से घिरी हुई, साहबी कोठी कुटिलता से हंसती हुई अपनी नजदीकी दुनियां से अलग लगती है.

पहले सेन साहब को इस बस्ती से बड़ी चिढ़ हुई थी. उन्हीं दिनों उन्होंने यह पढ़ा कि लंदन में काले और पीले लोग, काफी गंदी बस्तियां फैला रहे हैं, तो उन्हें राहत हुई— बेचारे अंग्रेज कितनी मुसीबत में हैं. नौकरों को कोठरियां देने का उन्होंने विरोध किया था, परंतु जैसे ही उन्हें इस बात का एहसास हुआ कि इन कोठरियों से उन्हें अपनी शान बढ़ाने का असरदार मौका हाथ लगेगा और साथ ही मानवता प्रेम जाहिर करने में सुविधा होगी, उनका विरोध शून्य हो गया. फायदे के लिहाज से इन कोठरियों में रहने वाले चपरासियों को वह अपना नौकर समझते थे, और अपने घर जाने वाले मेहमानों से इन लोगों की गरीबी का वर्णन कर दुःखी हो जाया करते थे. साथ ही इस देश की गरीबी की भयानकता का वर्णन करते हुए, गरीबी दूर करने के लिए अपना दर्शन बताते. वैसे तो इन कोठरियों में पांच-छः चपरासियों के रहने की बात थी पर धीरे-धीरे इन कोठरियों की आबादी बढ़ती गयी.

चाय पीते हुए सेन साहब और मेम साहब के बीच मौन लाठी ताने खड़ा रहा. भीतर हलचल है. लावा उबलता है और दब जाता है. एक गंदा आदमी बंशी रास्ते के गंदे कुत्ते को रस्सी में बांध कर टहल रहा है. सेन साहब ने चाय का प्याला अधूरा छोड़ दिया—सुअर की औलाद!

मेम साहब पीठ सहलाने लगीं—गुस्सा करने से काम नहीं चलेगा. यह लोग बहुत शैतान हैं. तुम प्रिंसिपल से बात करो. गंदे लोगों से सीधे बात करना हम लोगों की शान के खिलाफ है.

दुनिया में बहुत सारी बातें हो रही हैं जो सेन साहब के न चाहते हुए भी हो रही हैं. उनके न चाहते हुए भी गंदी बातें उनके घर में घुस आती हैं. यही प्रिंसिपल की बात. सेन साहब की नजर में वह समझौतापरस्त और ढीले आदमी हैं, जो कि इस कालेज के प्रिंसिपल को नहीं होना चाहिए. सेन साहब जिन बातों को रोकना चाहते हैं, वह चाहते हैं कि प्रिंसिपल उन्हें रोकें. इसी बात से प्रिंसिपल के प्रति उनके मन में घृणा हर रोज बढ़ती जाती है. स्टाफ के लोगों पर प्रिंसिपल का रोब रहना चाहिए. सीधे मुंह बात करने से लोग कमजोर आदमी समझ लेते हैं. सभ्यता एक मूल्य है, यह सेन साहब मानते हैं. परंतु जो सभ्य नहीं हैं, उनके सामने सभ्यता एक ढोंग या कायरता है. प्रिंसिपल की यह कमजोरी है कि आफिस के क्लर्क और चपरासी तक आफिस में बैठे जमुहाई लिया करते हैं. शायद साहब और बहुत कुछ सोचते कि इसी बीच कालेज का चपरासी अहमद आ गया. अहमद पुरानी पीढ़ी के उन चपरासियों में से है, जो सेन साहब को साहब समझता है, और किसी के बुलाने पर उससे कहता है कि साहब ने 'सलाम भेजा है.' अहमद सेन साहब और मेम साहब को रोज सुबह सलाम करने आता है. इसी बहाने छोटे-छोटे घरेलू काम भी कर दिया करता है.

अहमद के सलाम करने पर सेन साहब के अंदर मैकाले का प्रेत-घूंसा तान कर खड़ा हो गया—अहमद मैं इन चपरासियों की कोठरियों में आग लगा दूंगा. ये लोग समझते क्या हैं?

अहमद चुपचाप भौचक्का-सा जमीन में आंखें गड़ाये खड़ा हो गया. उसे किसी बात का पता नहीं था. वह जानता था कि जो आदमी आग लगाने की सोच रहा है, वह यह भी बतायेगा कि वह आग क्यों लगाना चाह रहा है.

—तुम्हे पता है कि यह बंशी बैरा कहीं से एक कुत्ता ले आया है. बिलकुल गंदा, रोगी, मरियल. वह उसे रस्सी में बांध कर घूमता है.

—अच्छा साहब! यह तो बहुत गलत बात है. बहुत बेजा बात है. अहमद ने खीस निपोर दी.

—हां, वही तो मैं कह रहा हूं. मैं इसे बर्दास्त नहीं कर सकता हूं. सेन साहब गुर्राये.

अहमद कुछ सोचता हुआ बोला— नहीं हुजूर, आपको कुछ नहीं करना है. मैं जाता हूं. यह वक्त ठीक नहीं है. मैं उसे कुत्ते को भगा देने को कहता हूं.

अहमद चला गया. सेन साहब को राहत हुई. उन्हें इस बात का इत्मीनान था, कि बंशी में हिम्मत नहीं है, जो अहमद के द्वारा दिखाये गये भय के सम्मुख टिक जाये. वह कालेज जाने की तैयारी में व्यस्त हो गये.

कालेज की इमारत में घुसते ही उनकी नजर बंशी पर पड़ गयी. उन्हें लगा कि बंशी जान-बूझ कर उनके आने की प्रतीक्षा में खड़ा है. उसी क्षण उन्हें याद आया कि अहमद ने उन्हें आ कर यह तो बताया ही नहीं कि बंशी ने कुत्ते को भगाया या नहीं. अपनी हमेशा की आदत के मुताबिक वह तेज चाल से बंशी के सामने से गुजर गये. उन्हें पीछे से आभास हुआ कि बंशी मुस्करा रहा है. वह

गुस्से में सीधे प्रिंसिपल के कमरे में पहुंच गये. प्रिंसिपल ने भद्रतापूर्वक उठकर उनसे हाथ मिलाये. बैठने को कहा. उन्हें इस भद्रता में बनावट ही नहीं, छल भी नजर आया. लंबे समय तक वह इसे भद्रता ही समझते थे. परंतु जिस दिन उन्होंने प्रिंसिपल को टीचर्स काउंसिल के छोकरे प्रोफेसर को हाथ मिला कर कुर्सी देते हुए देखा, उसी दिन से उन्हें प्रिंसिपल का यह व्यवहार नकली लगने लगा.

—कैसे हैं? मिसेज सेन कैसी हैं? स्वीटी कुतिया कैसी है? प्रिंसिपल ने सिगरेट का पाकेट सेन साहब के सामने देते हुए, मुसकराते हुए कहा .

—मिस्टर राबर्ट मुखर्जी, मैं बहुत परेशान हूं. तुम हमेशा मुसकराते रहते हो. मेरी परेशानी को समझने की कोशिश क्यों नहीं करते?

—परेशानी की क्या बात है?

—मैं चाहता हूं कि आप समझने की चेष्टा क्यों नहीं करते हैं? मेरा मतलब है कि आपको समझना चाहिए.

दोनों के बीच धुआं था. मौन में उड़ता हुआ धुआं. धीरे-धीरे धुआं छंट रहा था . मौन पिघल रहा था. सेन साहब ने उदास हो कर भरे गले से अतीत की यादों को बीच में रख कर घटना का जिक्र कर दिया. सेन साहब कहते-कहते कई बार उत्तेजित हुए. राबर्ट मुखर्जी के भी गले के नीचे यह बात नहीं उतरी. उनकी पहली इच्छा हुई कि किसी के साथ वही सलूक करें जो सेन साहब सोचते हैं. कुछ सोच कर अहमद को बुलाया— बंशी को बोला?

—हां साहब बोला.

—वह क्या बोला?

अहमद चुपचाप खड़ा रहा. उसने कोई उत्तर नहीं दिया. उसके खड़े होने की मुद्रा से लग रहा था कि वह खुद ही किसी बात के लिए अपने को दोषी समझ रहा है.

—तुम चुप क्यों हो? तुम्हारे चुप होने की बात तो नहीं है, सेन साहब कहते-कहते कुर्सी से उठ पड़े और फिर बैठ गये..

सहमी और दबी हुई गर्दन को धीरे से ऊंचा करते हुए अहमद रिरियाते हुए बोला—हुजूर, यह बात नहीं है कि मैं चुप हूं. बात यह है कि इस टैम चुप रहना ही ठीक लग रहा है.

प्रिंसिपल ने बात की गहराई को पकड़ते हुए कहा—ओह यह बात है. मैं समझ रहा हूं.

अहमद कमरे के बाहर जाने लगा. सेन साहब आग की तरफ लाल हो उठे—आप जादूगर हो सकते हैं मिस्टर राबर्ट मुखर्जी, मैं इंसान हूं. मैं बिना बात को सुने हुए नहीं समझ सकता हूं. मुझे मालूम होना चाहिए कि बंशी ने क्या कहा है?

अहमद पशोपेश में पड़ गया. उसके सामने नंगी तलवार चमक रही थी. वह जानता है कि इस लटकने वाली तलवार से उसका कोई वास्ता नहीं है. —हुजूर, गलती माफ. बंशी कहता है कि कोई अपने घर में क्या करता है, इसकी जिम्मेदारी किसी और की नहीं होती है. वह कहता है कि सेन साहब अपने घर में कुत्ते की जगह बाघ भी पालें तो मैं कुछ नहीं कह सकता हूं. फिर सेन साहब को मेरे कुत्ते पालने से नाराज होने का कोई माने नहीं होता है. अहमद को खुशी हुई, उसे बात की कटुता कम करने में, तलवार को म्यान में बंद करने में अपनी समझ से सफलता मिली है. बंशी ने बाघ पालने की बात नहीं कही थी. वास्तव में बंशी ने सुअर पालने की बात कही थी.

गुस्से में सेन साहब कुर्सी से उछल पड़े— ठीक है. मैं देख लूंगा. मिस्टर मुखर्जी आप कुछ नहीं कर सकते हैं. आप कुछ भी नहीं करेंगे.

राबर्ट मुखर्जी के चेहरे पर चिंता की रेखाएं उभर आयीं —नहीं, ऐसी बात नहीं है. मैं सब ठीक कर दूंगा. बंशी को बुलाता हूं.

सेन साहब चले गये. जिधर हवा हो, उधर पीठ करना उनकी आदत नहीं है, ऐसा वह मानते हैं. इसीलिए जो बात कुछ भी नहीं होती है, उसे बहुत कुछ बना लेते हैं. ऐसा राबर्ट मुखर्जी का उनके विषय में खयाल है. राबर्ट मुखर्जी मुसकराये. उनके सामने अहमद खड़ा है. वह भी मुसकराया. मुखर्जी के मुसकराने के अपने कारण हैं—अहमद, सेन साहब बहुत दुखी हैं.

—हां, हुजूर, अहमद ने अपनी मुसकराहट को गम में बदल दिया.

—तो उन्हें दुखी होने दो. अतीत में जीने से उन्हें मलवा ही मिलेगा. राबर्ट मुखर्जी अपनी कुर्सी पर तन कर बैठ गये. उनके मन में यह बात कहीं बहुत ही धारदार ढंग से प्रहार कर रही थी, कि जिस कुर्सी पर वह बैठे हुए हैं, उस पर सेन साहब की दृष्टि है. उन्होंने कुर्सी को मजबूती से पकड़ लिया और हंसने लगे.

दूसरे दिन सेन साहब और मेम साहब के टहलने के लिए निकलने के पहले ही अहमद बंशी की कोठरी के पास जा कर खड़ा हो गया. वह प्रतीक्षा करने लगा कि जैसे ही साहब निकलेंगे वह बंशी को डांट रहा होगा. उसने सारी बातें जो बंशी से उसने कहनी थीं, कई बार दोहरायी थीं. ऐसा करने का निर्णय उसने कल ही ले लिया था. साहब के निकलने की आहट पा कर उसने बंशी को आवाज दी. बंशी ने जैसे ही टीन का दरवाजा खोला कि खजुहा कुत्ता भूंकने लगा. सेन साहब और मेम साहब सीढ़ी पर ही खड़े हो गये. अहमद ऊंची आवाज में कहने लगा— क्यों रे बंशी, तेरा मिजाज ताव खा गया है. तू हवा के घोड़े पर छलांग मार रहा है. गांव में भूखा मरता था तो शहर में आया. पेट भरने लगा, तो बदमाशी सूझने लगी.

बंशी सो कर उठा था. वह अलसाया हुआ था. —क्या बात है अहमद चाचा? सुबह से ही सत्य बोलने लगे. क्या आज कोई धार्मिक पर्व है.

—अरे तू क्या जाने धर्म की बात. अपने नौकर-धर्म को ही भूल गया है.

—आखिर बात क्या है, जो भी कहना है साफ क्यों नहीं कहते?

—तूने इस कुत्ते को भगाया नहीं. यह ठीक नहीं है.

—ओह यह बात है. बंशी तन गया, क्यों भगा दूं? गरीब का कुत्ता है. दिन भर ड्यूटी देता है.

—कुत्ता पालना हम गरीबों का काम नहीं है. कुत्ता साहब लोग पालते हैं.

—साहब लोगों के कुत्ते साहबों की तरह रहते हैं, और गरीबों के कुत्ते गरीबों की तरह रहते हैं. मैं अपना कुत्ता भगा नहीं सकता.

इसी बीच सेन साहब और मेम साहब सीढ़ियों से उतरते हुए कुतिया की जंजीर को दोनों एक साथ पकड़े हुए गुजरे. बंशी की कोठरी में रस्सी में बंधा हुआ कुत्ता गुर्राया. दुम कटी कुतिया सिकुड़ गयी. सेन साहब का चेहरा लाल हो गया. उन्होंने झुक कर सलाम करते हुए अहमद को देख कर नहीं देखा. झटपट मैदान की ओर चले गये. कुछ समय तक अहमद चुपचाप खड़ा रहा. फिर वह चला गया.

सेन साहब उदास-से टहलते रहे. कुतिया का मैदान में भागना-दौड़ना उन्हें अच्छा नहीं लगा. कुतिया का सुबह का यह खेल साहब और मेम साहब को भाव-विभोर कर देता था. सेन साहब किसी दूसरी दुनिया में खोये हुए थे.

जैसे ही वह अपने फ्लैट की सीढ़ियों में चढ़ रहे थे कि बंशी के गरजने की आवाज सुनायी पड़ी. वह चिल्लाता हुआ कुत्ते को मोटे बांस से पीट रहा था. कुत्ता 'कों-कों' कर रहा था— साला, सुबह से ही टलने की जिद करता है और ले साला! वह कुत्ते को बेतहाशा पीटे जा रहा था. क्षण भर के लिए सेन साहब ठिठके और फिर दौड़ते हुए बंशी की गर्दन झपट कर पकड़ ली— साला, कुत्ता टहलने की जिद कर रहा है. तुम साला कुत्ता पालेगा. मेरी बेइज्जती करेगा. जान मार दूंगा. सेन साहब ने कई सधे हुए हाथ बंशी को जड़ दिये. बंशी इसके लिए तैयार नहीं था. वह चीख उठा. कुत्ते का चीखना बंद हो गया. सेन साहब हांफ उठे. उन्हें याद आया कि उन्हें हार्ट-ब्लड प्रेशर है. मेम साहब उनके पीछे खड़ी हो गयीं. कुछ देर रुक कर संयत होते हुए बंशी के फूले हुए मुंह को देखते हुए सीढ़ियों से ऊपर उठने लगे.

बंशी चुपचाप जमीन पर बैठ गया. मरियल कुत्ता उससे सट कर उसके पैरों के करीब पसर गया.

राबर्ट मुखर्जी ने सेन साहब को धन्यवाद दिया— आपने सही काम किया है. सही काम कोई भी कर सकता है. मैं आपके साथ हूं. मेरी मजबूरी आप जानते हैं, समझते हैं. मैं आपके साथ हूं. जरा भी चिंता की बात नहीं है.

सेन साहब के अंदर वाला 'साहब' संशय में था. उनके अंदर वाले साहब को लगा कि उन्हें मजबूत सहानुभूति की जरूरत है. राबर्ट का समर्थन उन्हें अच्छा लगा— थैंक्स राबर्ट. मेनी मेनी थैंक्स. आप अपने हैं. आपसे यही उम्मीद है.

सेन साहब के जाते ही राबर्ट ने अहमद को बुलाया. अहमद उनका अपना निजी विश्वस्त आदमी है, जो सबके मन में सब का होने का वहम पैदा करता है— अहमद, सेन साहब ने बंशी को पीट दिया.

—हुजूर.

—बहुत बुरा हुआ.

—जी, हां हुजूर.

—सो ठीक है. सेन साहब की इसी बुद्धि को गर्व-निग बॅडी के फ्रेंड्स उनके नोबल सोल का काम समझते हैं, और उन्हें प्रिंसिपल की चेयर पर बैठाना चाहते हैं. अहमद कुछ भी समझ न रहा था. राबर्ट मुखर्जी ने मन ही मन निर्णय लिया— सुनो अहमद, लोगों को मालूम होना चाहिए कि इसमें मेरा जरा भी हाथ नहीं है. यह भी मालूम होना चाहिए कि मैंने इसे जरा भी पसंद नहीं किया है. और मैं इस तरह की हरकतों को पसंद नहीं करता.

★ ★

सेन साहब स्टाफ रूम में आ गये. उन्हें क्लास में जाने की जल्दी नहीं थी. उत्साह और विजेता के भाव से उन्होंने आसपास बैठे लोगों को देखा. उनसे किसी ने कुछ भी नहीं कहा. उन्हें लगा कि सभी उपस्थित नेता उनके ही विषय में बातें कर रहे थे. वह दुखी और चिंतित हो उठे. उन्होंने 'डोंट केयर' की मुद्रा को ओढ़ लिया और अंग्रेजी विभाग के उपस्थित लोगों से बातें करने लगे जिसमें उनके अधिकारों की बात आभा-सित हो रही थी. घंटा बजने का समय हो गया पर घंटा नहीं बजा. सेन साहब ने कई बार घड़ी देखी. स्टाफ रूप के चपरासी को आवाज दी. आवाज के साथ दौड़ कर आने वाला चपरासी नहीं आया. बैरंग आवाज गूंजती रही. प्रश्नों की लहरों में तैरता हुआ स्टाफ रूम शीघ्र ही उत्तर पा गया. पहला-पहला पोस्टर स्टाफ रूम में चिपका रहा था स्टाफ रूम का चपरासी. साथ में कई और थे—मिस्टर सेन सावधान! हमारे हाथ लोहे के हैं.

—मार का बदला मार है!

देखते ही देखते स्टाफ रूम की दो दीवारें टेढ़े-मेढ़े अक्षरों में और गर्जती हुई भाषा में रंग गयीं. सेन साहब फुफकार कर उठे— प्रिंसिपल यह सब करने की छूट दे रहे हैं?

प्रिंसिपल के चेहरे पर गंभीर चिंता की रेखाएं उभर आयीं—मि. माइकेल सेन घबड़ाने की कोई बात नहीं नहीं है. आपका सम्मान अगर नहीं रहेगा, आपको अगर झुकना पड़ेगा तो हमारा किसी का भी सम्मान नहीं रहेगा. मैं आपके साथ हूं. आप इन लोगों की हड़ताल की परवाह मत कीजिए.

सेन साहब तन गये — वी विल फेस इट. वह तने हुए स्टाफ रूम में डटे रहे.

राबर्ट मुखर्जी ने कालेज के प्रेसीडेंट को फोन किया —सॉरी टू डिस्टर्ब यू सर. पर कोई उपाय नहीं था. कालेज के इतिहास में ऐसा दिन कभी नहीं आया. कालेज की प्रतिष्ठा का प्रश्न है. टीचर्स और स्टूडेंट्स भी इस स्थिति का फायदा उठायेंगे. तमाम बातें पैदा होंगी. कालेज की हड़ताल सेन साहब की नासमझी का फल है. आपकी क्या राय है? एक दुविधा और अनिर्णय

स्थिति का जन्म दे कर राबर्ट मुखर्जी फोन को कान में लगाये रहे— यह तो बहुत मुश्किल हुआ. इस बात को जहां है, वहीं रोको, प्रेसीडेंट का उत्तर था.

—पर सेन साहब की प्रेसटीज का भी तो सवाल है.

—यह प्रश्न मेरा नहीं, तुम्हारा है. वही करो जो कालेज के हक में अच्छा है.

—सर, पर आप जानते हैं कि माइकेल सेन के समर्थक हो सकता है कि मेरा विरोध करें.

—वह मैं देख लूंगा. प्रेसीडेंट ने फोन रख दिया.

प्रिंसिपल स्टाफ रूम में गये. उपस्थित टीचर चौकन्ने हो गये—यह गंभीर स्थिति है. प्रिंसिपल ने चेयर पर बैठते हुए कहा.

—हम लोग इसका मुकाबिला करेंगे. सेन साहब की इज्जत हम लोगों की इज्जत है. हिलने वाले सिर हिलते रहे. कुछ लोग चुपचाप बैठे रहे.

इधर कालेज में आये छात्र हुल्लड़ कर रहे थे.

कालेज बंद रहा.

सेन साहब परेशान कमरे में टहल रहे हैं. रात को उनको नींद नहीं आयी. मेम साहब को खांसी का दौर पड़ गया है. स्वीटी कुतिया कमरे में इधर-उधर दौड़ रही है. मैं झुक नहीं सकता हूं चाहे जो भी हो जाये. मैं मर जाना बेहतर समझता हूं. मैं चार फुट के आदमी से माफी नहीं मांग सकता. ठीक है. घर में नौकर काम पर नहीं आ पायेंगे तो क्या हुआ? हम अपना काम खुद करेंगे.

मेम साहब के मना करने पर भी वह सुबह मैदान में टहलने निकले. कुतिया को साथ ले कर आना नहीं हो पाया. मेम साहब की इस जिद के सामने उन्हें झुकना पड़ा. बंशी का प्रेत कल्पना के कई रूपों में सेन साहब के चारों ओर दौड़ता है. उन्हें लगता है कि बंशी ने उनकी कुतिया उनसे छीन ली है. फिर लगता कि नहीं बंशी के पास वही गंदा मरियल खजुहा कुत्ता है. बंद आंखों से देखते हैं कि कुत्ता बाघ बन गया है. वह डर कर चीखते हैं— नहीं.

राबर्ट मुखर्जी से चीखते हुए माइकेल सेन ने कहा—नहीं.

राबर्ट ने ठंडे लहजे में कहा—मिस्टर माइकेल सेन, आप समझ क्यों नहीं रहे हैं. हड़ताल का रूप बदलता जा रहा है. तनख्वाह बढ़ाओ. रहने को अच्छा घर दो. आप जानते हैं कि गवर्निंग बॉडी इस बात को आगे बढ़ाने के पक्ष में नहीं है. सात दिनों से यह हड़ताल चल रही है. कल छात्र कहेंगे, फीस ज्यादा ली जा रही है. टीचर कहेंगे कि हमें भी क्वार्टर दो.

माइकेल सेन ने गंभीर होते हुए कहा— पर आप तो हमेशा कहते हैं कि टीचर और स्टूडेंट हमारे साथ हैं.

—हमारे साथ सभी हैं क्योंकि हमारे साथ कोई नहीं है.

माइकेल गरम हो गये—तो ठीक है. मैं अकेला लड़ूंगा.

फ्लैट में आ कर सेन साहब की चिंताधारा प्रश्नवाचक हो गयी — क्या किया जाना चाहिए. बीमार हो गयी मिसेज सेन और परेशान कुतिया ने उनको प्रश्नों के घेरे में बंद कर लिया. शानदार घर की ओर, घर के सारे सामान की ओर गौरव और दुख के साथ उन्होंने देखा. ऐसे अवसर पर मिसेज सेन की जरूरत थी. वह बीमार हैं. सेन ने फोन किया, लंदन से लौटकर आये हुए अंग्रेजी के प्रोफेसर आइजक विश्वास को.

—मिस्टर आइजक, मैं लंदन जाना चाहता हूं. हमेशा के लिए.

आइजक विश्वास हंसे— दोस्त, ऐसी गलती कभी न करना. यही गलती करके मैं लंदन गया था कि हिंदुस्तान में अब अंग्रेजी पढ़ाने का कोई अर्थ ही नहीं है. वहां तुम जानते हो, अंग्रेजों ने मेरे साथ क्या सलूक किया? उन्होंने मुझे काली चमड़ी वाला ही समझा. मुझे अंग्रेजी पढ़ाने के योग्य नहीं समझा. मैं तीन बरस तक लंदन में रेल की क्लर्की करता रहा.

* *

छात्रों ने कालेज को २४ घंटे के अंदर खोले जाने की मांग पेश की. सेन साहब के गवर्निंग बॉडी के मित्रों ने कहा— इतनी छोटी बात प्रतिष्ठा का प्रश्न नहीं बनती है.

यह छोटी बात है, माइकेल सेन मान नहीं पाये. मिसेज सेन की बढ़ती हुई खांसी और स्वीटी कुतिया का सूखता चेहरा उनकी परेशानी को बढ़ाता रहा. कालेज कर्मचारी सीधे सेन साहब के त्यागपत्र की मांग करते हुए दिन में तीन बार उनके फ्लैट के नीचे नारे लगाते, हुल्लड़ करते. सेन साहब गुर्राते हुए जमीन पर थूक देते.

राबर्ट मुखर्जी ने मिसेज सेन की बीमारी पर संवेदना प्रकट करने के बाद माइकेल सेन से कहा— बात को आगे बढ़ाने देना ठीक नहीं है. अब आप निर्णय ले लीजिए.

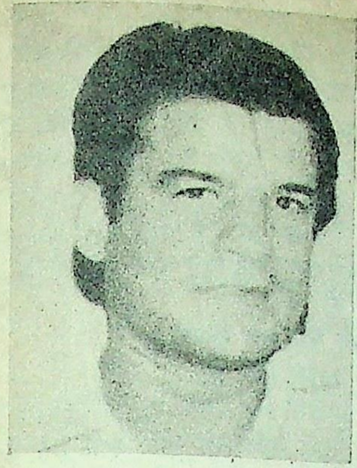
राबर्ट मुखर्जी के चेहरे पर सेन साहब को कुटिलता नजर आयी. वह सहम गये. वह कहां जायेंगे? यह नौकरी छूट गयी तो क्या करेंगे?

सेन साहब ने भर्रायी हुई आवाज में कहा—राबर्ट, मुझे बताओ मैं क्या करूं? आई वांट योर हेल्प.

राबर्ट मुखर्जी कालेज के सभी स्तर के कर्मचारियों की मीटिंग बुलाते हैं. सदा मुस्कराती हुई आवाज और आंखों से बोलती हुई भाषा— कालेज एक परिवार है. कालेज के कर्मचारियों ने जिन कठिनाइयों की ओर ध्यान दिलाया है, उन पर हम विचार करेंगे. यह आश्वासन मैं देता हूं. उन्हें समझेंगे. उन्हें दूर करेंगे. पर जिस दुर्भाग्यपूर्ण घटना से यह बातें सामने आयी हैं, यह उस बात का अच्छा पहलू है. फिर भी दुर्भाग्यपूर्ण घटना के प्रति दुःख प्रकट करना ही ठीक है.

इसके बाद सेन साहब उठे और दोनों हाथ जोड़ कर कहा— जो कुछ घटित हुआ उसके लिए मैं दुःखी हूं. बंशी हंस पड़ा. अहमद ने सिर नीचा कर लिया. उनकी नजर बंशी पर टिक गयी. उन्हें लगा कि बंशी बहुत ही लंबा है. राबर्ट मुखर्जी ने धीरे से कहा— टेक इट ईजी, मिस्टर सेन. मिस्टर सेन को बंशी का आकार बढ़ता नजर आया. □□□

एल ११८, करीम बख्श, गवर्नमेंट हाउसिंग एस्टेट, कलकत्ता—२



मैं किसी पुल-सा थरथराता हूं

• कन्हैयालाल नंदन

मैं उन दिनों नया-नया दिल्ली आया था और दुष्यंत ने उन्हीं दिनों नयी-नयी गजलें लिखना शुरू किया था. 'सारिका' में कहानियां छपती हैं लेकिन कमलेश्वर जी को दुष्यंत की गजलों के एक-एक शेर में एक-एक कहानी का समूचा परिवेश समाया दिखा, तो उन्होंने उसकी एक गजल छापी.

कैसे मंजर सामने आने लगे हैं
गाते-गाते लोग चिल्लाने लगे हैं.

गजल छपी बाद में, पहले उन्होंने नागपुर से रामटेक जाते हुए कार में हम लोगों को सुनायी. उसी गजल का भूत मेरे सर पर चढ़ा हुआ था और मैं जहां-तहां मित्रों में उसका बातरन्नुम पाठ करता रहता था. उसी दौरान जनाब दुष्यंत साहब दिल्ली तशरीफ ले आये. रमेशचंद्रजी (दुष्यंत के घने मित्र और टाइम्स, दिल्ली के प्रबंधक) के साथ दुष्यंत के सामने उन्हींकी लंतरानियों का जिक्र छिड़ा हुआ था कि किसीने ((शायद लक्ष्मण टंडन ने) गिरह लगायी--दुष्यंत, कभी तुमने अपनी गजलें नंदन से सुनी हैं?

--गजल तो नहीं सुनी, इस कमबख्त की बेवकूफी जरूर सुन रहा हूं कि ईमानदारी से मेरी गजल कह कर सुनाता है. घर आयी शोहरत को दरवाजे से लौटा देता है.

--तुम्हारी गजल को तुमसे तो कोई सुनने से रहा, इसलिए मुझे यह धंधा अपनाना पड़ा. और इस तरह कभी ठहाका इधर और कभी उधर होता रहा. फिर दुष्यंत से कई गजलें सुनी गयीं.

दूसरे दिन हम दोनों को जम्मू रेडियो के श्री वीर सक्सेना के जमाव में जाना था. दुष्यंत ने कहा--नंदन, अभी तक चालीस से ऊपर गजलें हो चुकी हैं. सबकी सब तुझे सुनाना चाहता हूं.

-प्यार से सुनूंगा प्यारे, यारी में हर तरह की यातना सहनी पड़ती है. उस शाम विदा होने का यह आखिरी ठहाका था.

जैसा कि तय था, दूसरे दिन शाम कश्मीर मेल के डब्बे में बिस्तर लग गये. साथ में अजितकुमार, बालस्वरूप राही, गोविंद व्यास, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना और श्रीमती त्यागी (दुष्यंत की पत्नी) भी थीं, मजाक में मैंने कहा--भाभी जी, आज तो आप आराम से सो लीजिए. आज इसके पास काफी श्रोता हैं. और मेरे लिए तो आप ईश्वर से दुआएं ही कीजिए--मुझे तो चालीस गजलें पिलाने की धमकी दे कर चले हैं श्रीमान. डब्बे में एक जोरदार ठहाका, जिसमें सबसे बुलंद आवाज दुष्यंत की थी. अन्य यात्री इस ठहाकाबाज पार्टी को पागल करार देने के लिए उतावले-से लगने लगे. किस्सा कोताह--गजलों का दौर शुरू हुआ. एक से एक शानदार. . .

उस रात मुझे जुनून सवार था दुष्यंत को सुनने का और उसे सुनाने का. कविताओं के बहाने हम लोग जिंदगी के तमाम चस्पां पन्ने खोलते रहे. रात एकाध घंटे को झपक कर दुष्यंत फिर मेरे पास आ जमा. अजित जी की आंख खुली तो हम दोनों को जमा हुए देख कर बोले--आप लोग सोये ही नहीं क्या?

मैंने कहा--अजित, बड़ा मिस किया तुमने. कमबख्त ने क्या कमाल किया है गजलों में. और इसी बहाने दुष्यंत से एक गजल और सुन ली गयी.

गाड़ी पठानकोट पार करके जम्मू के रास्ते चली तो एक पुल से गुजरने लगी. दुष्यंत को जैसे अचानक खयाल आया, बोला--नंदन, यह गजल बाद में सुनाऊंगा, पहले तू अपने मतलब का एक शेर सुन ले--

तू किसी रेल से गुजरती है
मैं किसी पुल-सा थरथराता हूं.

इस शेर के बाद हम दोनों थोड़ी देर के लिए खामोश हो गये थे. मुंह से बेसाख्ता 'वाह' तो निकली और फिर पूरी गजल खामोशी में ही सुनता रहा. जम्मू की मेरी वह समूची यात्रा दुष्यंत को जानने-समझने की यात्रा बन गयी.

ऐसा नहीं कि पहले दुष्यंत को जानता या समझता नहीं था. अभी भी इलाहाबाद का वह छोटा-सा घर याद आता है, जिसमें सबसे पहले दुष्यंत से मुलाकात हुई थी. उन दिनों दुष्यंत -कमलेश्वर-मार्कंडेय की तिकड़ी जोरों पर थी. दुष्यंत का कविता संग्रह 'सूर्य का स्वागत' आया ही आया था. मैं एक दिन सुबह-सुबह पहुंचा तो श्री दुष्यंत कुमार त्यागी एक रेशमी रजाई में दुबके चाय की चुस्कियां ले रहे थे. रखरखाव कुछ राजकुमाराना. वहीं से 'एक चाय और' की आवाज मार कर याराना

अंदाज में लौट आये. जब कुछ कविता की बात मैंने चलायी तो श्रीमान जी साहित्यिक हायरार्की में मुझे 'नाचीज' समझ कर टरकाऊ शैली पर उतर पड़े. खैर मैं अपने मतलब की बात करके उनके कमरे से उतर आया. इतना मैंने जरूर समझ लिया कि यह आदमी साहित्य में 'हार्ड लाइनर' है. किसी 'कमिट' की हुई रचना को देने में भी कमलेश्वर-मार्कंडेय की मोहर चाहता है. बात आयी गयी हो गयी. एक दिन सिविल लाइन्स में इस शख्स को मेरी सूरत नजर आ गयी. पता नहीं क्या सोच कर जनाब मेरे पास आये और मेरे कंधे पर हाथ रख कर बोले—नंदन, उस दिन तुमसे मैं आदत के बरखिलाफ कुछ बोल गया होऊं तो माफ करना, तुम्हारे जाने के बाद मैं बहुत अफसोस में रहा.

मैंने दुष्यंत को भरसक याद दिलाने की कोशिश की कि उन्होंने मेरे साथ कोई भी बदसलूकी नहीं की थी लेकिन दुष्यंत मानने को तैयार नहीं थे. मैं आज तक यही मान रहा हूं कि दुष्यंत ने किसी और के बारे में कुछ गलत सोचा या किया होगा और मुझे उस व्यक्ति की जगह बैठा कर पाश्चाताप में जलते रहे हों... दुष्यंत की उस पहली तसवीर से ले कर जम्मू की तसवीर तक मेरे मन पर उसकी हजार रंगतें चढ़ीं. कविता पढ़ने का उसका अंदाज मुझे उसकी कविता से भी ज्यादा शानदार लगता था. फिर दुष्यंत कब रेडियो में गये, कब दिल्ली रहे, कब नजीबाबाद गये और कब भोपाल, मुझे कुछ पता नहीं रहा. शायद तब मैं खुद अपनी जिंदगी के नाक-नक्श संवारने के फेर में इतना डूबा हुआ था कि दुष्यंत की खबर लेने की फुरसत नहीं थी.

लेकिन एक दिन अचानक फिर दुष्यंत का नाम मेरे सामने आ गया. कुछ पंक्तियां सामने पड़ गयीं. ——

देवत्व और आदर्शों का परिधान ओढ़
मैंने क्या पाया?
निर्वासन.
प्रेयसि वियोग!!
हर परंपरा के मरने का विष
मुझे मिला.
हर सूत्रपात का
श्रेय ले गये और लोग.
मैं ऊब चुका हूं
इस महिमामंडित छल से
अब मुझे स्वयं का
वास्तव सत्य पकड़ना है,
जिन आदर्शों ने
मुझे छला है कई बार,
मेरा सुख लूटा है
अब उनसे लड़ना है.

भारती जी के **'अंधायुग'** को अनेक बार पढ़ चुकने के बाद बंबई में सत्यदेव दुबे का मंचन देखा तब बार बार मन में यह उठता था कि काश हिंदी में इस दिशा में और लोग भी पहल करते. अब भारती जी को दुष्यंत के काव्यनाटक **'एक कंठ विषपायी'** की प्रति **'धर्मयुग'** में समीक्षार्थ मिली तो वह उन्होंने मेरे हाथों में थमा दी. ऊपर की काव्य पंक्तियां उसी नाटक का अंश हैं. शिव का यह आत्मानुभव कहीं गहरे तक मुझे सालता रहा, कई दिनों तक ये पंक्तियां जेहन में घुमड़ती रहीं. दुष्यंत को बधाई का पत्र लिखा तो उसने उलट कर जो लिखा वह कम घुमड़ने वाला न था. वह पहली बार था जब दुष्यंत की जिंदगी का एक नया पन्ना मेरे हाथ लगा था और मैं बेसाख्ता सूर्यभानु गुप्त की गजल का एक शेर कह बैठा था :—

जिंदादिल लोग रूह तक अपनी
दर हकीकत उदास होते हैं.

मुश्किल यह हो गयी कि उसके बाद से हमेशा मुझे दुष्यंत की हंसी में एक पहली-सी डोर बंधी हुई नजर आती रही जो कहीं बहुत गहरे जा कर एक अंधेरे तहखाने में खो जाती थी. पता नहीं दुष्यंत ने अपने अंधेरों का मुंह फाड़ कर उस क्षण क्यों मेरे सामने रख दिया था. शायद उस वक्त वह किसी कमजोर क्षण में बैठा रहा होगा. क्योंकि मैं अपने को उसके इतना नजदीक नहीं मानता था कि जिंदगी के असली अंधेरों की सीवन उधेड़ कर मेरे सामने उनमें थिगरियां लगाता.

शायद तब तक उसका संग्रह **'जलते हुए वन का बसंत'** नहीं आया था. जब मैं पहली बार भोपाल गया, जनाब उन दिनों भाषा विभाग में थे और खूब जोरों पर थे. तब तक सस्पेंड भी नहीं हुए थे और शरद जोशी के साथ में उसके घर पहुंचा तो दुष्यंत ने घंटे भर के अंदर अपना कमरा साहित्यकारों से इस कदर ठसाठस भर लिया कि बैठना दूभर हो गया. जब सिलसिला खत्म होते न दिखा तो मैंने शरद से कनखियों 'या इलाही ये माजरा क्या है' अंदाज में पूछा. शरद ने उच्च स्वर में कहा—यह हमारे बाबू दुष्यंतकुमार त्यागी की एक अदा है. भोपाल आये हो तो ताल ही थोड़े देखोगे. उस अदा का शबाब उसी रात चांदनी रात में टहलते हुए टी. टी. नगर सिनेमाघर के पिछवाड़े वाली सड़क पर देखने में आया. कैसे कहूं कि वह रात मेरी यादों की सबसे हसीन रात बन कर रह गयी है. लेकिन दुष्यंत के मैं बहुत करीब हूं, यह प्रतीति मुझ में तब भी पैदा नहीं हो पायी. अलबत्ता उसके लेखन से बराबर जुड़ा हुआ महसूस करता आया. इतना जुड़ा हुआ कि मुझे भी यह लगने लगा कि दुष्यंत को अपनी कविताएं मुझे सुना कर अच्छा लगता है. उसके कवि-मन से जुड़ कर चलने की यह एकात्मता मुझे भी सुख और संतोष देती रही. लेकिन क्या पता था कि उतनी ही एकात्मता उसके न रहने पर जीवन भर के लिए भारी पड़ेगी.

जब अभी पिछले दिनों जम्मू फिर जाना हुआ तो फिर वही पुल पड़ा जहां दुष्यंत ने अपना शेर सुनाया था. मैं बयान नहीं कर सकता कि मेरी क्या हालत हुई. मेरा सारा धैर्य थरथरा कर रह गया. पूरी यात्रा भर दुष्यंत की यादें मेरे इर्द गिर्द मंडराती रहीं. जम्मू के युवा कवि निर्मल विनोद ने अपना कविता संग्रह दुष्यंत की याद को समर्पित करते हुए मुझसे कुछ शब्द बोलने का आग्रह किया तो मैं बोलना तो दूर, दा

पत्रों के लिखते, मैं ही फूट पड़ा. सच दुष्यंत, पता नहीं था कि तुमने मुझे इतने करीब अपने से बांध रखा है.

सोचता हूं तो पाता हूं कि दुष्यंत का संसार छोटा संसार नहीं था, बड़ा विशाल था. उसका मित्र मंडल अपार था. वह अपने चपरासी से बीड़ी मांग कर पीता था, वह भी उसका मित्र था. वह अपने अफसरान और हुक्काम के साथ शराब के प्याले खटकाता था, वे भी उसके मित्र थे. हजारों जगह उसका दिल बंटा हुआ था. फिर किस दिल के दौरे से वह चला गया, कुछ समझ में नहीं आता. समझ में आता है तो केवल इतना :—

मौत ने तो धर दबोचा एक चीते की तरह
जिंदगी ने जब छुआ कुछ फासला रख कर छुआ.

जिंदगी का यह फासला रख कर छूना उसकी गजलों को तराशता गया. सियासी रंग वाली शायरी हो या रोजमर्रा की आपसी संबंधों वाली तल्खियां, दुष्यंत ने एक-एक शेर को नगीने की तरह संवारा और फिर उसे गजल में उतारा. सरकारी नौकरी में रह कर भी एक रचनाकार की हैसियत से वही लिखा जो महसूस किया. वह चाहता तो अपनी शायरी के बल पर कसीदे लिख कर ओहदों की सीढ़ियां चढ़ सकता था, लेकिन उसने शायद नौकरी और रचनाधर्मिता दोनों की ईमानदारी को जाना था और दोनों के पेचोखम संवारना उसे भली प्रकार आता था. उसका यह कहना :—

मैं बहुत कुछ सोचता रहता हूं पर कहता नहीं
बोलना भी है मना, सच बोलना तो दर किनार
रौन के जन्नत जरा भी मुझको रास आयी नहीं
मैं जहन्नुम में बहुत खुश था मेरे परवरदिगार.

रचनाधर्मिता की यह ईमानदारी, दुष्यंत तुम्हें कभी हिंदी साहित्य से मिटने नहीं देगी. यह मत भूलो कि तुमने इन गजलों से अपने दुश्मन भी पैदा किये हैं, मुझे मालूम है कि तुम अजातशत्रु कभी नहीं रहे, भले ही तुम्हारी शख्सियत लड़ाका नहीं रही हो. लेकिन इन गजलों के चल डगरने पर बहुत से कविकुल-दिवाकर यह ढूंढने में लग गये थे कि इन गजलों के खूंटे उर्दू के किन शायरों के तंबूओं से उखाड़ कर गाड़े गये हैं. कैसे कहूं कि ये कविकुल दिवाकर तुम्हारी तसवीर बिगाड़ने के लिए मुड़ते ही औंधे मुंह गिर गये, तो पलट कर तुम्हारे 'प्रशंसक' बन गये. इसीलिए जब पहली बार मेरे पास उज्जैन से डा. शिव शर्मा और प्रभातकुमार भट्टाचार्य का खत आया था कि दुष्यंत के साहित्यिक मूल्यांकन की दृष्टि से हम उसकी याद में 'दुष्यंत स्मृति सांझ' मनाना चाहते हैं तो मैंने लिखा था कि उसे गये अभी कितने दिन बीते हैं. साहित्यिक मूल्यांकन के लिए थोड़ा वक्त बीतने दो ताकि जज्बात सही मूल्यांकन में रूकावट न डालें. उज्जैन की वह सांझ तीन महीने बाद मनायी गयी लेकिन उसकी कविता का रंग लोगों के मन में दिनों दिन निखर रहा है. निखर इसलिए रहा है कि दुष्यंत ने आम आदमी की बात को आम आदमी की जबान में कहने का अंदाज पा लिया था :—

मेले में भटके होते तो कोई घर पहुंचा जाता
हम घर में भटके हैं कैसे ठौर ठिकाने आयेंगे. □

लघुकथा

भेंट भगवान की

बात तब की है जब कबीरदास के भजन जनता द्वारा गुनगुनाये जाने लगे थे. और तो और साधु-संत भी कबीर की वाणी उत्साह से सुनाने लगे थे. ब्राह्मण भला यह कैसे बर्दाश्त कर सकते थे! उन्होंने एक वेश्या से मिल कर षड्यंत्र रचा; उसके हाथ में रुपयों की थैली दे कर कहा—जल्दी ही किसी सार्वजनिक स्थान में कबीर की छीछालेदर कर दो!

महात्मा कबीर कपड़े का गट्ठर ले कर बाजार में बेचने निकले. ब्राह्मण तो इसी अवसर की ताक में थे. वेश्या को संदेश भिजवाया. भरे बाजार में वह कबीर से लिपट कर रोदन करने लगी—क्यों बगुला भगत, मुझे अकेली छोड़ कर तुम यहां चले आये! मेरे पास तो न पेट भरने को अन्न है और न तन ढंकने को वस्त्र और तुम्हारे जैसे ढोंगी की सर्वत्र पूजा हो रही है!

किंतु यह क्या, कबीर अविचलित रहे, उनके चेहरे पर लज्जा अथवा अचरज का नामोनिशान न था. हां, ब्राह्मणों का झुंड उन्हें अवश्य खरी-खोटी सुना रहा था.

कबीर बोले—निःसंदेह मैं अपराधी हूं. जब तक मेरे घर में अन्न है, तुम्हें भूखा नहीं रहने दूंगा. मेरे साथ चलो.

और भक्तराज उसका हाथ पकड़ कर उसे साथ ले चले. ब्राह्मण यह देख उनकी ओर भी ठिठोली करने लगे. कुछ लोग गाली देने लगे.

घर पहुंच कर कबीर ने भोजन पकाया और उस स्त्री के सामने परोस कर कहा—बहन, शरमाना नहीं, भर पेट भोजन करना. भगवान ने तुम्हें मेरे घर भेज कर मुझ पर महान कृपा की है.

और इतना सुनना था कि उस वेश्या के नेत्रों से आंसुओं की अविरल धारा बह निकली.
—मुझे क्षमा कीजिए भक्तराज! आत्महत्या द्वारा ही मैं इसका प्रयश्चित कर सकूंगी.

—यह क्या कहती हो बहन? अब तो हम दोनों ही इस कुटिया में हरि-भजन किया करेंगे

ब्राह्मणों ने यह सुना तो एक दूसरा उपाय सोचा. राजा के पास खबर पहुंचाई कि पाखंडी कबीर को सजा दी जाय. राजा ने उन्हें बुलवा भेजा. कबीर उस स्त्री का हाथ पकड़ कर राज सभा में पहुंचे. राजा विचार में पड़ गये. तदुपरांत प्रहरियों को आज्ञा दी कि उन्हें राजसभा से बाहर कर दें. वे बाहर कर दिये गये.

अब उस स्त्री से न रहा गया, उनके चरणों पर गिर कर बोली—साधुराज, मुझ पापिनी को जाने दो, नहीं तो दुनिया तुम्हें जीने न देगी.

—तुम तो भगवान की भेजी हुई भेंट हो, तुम्हें कैसे जाने दूं? कबीरदास का उत्तर था. □

भारतीय भाषाओं की प्रथम मौलिक कथाएं और आद्यकथाकार

प्रथम मौलिक हिंदी कहानी

(१५)

प्रणयिनी-परिणयः एक विवेचन

— डॉ. बच्चन सिंह

किसी भी भाषा की पहली कहानी की खोज अपने आप में एक महत्वपूर्ण और रोचक कार्य है. इस महत्वपूर्ण खोज के लिए 'सारिका' ने ही पहल की है. पूर्व के अंकों में मलयालम, गुजराती, बंगला, तेलुगु, डोगरी, कश्मीरी, सिंधी, उड़िया, पंजाबी, मराठी, कन्नड़, असमिया, उर्दू और तमिल की प्रथम मौलिक कहानियां आप पढ़ चुके हैं. इस अंक में हिंदी की प्रथम मौलिक कहानी को तय करने के संबंध में सामग्री की प्रथम किस्त दी जा रही है.

'सारिका' ने अपने फरवरी १९६८ अंक में 'प्रसंग' स्तंभ के अंतर्गत स्व. माधवराव सप्रे की कहानी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को हिंदी की पहली मौलिक कहानी के रूप में प्रकाशित किया था और इसकी पेशकश देवीप्रसाद वर्मा ने की थी. तब से हिंदी साहित्य के अनेक विद्वान और इतिहासकार इस तथ्य को स्वीकार करते आये हैं. अब लगभग ९ वर्ष बाद डा. बच्चनसिंह ने उसी सवाल को फिर से उठाया है. उनके अनुसार किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'प्रणयिनी परिणय' हिंदी की पहली मौलिक कहानी है. हम यहां डा. बच्चन सिंह का विवेचन और 'प्रणयिनी परिणय' प्रकाशित कर रहे हैं. हम इस प्रश्न को अनिर्णित नहीं छोड़ना चाहते इसलिए इस संदर्भ में अन्य विद्वानों के विवेचन व अन्य सामग्री भी आगामी अंकों में प्रकाशित करेंगे ताकि यथासंभव उपलब्ध इतिहास के आधार पर हिंदी की पहली कहानी तय की जा सके तब तक के लिए जब तक कोई अन्य शोधकर्ता नयी सामग्री और तथ्यों के साथ किसी अन्य रचना को यह स्थान दे सके. —सं.

फरवरी, ६८ की सारिका में श्री देवीप्रसाद वर्मा का एक लेख प्रकाशित हुआ है 'हिंदी की पहली कहानी एक महत्वपूर्ण प्रश्न!" इसमें उन्होंने माधव प्रसाद सप्रे की 'एक टोकरी भर मिट्टी' को, जो सन् १९०१ में 'छतीसगढ़ मित्र' में प्रकाशित हुई है, हिंदी की पहली मौलिक कहानी सिद्ध किया है.

किशोरीलाल गोस्वामी की कहानी 'इंदुमती' (१९००ई.) को बहुत से लोग हिंदी की पहली कहानी नहीं मानते. इसके लिए कोई नया तर्क या प्रमाण न दे कर विद्वानों ने आचार्य शुक्ल के कथन का भाष्य करके इसे प्रथम कहानी कहने से इंकार कर दिया है. शुक्लजी ने अपना संशय व्यक्त करते हुए कहा है कि यदि 'इंदुमती' किसी बंगला कहानी की छाया में नहीं है तो हिंदी की यही मौलिक कहानी ठहरती है.' लोगों ने इस पर तरह-तरह की छायाएं ढूंढ़ निकालीं. किसी ने टेंपेस्ट की छाया कहा और किसी ने बंगीय कहानी की छाया. श्री वर्मा का खयाल है कि 'यदि' लगा कर शुक्लजी स्वयं को प्रथम कहानी लेखक के रूप में प्रतिष्ठित करना चाहते थे. जो हो, यह तो शुक्ल जी जानें और वर्माजी.

खुद वर्मा जी 'एक टोकरी भर मिट्टी' को कहानी सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित तर्क देते हैं:—

१. 'स्व. माधवराव सप्रे द्वारा लिखित इस कहानी में कहानी के सभी तत्व विद्यमान हैं. सातवें शतक में कहानी का जो स्वरूप आज हमारे सम्मुख है, उसके सभी बीज इस कहानी में स्पष्ट हैं—आज कहानी के साथ-साथ एक और कहानी चलती है. वह मानवीय परिशांति की गाथा है.. . .वह कहानी जो ऊपर है, वह भी अपनी अभिव्यक्ति परिवेश और अंचल में नयी है.' (कमलेश्वर, नई कहानी की भूमिका) नयी कहानी के सबल पक्षधर

कमलेश्वर की बाणी किसी सीमा तक प्रस्तुत कहानी में मिलती है.'

२. 'कहानी क्रमशः स्वाभाविक क्रम से बढ़ती है. क्रूर मनुष्य में भी साधुता विद्यमान रहती है. इस मनोवैज्ञानिक तथ्य को कथाकार ने स्वाभाविक गति से चरम उत्कर्ष पर पहुंचा दिया है. . .'

३. 'तत्कालीन बोझिलता से अलग अपनी संक्षिपतता के कारण यह कहानी बहुत महत्वपूर्ण है.'

पहले तर्क में कमलेश्वर का नई कहानी का पक्षधर होना कोई समीक्षा-सिद्धांत नहीं है, जिसके आधार पर उक्त कहानी को कसा जा सके. मानवीय परिणति की गाथा तो प्रत्येक समय की प्रत्येक कहानी के साथ चला करती है. यह आख्यान साहित्य मात्र की विशेषता है. इससे कहानी के रूप विन्यास पर प्रकाश नहीं पड़ता. दूसरा तर्क भी मनोवैज्ञानिकता, चरमोत्कर्ष आदि प्रत्येक कहानी के साथ चस्पा होता है. संक्षिप्तता कहानी की मज्जागत विशेषता नहीं है.

सन् १९०१ में प्रकाशित कहानी में सातवें दशक की कहानियों का बीज ढूंढ़ निकालना प्रीतिकर आश्चर्य है. डा. धनंजय भी इसे सातवें दशक की कहानी के नजदीक मानते हैं. यदि 'एक टोकरी भर मिट्टी' को सातवें दशक की कहानी के निकट मान लिया जाये (यद्यपि यह कथन अत्यंत भ्रांतिपूर्ण है) तो यह कहानी अपने ऐतिहासिक संदर्भ से च्युत हो जाती है. किसी भी साहित्यिक विधा का क्रमिक विकास होता है. अपने समय की कहानियों के मेल में न होने के कारण सिद्ध होता है कि यह अनुवाद है.

पर 'प्रणयिनी परिणय' को पहली कहानी मान लेने के विरोध में अनेक तर्क दिये जा सकते हैं. पहला तर्क तो यही है कि जब लेखक खुद उसे उपन्यास कहता है तो हम उसे कहानी क्यों कहें? मई, ६८ की 'सारिका' में अपना मत व्यक्त करते हुए मैंने लिखा था—'मेरे विचार में हिंदी की पहली कहानी 'प्रणयिनी परिणय' है जिसे किशोरीलाल गोस्वामी ने सन १८८७ में लिखा था. सन् १८५०-१९०० और कुछ उसके बाद तक कथा साहित्य (फिक्शन) को उपन्यास कहने का चलन था. सन १९०० में 'सरस्वती' में छपी कहानी को भी उन्होंने अपने उपन्यास पत्र में उपन्यास कह कर ही छापा है.' सन् १९०० में सरस्वती में 'इंदुमती' ही छपी थी. 'सरस्वती' के हीरक जयंती विशेषांक में बालकृष्ण भट्ट के 'नूतन ब्रह्मचारी' को कहानी कहा गया है जब कि बहुत से लोग उसे उपन्यास कहते हैं.

कहानी व उपन्यास में, ऐसा प्रतीत होता है कि उस समय तक, कोई ऐसा अलगाव नहीं हो पाया था कि उनके बीच कोई विभाजक रेखा खींची जा सके. उपन्यास बहु आयामी होता है अर्थात उसमें जीवन के अनेक संदर्भ सुगंफित होते हैं. कहानी एक आयामी साहित्यिक विधा है जो सब मिला कर एक भाव या विचार पर केंद्रित रहती है. इन दोनों के बीच विभाजन की यह रेखा सर्वस्वीकृत हो चुकी है. इस दृष्टि से 'प्रणयिनी परिणय' कहानी ही कही जायगी.

प्रत्येक 'निष्क' को अलग-अलग खंड मान लेने पर कहानी कई खंडों में विभक्त दिखाई पड़ती है. इस तरह खंडों में बांट कर कहानी लिखने की प्रथा चलती रहती है. हर 'निष्क' या खंड के आरंभ में श्लोकबद्ध नीति कथन है, ये श्लोक कहानी के रूप विन्यास में बाधक सिद्ध होते हैं. किंतु इन्हें उपन्यास का तत्व नहीं कहा जा सकता. गोस्वामीजी के उपन्यासों में इस प्रकार के श्लोक उद्धृत नहीं हैं. यह नीति के प्रति आग्रह का सूचक है और संस्कृत की 'आख्यायिकाओं के मेल में है. जिस प्रकार भारतेंदु हरिश्चंद्र के नाटकों में पूर्व और पश्चिम की संक्रमणशीलता दिखाई पड़ती है, उसी प्रकार की संक्रमणशीलता गोस्वामीजी की इस कहानी में भी है.

इसके रूप-विन्यास पर आख्यान पद्धति का पूरा असर है. इसका आरंभ, अंत, वाक्य-विन्यास, शब्द प्रयोग आदि पर आख्यान परंपरा की स्पष्ट छाप है. अंत में भरत वाक्य है. इस भरत वाक्य को तो परिष्कृत रूप में प्रेमचंद की प्रारंभिक कहानियों में भी देखा जा सकता है. भाषा संस्कृतनिष्ठ है. इसके कारण भी आपत्तियां उठाई जा सकती हैं. लेकिन संस्कृतनिष्ठता तो प्रसाद, यशपाल और अज्ञेय में भी खूब है.

असली सवाल है कि तब इसका कहानीपन क्या है? इसके उत्तर में कहा जा चुका है कि एक केंद्रीय भाव–प्रगाढ़ प्रेम की सुखांत परिणति. किंतु यह तो पुरानी कहानियों में भी मिलता है. इसका उत्तर होगा कि क्या आज की कहानियों में नहीं मिलता? किसी थीम को कहानी बनाता है उसका प्रस्तुतीकरण. इसके प्रस्तुतीकरण में साकांक्षता का जो विधान किया गया है, वह पुरानी कहानियों से इसे अलग कर देता है. इसकी साकांक्षता सपाट न हो कर नाटकीय है. नाटकीयता का यह तत्व इसे आधुनिक कहानियों के मेल में ले आता है. यह नाटकीय तत्व इसकी कथा को कथानक का रूप देता है.

उस काल के परिप्रेक्ष्य में साहित्य को नैतिकता से अलग नहीं किया जा सकता . साहित्यिक विधा का क्रमागत रूप-विकास बदलते हुए ऐतिहासिक संदर्भों में ही विश्लेषित करना संगत है. यदि उस समय में प्रकाशित कथा साहित्य को ठीक ढंग से विवेचित किया जाय तो उपदेश परकता (डाइडेक्टिसिज्म) उसकी सामान्य विशेषता होगी. जिसमें यह विशेषता न मिले, वह उस काल की सामान्य प्रवृत्ति या प्रवृत्ति के बाहर पड़ेगा.

इस कहानी में राजा की न्यायप्रियता, मित्र का त्याग, प्रेम की एकनिष्ठता आदि को उपदेश परकता में गिना जायेगा. पर पुलिस की क्रूरता, फांसी की सजा पर पुनर्विचार समसामयिक परिस्थितियों की देन है. प्रेमी और प्रेमिका को एक ही बिरादरी का मान कर परंपरागत रूढ़ि को ही समर्पित किया गया है. इस तरह कहानी में वैचारिक संक्रमणशीलता भी दिखाई देती है.

चरित्रों में पिता को छोड़ कर शेष आदर्शवादी हैं—राजा, प्रणयिनी, मारशास्त्री सभी. पिता का यथार्थ

भी मित्र के आदर्श को पुष्ट करने के लिए रखा गया है. पिता दोषी पुत्र को त्याग सकता है पर मित्र उसके दोषों को स्वयं स्वीकार करके दंड भोगने के लिए प्रस्तुत हो सकता है. चरित्रों के चित्रण के निमित्त जो स्थितियां (सिचुएशंस) उभारी गयी हैं, वे बहुत सटीक नहीं बन पड़ी हैं. पूरी कहानी को जैसा पात्रों के नाम, मारशास्त्री, परदु:ख भंजन मिश्र आदि, इसे किसी हद तक अन्यान्यदेशिक भी बना देते हैं. इसलिए भी चरित्रों का विकास नहीं हो पाया है. लेकिन उस समय इतना ही बहुत था.

जैसा पहले कहा जा चुका है, उस ऐतिहासिक परिदृश्य में इस तरह की कहानी का बनना ही स्वाभाविक था. हिंदी कहानी-उपन्यासों की ही शुरुआत डाइडेक्टिक दृष्टिकोण से नहीं होती. अंग्रेजी कथा साहित्य भी ऐसी ही परिस्थितियों से होकर गुजरा है. पहली कहानी की जांच-पड़ताल के लिए इतिहास के इस संदर्भ को नजर-अंदाज नहीं करना होगा. ऐतिहासिक संदर्भ को छोड़ देने पर कहानी की विकास-यात्रा को देख पाना संभव नहीं है.

□□□

संभावित प्रथम मौलिक हिंदी कहानी?

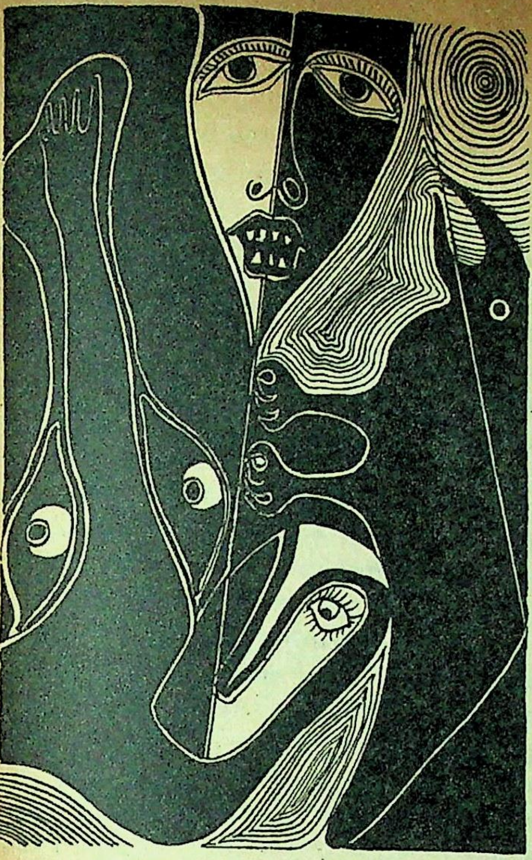
प्रणयिनी-परिणय

— किशोरीलाल गोस्वामी

तेजस्विमध्ये तेजस्वी दवीयानपि गरायते ।
पंचमः पंचतपस्तपनोजातवेदसा ।।१।।
(सभातरंगे)

पूर्वकाल में सर्वनगरीललामभूता सुरपुर की अखिल शोभा शौष्ठव संपन्न पंपापुरी थी. उसके सर्वस्वामि गुणोपेत प्रजावत्सल नामा नृपति राज्याभिषिक्त थे. भूपति का अर्थ ही है 'प्रजा का यथार्थ पालन करना' और यह भी सत्य ही है कि प्रजा की तादृश अवस्था दृष्टिगोचर हुए बिना उसका उचित पालन हो ही नहीं सकता जब कि प्रजा पुत्रवत् है, और उसका लालन-पालन तनय के तुल्य ही करना महीप का धर्म है, तो सुसंपन्न महीपाल स्वयं उनका निरीक्षण किये बिना क्योंकर तदनुरूप व्यवहार कर सकता है? यही निश्चय करके कि अब सर्वशक्तिमान जगदीश्वर ने मुझे पृथ्वी पोषण की क्षमता दी है, तो केवल निम्न कर्मचारियों के ऊपर ही निर्भर नहीं रहना चाहिए; स्वयं भी यथाशक्ति यत्न और अध्यवसाय कर्तव्य है.

इस प्रकार सोच-विचार कर राजा प्रायः निशीथ समय में स्वीयवेशविपर्य्यय अर्थात् प्रहरीगणों के तुल्य परिच्छेद परिधानपूर्वक नगर रक्षकों की भांति पुर के चतुर्दिक्षु निरंतर परिभ्रमण किया करता, विशेषतः भिक्षुवेश तथा कभी-कभी अन्यान्य उपायों से नागरिक मंदिरों में प्रवेश करके उनका इति-वृत्त जानने की पूर्णतः चेष्टा किया करता, सुतरां मानवी गोष्ठाओं में तो सततः प्रच्छन्न रूप से जाया करता, और उनके आशयों को हृदयंगम किया करता था. आहा! ऐसे सुयोग्यतम न्यायपरायण राज्य भारबाहक्षम "प्रजावत्सल" महीपति के राज्य में भी कदापि असच्चरित, चोर, लंपट, शठ, बदमाश, उठाईगीरे, डाकू रह सकते हैं? वा उसकी सुशीला प्रजा कभी भी दुष्टों से विविध कष्ट पाय के दुखी:, दरिद्री, पीड़ित, अन्यायग्रस्त, निक्षुण्ण भाव के रह सकती है? सुतरां सर्व सौख्य लहरी कल्लोल कौतुकावगाहन में संदेह ही क्या है परंतु क्या! ऐसे सुसमय को सुप्रबंध के कारण देख के फेर क्या महीपति को संतोष करना उचित है? क्या राज्य शासन में निश्चिंतता कभी भी कार्यकारिणी हो सकती है? वो निश्चिंतता भी राजा के तत्पर भये बिना यथावस्था में रह सकती है? बस यही विचार कर रात्रि के परिभ्रमण से राजा कदापि बिरत नहीं रहता. किंतु यह मानवी प्रकृति है कि अपने कार्य की उत्तमता देख कर मनुष्य के चित्त में अहंकार का संचार होता ही है और अहंकार ग्रस्त मनुष्य आपत्ति के बिना सुप्रबंधक क्योंकर हो सकता है? यह जानकर राजा अपने राज्यप्रबंध श्रमसिंधु में मग्न रहकर गर्वरहित सदा परमेश्वर ही को धन्यवाद दिया करता था. आहा! वह पुरुष धन्य है जो जगदीश्वरदत्त बस्तु की रक्षा करके उसकी आज्ञा पालन ही श्रेयस्कर समझता है, तभी निज कार्यों में रत मनुष्य कभी न कभी अवश्य प्राप्त मनोरथ होता ही है, यह समझ कर एक समय एक रात्रि में परिभ्रमण करते-करते राजा भव्यालय श्रेणियों के दर्शनार्थ गया. वहां अनेक प्रकार के अद्भुत कौतुकों को देख आश्चर्यचकित हो कहने लगा, हैं? क्या आपत्ति है? क्या मेरे सब परिश्रम का इतने दिनों में आज यही फल निकला? हा! ऐसी न्यायपरायणता, सदावर्त अनाथालय, उद्यम बाहुल्य के रहते भी यह कर्म, यह उपद्रव, यह दुर्घटना तथा यह दुर्दशा मनुष्यों की हो रही है? अन्यथा यहां इस समय इस व्यक्ति का इस प्रकार गृह में प्रवेश करने का यत्न करना क्या है? यद्यपि इसका यथार्थ निर्णय सहसा इस



● प्र. श्री. भगत

समय होना किंचित दुर्घट होगा, तथापि विचार करने और इसके लक्षण से क्या अब भी कुछ संदेह रह गया है? जो हो! किंतु अब इस समय इसको यों ही छोड़ देना उचित नहीं . सुतरां यह मन में जानकर राजा उस आदमी के समीप जाकर बोला, रे दुष्ट! क्या तुझे संसार में दुसरी कोई आजीविका नहीं है, जो तू ऐसा घृणित कर्म करता है! अरे तुझे राजा का भी भय नहीं. हा! यह तू नहीं जानता कि ऐसे कर्म करने में प्राण जाते हैं? रे निर्दयी! तुझे अपने प्यारे जीव की भी कुछ दया नहीं? देख! अब तेरी मृत्यु ने तुझ पर पूरा-पूरा आक्रमण किया है, भला अब क्या तु मुझसे बच सकता है? यह कह कर राजा ने उस चोर को पकड़ा और कहने लगा कि कह तू कौन है जो ऐसा काम करता है? जान पड़ता है कि तैंने इस व्यवहार से कितने घरों को चौपट कर अनेक जीवों का प्राण-धन लिया होगा. चल तो सही कल राजा के समीप, तुझे अपने कर्मों को स्वीकार करना पड़ेगा, और क्या किसी प्रकार भी अब तेरा प्राण बच सकता है? . इस प्रकार नगर-रक्षक की बात को सुन चोर अपने मन में इस घोर दुर्घटना का परिणाम सोच बड़ा विकल हो कहने लगा कि—

हा कष्ट! अरे इस सौख्य शैल पर ऐसा वज्रघात, हा! आनंद भूमि से उठा कर यों शोक सागर में निपात अनेक रक्षा करने पर भी अनायास मृत्युमुख प्रवेश, हा हंत! हा दैव! ! कृत कर्म विपाक का अशेष.

हा दैव! इस समय मैं चोर हो गया? हे जगदीश्वर क्या मुझसे व्यक्ति की भी चोरों में गणना हो सकती है? अस्तु क्या आज प्रजावत्सल राजा का न्याय इति कर्तव्यविमूढ़ हो गया. अरे! ऐसा अनर्थ! यह अदृष्ट पूर्व आश्चर्य राजा के अनुचरों की ऐसी उत्कृष्टता! यह बलात्कार! अरे अब क्या हो सकता है! कहीं कराल काल के गाल से भी कोई निहाल भया है! अरे! इन अन्यायियों के मारे अनेक निरपराधियों के अमूल्य प्राण-धन जाते होंगे; क्या ईश्वर के यहां इसका उत्तर राजा को न देना होगा परंतु इन प्रपंचों से अब मैं क्योंकर बच सकता हूं. यदि ईश्वर सत्य और में निर्दोषी,तथा राजा न्यायपरायण है, तो इन ब्यर्थ भूंकने वालों के किये मेरी क्या क्षति हो सकती है? परंतु ऐसे समय में मनुष्य को धैर्य धारण करना चाहिये, आगे जो भवितव्य है तो विना भये नहीं रहता 'हरिच्छा वलीयसी' अपिच अपनी शक्त्यानुसार आत्म-रक्षा करना मनुष्य मात्र का कार्य है, इत्यादि विचार कर वो अत्यंत बिनीत भाव से बोला—

महाशय! आपने जो मुझे इस समय अपने विचारानुसार चोर जानकर पकड़ा सो बस्तुत: मैं चोर नहीं हूं, प्रत्युत एक सुप्रतिष्ठित ब्राम्हण का तनय हूं. यदि आप दयापूर्वक मुझे मेरे पिता के सन्मुख ले चलें तो वे आपको विविध सन्मान, विपुल धन द्वारा संतुष्ट करेंगे क्योंकि पुत्र पर पिता की ममता सर्वतोभाव से होती है अतएव ईश्वर के अनुग्रह से आप मुझ निरपराधी को छोड़कर अमोघ यश लाभ करें.

पाठक! यह ठीक है कि विपत्ति में कैसा ही धीर पुरुष क्यों न हो, उसकी भी विचार-शक्ति कुछ न कुछ अवश्य मंद पड़ जाती है, यद्यपि इसने (अपने मन में कहने की इच्छा करके) राजा के विरुद्ध वचन धीरे ही धीरे कहा, तथापि कोटयाल (कोतवाल) वेश में राजा ने उसे भी प्रकाश वचन के सहित सुन लिया और इस प्रकार अश्रुत पूर्व वार्ता को विचार कर वो कोतवाल बड़े आश्चर्य में आया और कहा— एं! यह क्या चोर नहीं हैं वस्तुत: जो इसने अपने मन में वा प्रगट कहा वही सत्य है? परंतु यह लालच कैसा है! ऐसी चपलता, क्या राज कर्मचारी ऐसे-ऐसे भयंकर लालच से बच सकते हैं? फिर तब क्या अनर्थ न्यून होने की संभावना हो सकती है? यदि इस समय मैं न होता तो इतर न्यायाधीश अवश्य ही घूस लेकर इसे छोड़ देते. सच कहा है कि राजा के राज्य में कुप्रबंध और नाश होने का कारण नृप का आलसी होना ही है, अस्तु! विचार करने से भी इसमें चोर के से लक्षण संपूर्णत: नहीं घटते, तथापि अभी यों ही बिना सोचे-विचारे इसे छोड़ देना भी न्याय-विरुद्ध है, तो चलो इसके पिता की भी महर्घता देखें. यह मन में निश्चय करके राजा और चोर दोनों वहां से आगे बढ़े.

इति प्रथमो निष्क: ।

★ ★

अथ द्वितीय निष्क: ।

रयतत्वं कमलानां सुपुरुषाणां परोपकारित्वं ।

असतां च निर्दयत्वं त्रिषुत्रितयस्वभावसिध्दंम (नीतिशतव्दे)।

अब उस समय की दुर्घटना क्या कही जाय, एक तो अर्धनीशीथोपरांत दो बजने का समय, दूसरे रात्रि अंधकारमय हो रही थी, परंतु लालटेनों की रोशनी कुछ-कुछ कहीं-कहीं चमचमा रही थी, स्वानरव से कान बहरे होते जाते थे, इतर बड़ा सन्नाटा छा रहा था, न कहीं आदमी, न आदम जात. केवल राजा अपने अनुचरों के साथ उसके निर्दिष्ट मार्ग होकर ब्राह्मण देवता के घर पहुंचा और युवा पुरुष ने अपने पिता को आह्वान किया परंतु उस समय शास्त्रीजी घोर निद्रा में निमग्न थे, पर कोलाहल चमत्कृत वस्तु है, हार कर मनुष्यों का रव सुन कर चौंक पड़े और साथ ही कर्ण कुहर में यह ध्वनि पहुंची कि कुमार शास्त्री बाहर आओ! बस! अब क्या पूछना था, ब्राह्मणों में क्रोध की पराकाष्ठा किंचित विशेष पूर्व समय से ही चली आई है, उसमें भी कुसमय में आह्वान के कारण क्रोध ने कुमार शास्त्री के हृदय को जाज्वल्यमान कर दिया वरन किसी प्रकार बकते-झकते बाहर आये और देखकर ऐं! यह क्या हमारे सपूत मारशास्त्रीजी हैं और नगररक्षक कोतवाल क्यों संग हैं? निदान अनेक तर्क-वितर्क के उपरांत और शास्त्रीजी के पूछने पर राजा ने सब वृतांत कह सुनाया और पूर्व-कथित द्रव्य की लालसा प्रकट की. कुमार शास्त्री क्रोध में दुर्वासा से चढ़े-बढ़े थे. यह कथा सुनकर रक्तवर्णी भूत हो गये, सच है क्रोध में चित्त-वृत्ति स्थिर नहीं रहती और इसमें अनेक व्याघात भी उपस्थित होने की संभावना है; परंतु पीछे केवल पश्चाताप ही रह जाता है. यों ही क्रोध पर तंत्र कुमार शास्त्री ने जलभुन के कहा :—

ऐ न्यायाधीश! यद्यपि यह मेरा पुत्र है, पर आज यह मर गया, यह मैं अनुमान करता हूं, क्योंकि इसने मेरी एक शिक्षा न मानी, निरंतर रात-रात भर न जाने कहां भ्रमण करता और प्रभात भये यहां आता है, वर्षों से इसकी यही दशा है, अतः पिता कर्म का साक्षी नहीं होता प्रत्युत जन्म का और यह राजा ऐसे न्यायपराण हैं कि केवल अपराधी ही को उचित दंड देते हैं. तो ऐसी अवस्था में मैं क्योंकर अपने पुत्र का प्रतिनिधि बन सकता हूं? वस्तुतः इसे अपने कुकर्म का दंड पाना ही उचित है. यदि इस विषय में कुछ मेरा गड़बड़ाध्याय राजा जान जायेंगे तो व्यर्थ मुझे भी अपने सिर एक आपत्ति लेनी पड़ेगी, अतएव इस प्रपंच में आपकी जो इच्छा हो, सो कीजिए. मुझसे कोई प्रयोजन नहीं और आपको यह अधिकार है कि इस दुष्ट को न्यायकर्ता के सन्मुख ले जाइये या छोड़ दीजिये, पर मेरे पास तो टका भी नहीं है. इस प्रकार कहते हुए कुमार शास्त्री घर में प्रवेश करके किवाड़ बंद कर निश्चित हो गए. शास्त्रीजी की यह रुखावट देख राजा बड़ा आश्चर्यित हुआ, ओहो! कुकर्म ऐसी वस्तु है कि अद्वितीय प्रिय पुत्र की पिता भी सहयोगिता स्वीकार नहीं कर सकता, प्रत्युत स्वीयकर्म दंड भोगना ही चाहता है. क्या कुमार शास्त्री घूस देकर या आप उसके दोष को ओढ़कर या निर्दोष ही बनाकर न्याय से बच न सकते हैं? या श्रमशाली राजा पर यह वृत्तांत विदित न हो, यह हो सकता है? आहा! अविचल न्याय का अद्भुत चमत्कार है. अनंतर राजा मारशास्त्री का हाथ पकड़कर ले चला, और उस समय शास्त्रीजी कि आंतरिक वेदना की सीमा न रही. कहने लगे— हा! माया जवनिकाच्छन्न असार संसार ऐसा विलक्षण है कि यहां कोई किसी का नहीं, और जो है सो भी अपने मतलब के यार हैं, हा! 'कालस्यकुटिलागतिः' देखो! खोटे दिनों में पिता भी पुत्र का त्याग करे, माता विष दे, राजा सर्वस्व हरण कर ले तो क्या आश्चर्य है, अस्तु, फेर और दूसरी शरण क्या है और क्योंकर कल्याण की आशा हो सकती है? यह सब कुछ है परंतु प्रीतिपथ ही निराला है, उसमें कभी कोई भय नहीं, तो क्यों न एक बार और भी अपने भाग्य की परीक्षा कर लें, अंत में भात्री तो मुख्य ही है. यह स्मरण करके मारशास्त्री ने न्यायाधीश से कहा, महोदय! यदि आप मेरी दशा पर एक बार पुनः अनुग्रह करें तो आशा है कि मैं शीघ्र ही संकटमुक्त हो जाऊं और आपका चिर अनुग्रहीत होऊं— अर्थात् शुभकर मोहल्ले में मेरे एक अभिन्नहृदय प्राणैकद्विधाभूत देह 'परदुःखभंजन' मित्र रहते हैं. यदि आप उनके समीप तक और श्रम स्वीकार करें तो निश्चय है कि वे मुझे अवश्य ही बंधनमुक्त कराने की चेष्टा करेंगे और यथोचित आपका भी सन्मान करेंगे.

राजा यह आश्चर्यजनक वार्त्ता सुन कुछ काल तक तो विचार वारीस मग्न हो गया और सोचने लगा कि क्या पिता-माता से भी श्रेष्ठ उत्तम कोई और संसार में है और विशेष प्रीतिभाजन हो सकता है? अस्तु! जो हो, ईश्वर की महिमा अद्भुत है, प्रेमपथ निराला है और उसका क्षय भी नहीं होता, अथ च इसके प्रताप से अपने बिगाने और बिगाने अपने बन जाते है; यदि किसी को मुख खोलने की जगह नहीं है तो इसी प्रेम-मार्ग में, इत्यादि विचार कर कहा, अच्छा चलो अब तुम्हारे मित्र की भी करतूत देख लें. यह कह कर दोनों मित्र के गृह गये. कुमारशास्त्री को अपने मित्र पर बड़ा भरोसा था, पहुंचते ही बड़े वेग से किवाड़ खड़खड़ाया और पुकारा, शीघ्र ही मित्र की आंखें खुल गयीं और विचारने लगा कि इस समय मित्र क्यों आए? और ऐसा कातर शब्द क्यों मुख से निकालते हैं; क्या कारण हैं, किंतु शीघ्रता से आकर ज्यों ही किवाड़ खोला और अति उद्वेग से कुमारशास्त्री के गले लिपटना चाहा कि इतने में राजा ने डांटा, और घुड़क कर कहा, अरे मूर्ख! यह क्या करता है? अब तो परदुःखभंजन मिश्र के कान खड़े हो गये. राजा की यह भयानक बात सुन कर उसके क्रोध की सीमा न रही और बोला,' ऐ पुररदीक! क्या तुझे तेरी मृत्यु ने घेरा है? और तू मेरा नाम, ग्राम, पराक्रम नहीं जानता, यदि तेरा दैव अनुकूल हो तो यहां से शीघ्र ही भाग जा अन्यथा ऐसा खड्ग मारूंगा कि तेरा देह अभी शिरोविहीन हो जायगा, तैंने क्या समझ कर मेरे मित्र को पकड़ा? और तेरी सामर्थ्य मेरे घर तक आने की हो गयी?;

राजा ने गंभीर भाव से कहा, 'क्यों व्यर्थ उन्माद-ग्रस्त हुआ है, शूरवीर बकते नहीं प्रत्युत अपना पौरुष दिखाते हैं; तिस पर भी तुझे राजकीय विषय में हस्त-क्षेप करने का क्या अधिकार है? क्या सभ्यतापूर्वक संभाषण भी करना नहीं सीखा, शिष्टाचार तेरे पड़ोस में भी नहीं बसा? क्या तेरी सामर्थ्य मुझे खड्ग मारने की है? यह दशा देख कर कुमार शास्त्री डरा और विचार करने से निश्चय बोध हुआ कि अब अनर्थ हुआ चाहता है. मित्र ने तो वात्सल्यपूरित बीररस के परतंत्र होकर सब बातों पर चौका ही लगाना चाहा था, परंतु तिस पर भी अभी तक इस सुयोग्य सिपाही ने हठ से मित्र को अन्यथा कुछ नहीं कहा, क्या मेरे तुल्य इनको भी अभी पकड़ ले जाना इसके आधीन नहीं है? हा कष्ट! मुझे तो अपना इतना शोच नहीं है जितना कि मित्र का है. ईश्वर! ये कोई आपत्ति में न फंसे, नहीं तो पुनः रक्षार्थ कौन बचेगा? यह सोचकर परदुःखभंजन मिश्र ने कहा, प्राणप्रिय! आपको इन राज कर्मचारी महाशय से नर्म-गर्म कहने का कोई अधिकार नहीं, यह तो राजाज्ञापालन करते हैं, और यही हम लोगों में और इनमें विशेषता है. प्रत्युत प्रजामात्र को राजा का आदेश स्वीकार करना कर्तव्य है, इसी में न्याय-रक्षा और राजभक्ति है. अतएव इन सुयोग्य महाशय से सभ्यता और नम्रतापूर्वक संभाषण करो, अन्यथा मेरी रक्षा क्योंकर होगी? क्योंकि यदि तुम मेरी जामिनी दो तो मैं इस समय छूट सकता हूं. यह हृदयंगम बचन सुनकर परदुःखभंजन मिश्र अत्यंत घबड़ाया और न्यायाधीश से यथार्थ वृत्तांत की जिज्ञासा प्रकट की. न्यायाधीश ने अविकल कथा कह सुनाई, यह सुनकर अभिन्नहृदय मित्रैकदाभिषिक्त परदुःखभंजन मिश्र ने अतिविनीत ही होकर अपने अपराध को क्षमापन पुरस्सर न्यायाधीश से कहा, मित्रवर! यदि ईश्वर सत्य है तो उसको मध्यस्थ मानकर मैं शपथपूर्वक कहता हूं कि जिस समय आप मेरे मित्र को चाहेंगे मैं स्वयं लेकर उपस्थित होऊंगा. इस प्रकार कातर वचन को राजा ने सुनकर तथास्तु कथनपूर्वक अपना मार्ग लिया और ये दोनों मित्र कंठाश्लेष करते हुए प्रसन्न हो कर अंतरगृह में पधारे.

इति द्वितीय निष्कः ।

* *

अथ तृतीयो निष्कः ।

मुग्धे धनुष्मती केयमपूर्वाऽपि च दृश्यते ।
यथा वद्धां सिचेतांसि गुणैरेवन शायकैः ॥
(शृंगार शतके)

अनंतर परदुःखभंजन मिश्र ने कहा, क्यों मित्र! क्या आपत्ति है? क्योंकर आज यह व्याघात उपस्थित हुआ! मारशास्त्री ने कहा, क्या कहूं मित्र! तुमसे क्या कुछ छिपा है? जिसके लिए संसार का सब सुख तृणवत छोड़ दिया है, आज उसी से मिलने के लिए ज्यों ही मैं कबंध डालकर प्रसादारूढ़ होना चाहता था कि त्यों ही जीवित यमदूत आकर उपस्थित हुआ. हा! इस प्रेमांबुधि में निमग्न होकर किसी स्वर्ग सुख का अनुभव नहीं होता! अरे इस नाटिका के प्रस्फुटित पुष्पों की सुगंधि त्रैलोक्य करके व्याप रही है. इस मार्ग में कोई कंटक का नाम तक नहीं है. प्रियवर! उसके प्रेमियों का मत संसार से निराला है, और इसके आनंद का अनुभव बिना प्राणपण किये बिना कौन कर सकता है !

क्या ऐसे निर्मय मार्गगामियों को क्लेश समूह पराभव कर सकते हैं? क्या सच्चा प्रेमी भी प्रीतिपाशबद्ध हो कर वध से डरता है? क्या उसके लिए प्रीतिपीयूष देवामृत से कम है? अहह! आज उसी का पूर्ण आवेश और उद्वेग का उद्गार है कि कुछ भी मय और कष्ट विदित नहीं होता. कोई भी स्वीकार कर सकता है कि संसार में कोई अमर तथा सदा एक भाव में कभी नहीं रह सकता, परंतु प्रायः प्रेमामृत सेवी आकल्पजीवित और आनंदित ही रहते हैं, सत्य है, संसार एक ओर और प्रीत पात्र एक ओर है, आहा! वह प्रेममाधुरी मूर्ति नयनों के आगे नृत्य कर रही है, भला! कभी भुलाये से भूल भी सकती है जिसके क्षणिक वियोग में असंख्य यमयातना का अनुभव होता है, जिसके मिलाप में साम्राज्य महेंद्र पदवी तुच्छ जंचती है, उसके बिना चंचल चित्त को क्षणिक विश्राम भी नहीं मिलने पाता. अहा, वह अलौकिक सौंदर्यप्रभा, वह हृदयबाधक प्रलंब केशपास, वह प्रणय कोपकाषायितांग कौतुक, वह अदृष्टपूर्व हावभाव विलास समूह, वह मनमानस सृष्टि की सदैव पूर्णचंद्र-प्रभा, वह विशाल भाल, वह भृकुटि कुटिल शरजाल, वो तीक्ष्ण आश्रवणावलंबित नेत्र युगल, वह सर्वदा प्रसन्न चरणारविंद, वो मधुर कोकिल स्वर, वो पीनोन्नत कुच कलश, वो मुष्ठि परिमित लंक, वो मत्तमतंगगमन, वो हंसपद विन्यास, अवलोकन मात्र ही में किसे नहीं निरीह कर देता है! उसका एक बार भी दर्शन करके किस भावुक सहृदय का कठोर हृदय शतधा विदीर्ण नहीं हो जाता? क्या इसके आगे मुझे अब और कोई दुःख व्याप सकता है? क्या उसके बिना मैं किसी प्रकार भी जीवित रह सकता हूं? तो फिर मुझे मरने से डर ही क्या है? प्रियवर ईश्वर साक्षी है! मैं अभी तक केवल उसके केवल दर्शन मात्र ही का धनी हूं, इतर अभिलाषा तो इधर अंबुधि अवगाहन ही कर रही है. हा, अब क्या आशा आशा ही मात्र रह जायगी? अस्तु न सही! मैं केवल इतने ही में सर्वथा प्रसन्न हूं. ऐसा भाग्य भी तो हो ले! इतना कहां का थोड़ा है? तो अब अधिक विलंब का क्या प्रयोजन है? मित्र यदि तुम्हारी अनुमति होय तो मैं इस समय प्राणप्रिया से जाकर अंतिम भेंट कर आऊं.

परदुःखभंजन मिश्र उदास होकर बोले, हा! प्रियवर! तुम्हारी यह व्यवस्था देख औ सुनके तो मेरा चित्त ही इस समय विज्ञिप्त-सा हो गया, मुझे तो अब इस समय कुछ समझ ही नहीं पड़ता, क्या कहूं? यदि निषेध करूं तो भी नहीं बनता, क्योंकि तुम्हारा चित्त इस समय उधर पूर्ण आसक्त हो रहा है. किंतु यदि तुम्हें जाने दूं तौ भी नहीं ठीक जंचता! यदि तुम गये और पुनः ऐसी किसी अन्य आपत्ति में पड़े तो क्या होगा?

मारशास्त्री ने साहस से कहा, सुमोदर्क! संसार में प्राण जाने से बढ़ कर और कोई आपत्ति नहीं है, और आशा कम है, प्रत्युत जब मेरे भाग्य में यही लिखा है तो इससे श्रेष्ठतम दुःख और मार्ग में क्या होगा? पर दुःखभंजन मिश्र ने मंद स्वर से कहा, अस्तु, जैसी इच्छा! जाओ! इस समय तुम्हें ईश्वर के समर्पण करता हूं, वही सब अवस्था में तुम्हारी रक्षा करेगा, परंतु तुम शीघ्र ही आकर मुझे संतुष्ट करना, मेरा प्राण तुम्ही में लगा रहेगा. मारशास्त्री प्रसन्नता से कहने लगे, प्रिय मित्र! कुछ संशय मत करना, मैं शीघ्र ही आऊंगा, यह कह कर मारशास्त्री निज मित्र से विदा हुए. उन्हें निश्चय था कि जब मेरी बातों और मेरे चरित्रों का सुनने और देखने वाला यहां कौन बैठा है? इसलिए निःशंक होकर गये.

इति तृतीय निष्कः।

★ ★

अथ चतुर्थो निष्कः।

एतत्कामफलं लोके यद्द्वयोरेकचित्तता ।
अन्यचित्तकृते कामे शवयोरिव संगमः ॥१॥

(श्रृंगार शतके)

अहू! क्या ही अंधकारमय मार्ग हो रहा है, हाथ से हाथ नहीं सूझता, चारों ओर सूनसान निविड़ तमाच्छादित मार्ग हो रहा है, और इस समय यहां मेरा कौन अनुसंधान ले सकता है? जो हो! अब तो मैं अपने लक्ष्य पर आ ही गया, परंतु उधर प्यारी विचारी अभी तक मेरी बाट देखती होगी, क्योंकि दीप प्रज्ज्वलित-सा दृष्टिगोचर हो रहा है, खिड़की भी खुली है इत्यादि. चारों ओर खूब देख-भाल कर मारशास्त्री कबंध फेंक ऊपर चढ़ गया, और विचारने लगा कि अब कुछ भय नहीं. मैं तो ऊपर आ ही गया, अब खिड़की बंद कर प्राणप्रिया के पास चलूं, परंतु हा कष्ट! कदाचित प्यारी मुझ अधम के आने की प्रत्याशा करते-करते शयन करने लगी हो तो कैसे मैं उसकी सुख-नींद भंग कर सकूंगा. यद्यपि अभिन्नहृदया के इष्टदर्शन मात्र से सब दुःख समूह विस्मरण हो गया, परंतु मन की तरंगों में बहते-बहते फिर सोच हो जाता है कि क्या यह मोहिनी मूर्ति कल से दृष्टिपथगामिनी न होगी? यह सुख अब स्वप्नप्राय हो जायगा? हा, इस क्षणभंगुर संसार की दृष्टि मुझ पर ही थी? दैवेच्छा, यहां राजा के घर में न्याय-अन्याय कुछ भी हो परंतु ईश्वर तो बड़ा न्यायपरायण और दयालु है; जिसकी कोई रक्षा नहीं करता, उसकी जगदीश्वर रक्षा करता है, क्या मैंने अन्याय या कुकर्म किया है जो दंडभागी होऊंगा. राजा चाहे जो कुछ करे परंतु क्या ईश्वर भी मुझे सुख न देगा? इस प्रकार अनेक भांति करुणा का सिंधु उमड़ते-उमड़ते ऐसा प्रेमाश्रु-वर्षण भया कि प्यारी का मुखारविंद नितरां आर्द्र हो गया और निद्रा भंग हुई. परंतु ज्यों ही कि उस प्रेमपरायणा सुंदरी की दृष्टि प्राणेश्वर पर पड़ी कि उसकी अदृष्ट पूर्व दशा देख कर अबला का हृदय सहस्र विदीर्ण हो गया, एक बार यह अकस्मात आश्चर्य देख कर ललना नितांत घबड़ा गयी, और बड़ी आतुरता से उठ कर अपने प्रीतम के गले में लिपट नयन-जल-कण बरसाने लगी. कुछ काल के उपरांत किंचित धैर्य धारण कर पूछने लगी कि प्यारे! यह क्या? कैसी तुम्हारी दशा है, और इसका हेतु क्या है? क्या मैं तुम्हारी बाट देखते-देखते सो गयी, इसी अपराध से तो इतने रुष्ट नहीं हो गये? या आज तुम इतनी देर कर आए अतः मैं बुरा न मानूं, इसी हेतु उदास हो रहे हो या मुझ नीचाशया से भूले कोई तुम्हारा अपराध बन पड़ा है जो बोलते नहीं, क्या उपद्रव है? और तुम्हारा हृदय ऐसे वेग से क्यों धड़क रहा है और यह प्रसन्नानन मलिन क्यों है, अरे! कहो तो सही, मेरा प्राण घबड़ाहट से बिकल हो रहा है. हा! सत्य है! सुख-दुःख की समावस्था ऐसी ही होती है, और इन विचारे प्रेमियों को क्या कहा जाय? एक प्रान दो देह. पर अब बिना सत्य हाल कहे छुटकारा कहां है? और कहने से प्यारी के क्लेश की सीमा भी नहीं रहेगी परंतु मित्र छोड़ के अपना दुःख-सुख कहा भी किससे जाय? जो कुछ हो पर अब तो सर्वतोभाव ठीक-ठीक व्यवस्थिति कहना ही उत्तम है. यही विचार स्थिर करके मारशास्त्री अपना इतिवृत्त कह के बोले, प्राणप्यारी अब मैं तुम्हें ईश्वर के समर्पण करता हूं.

हा कष्ट! इतना सुनते ही अब प्यारी के कष्ट की सीमा न रही, बस अब प्रणयवत्सला के हृदय के शोक को कौन सहज में कह सकता है? प्यारी भीरुमिनी का मन आकाश-पाताल गमन करने लगा. हा! क्या एक बार ही ऐसा वज्राघात? अरे क्या आज ही कल्पांत आ गया? अब भी संसार शून्य होने में कुछ विलंब है, हा! आज आनंद सरिता सूख गयी, और प्रेमलता मुरझा गयी, प्यारे! क्या अब तुम संसार सूना कर चले, हा बैरी विधाता! मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था जो मुझ-सी अबला पर ऐसा प्रबल अन्याय, धिक दुष्ट अन्यायी राजा! अरे ऐसा दारुण दंड! हे पृथ्वी! अब तू क्यों नहीं पाताल-गामिनी होती? हे बंधुगण कब सहाय होगे? क्यों प्रीतम! क्या अब ये मधुर वचन कल से मुझे नहीं सुनाई देंगे? क्या यह सब हास-परिहास, क्रीड़ा-कौतुक स्वप्नवत् हो जायगा, अथवा यह अमोघ दर्शन दुर्लभ हो जायेंगे? हा हंत! तो फिर ऐसे जीवन पर धिक्कार है, अच्छा प्यारे! अब मैं भी तुम्हारी ही अनुगामिनी होऊंगी, यदि जगदीश्वर न्यायपरायण, और वेद-पुराण सत्य हैं, तथा प्रेममार्ग सुसंपन्न एवं सुसंस्कृत है, और मेरा अंतःकरण प्रेमपूर्वक निष्कपट भाव से तुमारे चरण में अनुरक्त है, तो कभी भी दासी तुम्हारा संग न छोड़ेगी, और भलीभांति यहां न कर सकी तो परलोक ही में मन लगा के सेवा करेगी, एवम् अन्य जन्म में भी तुम्हारी ही अधिकारिणी होगी. हा! आज यह विपत्ति! वाह रे समय की खूबी, ऐसा अंधेर, यह आश्चर्य! इतना अनर्थ! एक मात्र अन्याय अन्यथा ही दंड विग्रह! व्यर्थ विचार! हा! प्यारे! क्या सचमुच अब तुम मुझ अभागिनी से नहीं मिलोगे? आज प्यारे का परम विछोह ऐसा हृदय-दाहक दारुण दावानल तन तूल तापन कर रहा

है जो अनिर्वचनीय है. हा! क्या करूं! कैसे इस आतुर, आकुल मन को शमन करूं.

इस प्रकार उस परम सुंदरी की व्यथा अत्यंत बढ़ गयी, और उधर मारशास्त्री का हाल तो अकथनीय ही था और अब समय भी आ गया, इससे विदा होने का भी अनुरोध किया, परंतु वह पतिप्रेमपरायणा क्या कर सकती थी? उसका अपने माता-पिता पर कुछ अधिकार भी न था, न स्वतः स्वतंत्र ही थी, जो अनुगामिनी होती और भागने पर भी परदुःखभंजन मिश्र पर पूरी आपत्ति आ जाती एवम् सोच-विचार युक्त प्रमदा ने अपना कर्म ठीक तथा ईश्वर पर भरोसा रख विदा करके कहा—अच्छा प्यारे! अब मैं तुम्हें ईश्वर को सौंपती हूं, और दंड स्थल में तमिस्रभिसारिका की भांति कृष्ण परिच्छद धारण करके मैं आऊंगी और तुमारे शत्रुओं का बध करके तुम्हारी अनुचरी होऊंगी, और तुम भी मेरी बाट देखते रहना—हा! लज्जा निगोड़ी क्या करेगी? उपहास-परिहास का अब क्या आक्षेप है? बंधुवर्गों का क्या डर है? और अब राजा ही का क्या भय है? जब प्राण ही चला, तब शरीर रह के क्या करेगा? और फिर इस संसार से ही क्या प्रयोजन है? प्यारे, मन की वृत्ति विचित्र है. तुमसे न्यारी होती हूं; और मुझे ठीक-ठीक अनुमान होता है कि ईश्वर निरापराधियों की रक्षा अवश्य करेगा और तुम कुशलपूर्वक चिरंजीवी होगे. इधर अब मारशास्त्री भी प्यारी से विदा हो कर चले आते हैं और उनकी सब लगी-लगाई आशाएं भी नष्टप्राय हुई. इसी प्रकार सोच-विचार करते दो घड़ी रात शेष रहने पर मित्र के गृह आये और मित्र ने मित्र के सकुशल लौट आने के लिए हर्ष प्रकाश किया, और कल कालकूट ग्रह है, यह विचार कर सारे शोक के देहानुसंधान जाता रहा पर किसी प्रकार से मारशास्त्री को समझा-बुझा कर शयन कराया. परंतु यह क्या था? प्रेमासवप्रमाद मत्त मानव को कौन-सा शोक होता है? अब तो प्यारी भी संग चलेगी और मेरे रोके से वह अब भी नहीं रुकेगी, अतः परलोक में भेंट अवश्य होगी. फिर क्षति क्या है, प्रत्युत निद्रा का भी आक्रमण संबोधनपूर्वक होता ही है और यह भी प्राकृतिक नियम है कि भवितव्य का भाव मनुष्य के मुख पर स्वयं पूर्व ही लक्षित हो जाता है.

मारशास्त्री की प्रकृति प्रपंच से अच्छी संभावना है, तो आश्चर्य क्या है. निदान शयन करते ही मारशास्त्री तो निद्रित हुए और उस अवस्था में सब दुःख-सुख समान हो गया.

इति चतुर्थो निष्कः।

* *

अथ पंचम निष्कः।

न सभां प्रविशेत्प्राज्ञः सभ्यदोषाननुस्मरन्,
अब्रुवन् विब्रुवन वापि नरोभवति किल्विषी
(भगवते) ॥१॥

अहा, प्रभात काल की शोभा भी अतुल है. अंशुमाली भगवान भास्कर उदयाचल चूड़ावलंबी भये, संसारी जीव यावत् व्यापार में प्रवृत्त हुए. क्या इस समय प्रजा-पति (राजा) के निद्रा का समय है? अतएव बंदी जनों से संस्तूयमान महाराजाधिराज जागृत हुए एवं आवश्यकीय नित्य कृत्य समापन करके ईश्वराभिवादन तथा दानाध्ययनादि से निवृत्त होकर राजमंदिर में अतीवोन्नत सिंहासनाधिरूढ़ हुए. प्रहर मात्र दिन चढ़ गया था कि मंत्री आदि राज कर्मचारी अपने-अपने कार्यों की उत्कृष्टता दिखाने के लिए प्रथम ही से स्थित थे. सकल सभासद, प्रजा गण समय-समय पर उपस्थित हो-हो कर नृपति को प्रणाम कर के उचित स्थान पर विराजमान होने लगे और प्रतिक्षण के भाव जानने के लिए सर्वसाधारण प्रजा समूह की दृष्टि महाराज के सन्मुख लग रही थी, क्या ऐसे सुसंपन्न सभ्यों का विचार झूठा होता है? एकाएक सभास्थ लोगों के मन का भाव बदल गया कि आज भूपतीश्वर ऐसे खिन्नमना अपि च गूढ़ाभिप्रायग्रस्त से क्यों हो रहे हैं? परंतु वस्तुतः यह कौन निश्चय करके जान सकता था कि आज वसुंधरेश्वर को स्वीयश्रम का पारितोषिक परमेश्वर ने प्रसन्न होकर दिया है, और यही नरेश विचार भी रहे थे.

परंतु उस सर्व शक्तिमान जगदीश्वर की कृपा का उन्हीं को असंख्य धन्यवाद देना उचित है, जिसकी प्रेरणा ही से मुझे अन्वेषण करते-करते एक न एक अपूर्व न्याय-पथ मिल ही तो जाता है. अहह!! जो मैं इतना यत्न न करता और दोनों स्थानों में छिपकर उन लोगों का गुप्त तात्पर्य और मारशास्त्री का समस्त भेद न जानता एवं प्रिया-प्रियतम का अलौकिक सौहार्द्र का मर्म स्वयं न देखता, या उन्हीं दूतों की बातों पर ही केवल विश्वास करता तो आज अवश्य निरपराधी व्यक्ति का प्राण जाता. क्या आज मुझे इस न्यायसूत्र का पारिभाषिक अर्थ नहीं ज्ञात भया कि प्राणदंड सर्वथा अनुचित और दारुण दंड है? इसमें कितने निरपराधी जीवों का अमूल्य प्राण निम्न कर्मचारियों की लीला से जाया करता है. यदि कोई बास्तव में वधिक भी हो तो उसे भी प्राणदंड देना सर्वथा अयोग्य और सभ्य समाज में दूषित है क्योंकि मनुष्य की प्रकृति वधादि व्यभिचार करने के समय सम्यक् तमोगुण-वेष्ठित हो जाती है. उस समय इस दुष्कर्म के कारण हमारा भी यही प्राण जायगा, ऐसी अवस्था में उस अपराधी को प्राणदंड देने से वध-व्यापार किसी प्रकार भी कम नहीं हो सकता; क्योंकि प्राणदंड क्षणिक दुःख है और इसमें शिक्षालाभ तमोगुण के प्राकट्य में हो ही नहीं सकता, इसलिए यदि ऐसे-ऐसे घोर पापियों को सकठिन परिश्रम कारागृह निरोध हो तो प्रजासंख्या भी कम न होय, और अहर्निशि उसका दृष्टांत प्रत्यक्ष रहने से औरों को भय बाहुल्य द्वारा ऐसे घृणित कर्म करने के लिए तमोगुण की उत्पत्ति भी कम हो, तथा और फिर ऐसे-ऐसे घोर अभिचार की संख्या भी कम हो जाय, प्रत्युत उस अवस्था में उन्हीं को (जिन्होंने यह लोपलीला रची हो) उचित दंड देने का अवसर मिल सकता है, और यदि प्राणवध के अनंतर उसका (जिसका प्राणबध हुआ है) दोष झूठा ठहरे तो राजा कलंक का तुर्रा धारण करेगा और केवल पश्चाताप के और क्या

(आगे पृष्ठ ९० पर)

कृतियां

एक कहानी-संग्रह

'भरतमुनि के बाद'

लेखक : मणि मधुकर; प्रकाशक : देवनागर प्रकाशन, जयपुर; मूल्य : दस रुपये.

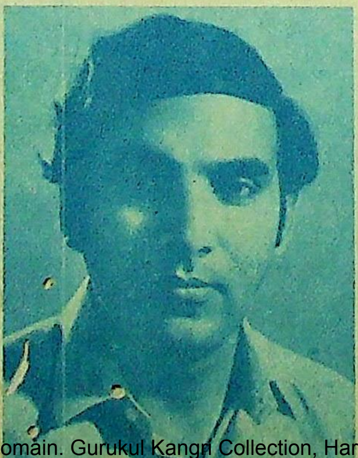
मणि मधुकर की कहानियां पढ़ते हुए मुझे अक्सर किसी शास्त्रीय अथवा लोकराग से जुड़ी हुई धुनों को 'सुनने' का अंतरंग सुख मिलता रहा है. और फिर लगा है कि संपूर्ण स्थितियों के आरोह-अवरोह में एक विशिष्ट संगति है. **'भरतमुनि के बाद'** की पंद्रह कहानियां, जहां जीवन की समग्र चेतना का निर्वाह करने वाली कुछ रागिनियों की सृष्टि करती हैं, वहीं दूसरी ओर उनमें यथार्थ को निर्ममता पूर्वक कुरेद कर देखने वाली तीव्र दृष्टि से भी साक्षात्कार होता है.

अनुभव की एक बड़ी दुनिया है लेखक के पास . उसके कथा-चरित्र बहुत जाने-पहचाने हैं, पर उनके भीतर जो कुछ 'अनदेखा' रह गया है, उसीको लेखक ने दर्शाया है. मणि मधुकर के पहले कहानी संग्रह **'हवा में अकेले'** की चर्चा करते हुए कहा गया था कि उनकी कहानियां हथेलियों के बीच से हवा के झोंके की मानिंद गुजर कर नहीं रह जातीं, वे पाठकों को एक जलते-तपते रेगिस्तान में छोड़ देती हैं, जहां वह अपने इर्द-गिर्द मंडराते प्रेतों और महाराक्षसों को खुली आंखों से देख और पहचान ही नहीं सकता, उनसे संघर्ष भी कर सकता है. . .वह उन कहानियों को अपने सामने रख कर एक खुला संवाद कर सकता है और अपने आपको उन कहानियों के किसी एक पात्र के व्यक्तित्व में समाहित होते देख सकता है.

रेगिस्तान की यंत्रणा-भरी जिंदगी **'भरतमुनि के बाद'** में भी है, किंतु इसमें महानगरीय विडंबनाओं को जीने वाले थके-हारे, टूटे हुए और स्वयं की सत्ता से दुःखी लोग भी हैं, जो अपने-अपने ढंग से आसपास के माहौल की निरर्थकता में अर्थ की, साबुत बची हुई आकांक्षाओं की तलाश करते हैं. सिराज, फिलिप, मौलो, सईदा, हेमा, हाफिज, ताराचंद, विनोद. . . शहरों के मध्यवर्गीय गौरव को ढोते हुए — खिन्न, खुश, अकेले और अधीर! इस किस्म के चरित्रगत अंकन एवं मानसिकता में पैठ की दृष्टि से **'दस्यु', 'रणक्षेत्र', 'भरत मुनि के बाद'** और **'उत्तरार्ध'** कहानियां उल्लेखनीय हैं.

यह आकस्मिक नहीं है कि संग्रह के अधिकांश कथा– संदर्भों का साक्षी 'मैं' है, जो समूचे द्वंद्व से गुजरता हुआ निरंतर आत्मान्वेषण के लिए सजग है. उसके चारों ओर झूठे, अहंग्रस्त, प्रतिक्रियावादी, ढोंगी और विभिन्न अलंकरणों से विभूषित 'महाजन' हैं. 'मैं' पानी में रह कर मगरमच्छ के छद्म वैभव और क्रूर सौंदर्य का शानदार वर्णन करता है. **'हालत'** में तो वह उसके पेट में पहुंच जाता है, पर निराश नहीं है. एक अच्छे भविष्य की प्रतीक्षा उसे बनी हुई है: नानी कहानी सुनाया करती थी कि एक राजकुमार जब मगरमच्छ के पेट में चला गया तो उसने चाकू से उसकी आंतें चीर डालीं और बाहर निकल आया. . . मेरी जेब में न चाकू है, न खंजर , बिल्कुल निहत्था हूं. अपने निहत्थेपन को पहचानता हूं, इसलिए अब नाखून बढ़ा रहा हूं. मुक्ति की आकांक्षा मन में है.

मणि मधुकर



चूंकि लोकधर्मी रचना-परंपरा से मणि मधुकर का घनिष्ठ परिचय है, इसलिए फंतासी के विविध रूप उनकी कहानियों में मिलते हैं. एक सहज, सीधी लय को अचानक 'स्वराघात' दे कर वह किसी और ही लोक में पहुंचा देते हैं और इस तरह का रूपांतर या यथार्थ का अतिक्रमण मूल अभिप्राय को अधिक व्यापकता प्रदान कर देता है. **'भुजंग', 'बैताल कथा'** और **'सुरंग'** में मानवीय यातना के भुतहे, अंधेरे, सीलन-भरे प्रसंगों की पड़ताल गहरे अर्थ से संपृक्त है.

'उजाड़ और अधमरे' संग्रह की सबसे सशक्त कहानी है, जिसमें बाड़मेर-जैसलमेर के सीमावर्ती क्षेत्र की युद्धकालीन स्थितियों का चित्रण है. फौजी चेहरों की जमात और रेत के बदलते हुए रंग! बाऊ का करारा-दबंग व्यक्तित्व और स्त्री-सुलभ दुर्बलताओं में प्यार की बलवती इच्छा से आक्रांता दाखां! धनसिंह, हमीद, बस्ती के दूसरे लोग और तमाम दुर्घटनाओं में शामिल 'मैं'—वाकई यह कहानी युद्धविरोधी जन चेतना का एक मार्मिक दस्तावेज है. इसी तरह सैद्धांतिक व्याख्याओं से हट कर, वर्ग-संघर्ष और शोषण को सही धरातल पर रेखांकित करने वाली कहानी है-- **'मरी हुई पहचान'**, जो सामाजिक संबंधों के खोखलेपन को भी उजागर करती है.

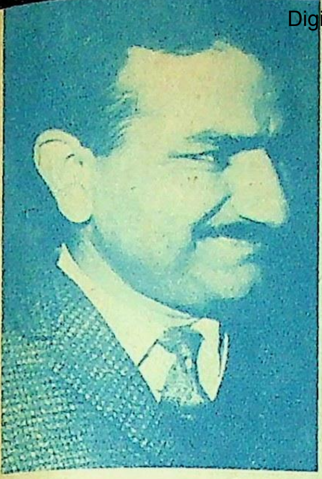
□ **इला सरकार**

एक उपन्यास

'दूसरी तरफ'

लेखक : महेन्द्र भल्ला; प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली, पृष्ठ ३२६, मूल्य : २५ रुपये

'दूसरी तरफ' भारतीय युवक 'केवल' की कहानी है, जो भारत में दो वर्ष तक बेरोजगारी से क्षुब्ध हो कर मन में अनेक आकांक्षाएं लिये किसी तरह इंग्लैंड पहुंचता है और प्रारंभ में वहां की हर चीज



महेंद्र भल्ला

से बहुत प्रभावित होता है — चाहे वहां की साफ-सुथरी सड़कें हों, स्वस्थ लड़कियां हों, हरी घास के लॉन हों या शाइस्तगी से कार्यरत क्यू के अभ्यस्त लोग हों. पर फिर धीरे-धीरे केवल का यह आकर्षण टूटता है, जब उसे पता लगता है कि उसे 'रंगीन' समझा जाता है और इसलिए वह घृणा का शिकार है, दूसरे दर्जे का नागरिक है और कहीं भी पीटा जा सकता है. बस यह आतंक उसके जीवन में जहर घोलने के लिए बहुत होता है, और आतंक का यह जहर सभी 'रंगीन' लोग पी कर जिंदा-मुर्दा हैं, पर अपनी लाशें ढो कर भी वहीं रहने को विवश हैं, क्योंकि उन्हें व उनके परिवार को पैसा चाहिए जो इंग्लैंड में ही मिल सकता है.

यूं उपन्यास का मुख्य पात्र केवल है, जिसके इर्द-गिर्द कहानी घूमती है, पर निश्चय ही अन्य पात्रों जैसे सूजन, विनी, योग, मुरारी, ब्रुक्स आदि का जीवंत चित्रण लेखक ने किया है तथा जिनके द्वारा लेखक कहानी को आगे बढ़ाने और अपनी बात को स्पष्ट करने में सफल हुआ है. कथानक के प्रवाह के साथ भारतवासियों और ब्रिटेनवासियों, उनके रहन-सहन, रख-रखाव और चरित्र पर भारत और ब्रिटेन पर समुचित टिप्पणियों ने उपन्यास में रोचकता ला दी है.

समूचा उपन्यास मर्मस्पर्शी घटनाओं का समूह लगता है, जो इधर-उधर बिखरी पड़ी हैं. योग का दिल्ली के बारे में रस ले कर व्यग्रता से पूछताछ करना, मुरारी का चुनाव में हार जाने और दूसरे रंगीनों की तरह पिटने के बाद, 'अंग्रेज किसी के नहीं होते' स्वीकारना, केवल का हार कर कारखाने, पोस्ट आफिस और स्टोर की नौकरी स्वीकारना और अंततः अपने को रंगीन मान लेना, बलवीर के नये आवास की पार्टी और पार्टी के बाद का आतंक , सूजन की परिवार के बोझ से छटपटाहट, बस में बैठी नन्हीं लूसी और उसकी मम्मी की बातचीत, ब्रुक्स के लिए अपमान पी कर भी अखबार लाता केवल, वैंडी के घर से परास्त हो कर खंबे से मुक्का मारता केवल आदि अनेक स्थल हैं, जो दिल में कहीं गहरे बैठ गये लगते हैं.

लेखक की शैली अत्यंत भावपूर्ण और विशिष्ट रही है. संवेदना से पूर्ण अति भावुक क्षणों में जब तब केवल का दिल्ली के अपने मित्र कैलाश तथा लिवरपूल में अपनी मित्र सूजन को संबोधन करना अपना विशिष्ट प्रभाव डालता है.

इस तरह एक मर्मस्पर्शी उपन्यास है **'दूसरी तरफ'** जो उन सभी भारतीयों को, जो विदेशों को स्वर्ग समझते हैं, उनके काल्पनिक स्वर्ग से यथार्थ की धरती पर ले आता प्रतीत होता है, तथा जिस उपन्यास में 'रंगीन' होने की पीड़ा भोगते प्रवासी भारतीयों का स्पष्ट और सफल चित्रण हुआ है.

☐ **विजय चतुर्वेदी**

'मुक्तकंठ' का कहानी-विशेषांक

पत्रिकाओं की कुकुरमुत्ता बाढ़ में एक लघु पत्रिका कोई खास अहमियत नहीं रखती. इसी भीड़ के बीच एक साधारण-सा नाम है— **'मुक्तकंठ'**. शंकर दयाल सिंह द्वारा संपादित इस मासिक पत्रिका ने अपनी अल्पायु में ही जिस तरह साहित्यिक मानदंड स्थापित किये, वे हमें चौंकाते ही नहीं , बल्कि लघु पत्रिकाओं से लोगों की टूटती आस्था को जोड़ते भी हैं. पत्रिका का जून १९७६ का 'कहानी विशेषांक' इसी बात का परिचायक है. विशेषांक में कुल मिला कर नौ कहानियां, दो निबंध और एक लंबी समीक्षा है.

अंक की सभी कहानियां आम आदमी से प्रतिबद्ध और उसी के संघर्ष को सशक्त रूप से चित्रित करती हैं. इन सभी कहानियों के पात्र एक गहन मानवीय संवेदना की तलाश में भटक रहे हैं. उन सभी का संघर्ष मनुष्य के रूप में एक सहज जिंदगी जीने का संघर्ष है. अपने आस-पास का व्यूह तोड़ने के लिए वे कटिबद्ध हैं.

बसंत कुमार की कहानी **'मोहभंग'** के माथुर साहब, मोंगा की कहानी **'राव'** के मि. शर्मा, प्रदीप पंकज की कहानी **'ठूंठ गुलमोहर'** का 'वह' और कुलवंत सिंह कोछड़ की कहानी **'बिका हुआ दर्द'** की चंपा ऐसे पात्र हैं, जो सामाजिक, नैतिक अवमूल्यन और मानवीय असंवेदना के शिकार हैं. शंकर दयाल सिंह, देवेंद्र कुमार, बिंदु सिन्हा, और पुष्प लता कश्यप की कहानियां भी इसी गहन दर्द को चित्रित करती हैं.

डॉ. विनय ने अपने निबंध **'कथा-नायक सामान्यजन और प्रगतिशीलता की धारणा'** में **'उत्तरार्ध'** में प्रकाशित फिडेल कास्त्रो का संदर्भ देते हुए सामाजिक क्रांति में लेखकीय दायित्व का प्रश्न उठाया है. अजित कुमार ने अपने निबंध **'कहानी की चर्चा पर एक चर्चा'** में आजकल होने वाली कहानी गोष्ठियों के कई द्वंद्वग्रस्त पहलुओं को उठाया है.

विशेषांक हमारी आज की कहानी-यात्रा के वर्तमान पड़ाव को दर्शाता है और जीवन तथा साहित्य में तेजी से हो रहे परिवर्तन का भी जीवंत चित्रण करता है.

☐ **त्रिवेणी प्रसाद**

गोष्ठी-रपट

समांतर साहित्य और सामान्य जन : एक विचार-गोष्ठी

समांतर कथा-मंच के तत्वावधान में पिछले दिनों कलकत्ता के 'जन-संसार सभागार' में 'समांतर साहित्य और सामान्य जन' विषय पर एक विचार-गोष्ठी का आयोजन हुआ. यह आयोजन इस महानगर के सांस्कृतिक मंच पर एक नया और महत्वपूर्ण आयोजन था, जिसमें हिंदी, बंगला, उड़िया, मैथिली तथा असमिया के लेखकों ने उत्साह के साथ भाग लिया. कपिल आर्य द्वारा आयोजित इस गोष्ठी की अध्यक्षता सुप्रसिद्ध लेखक श्री समरेश बसु ने की.

कपिल आर्य ने अपने संयोजकीय वक्तव्य में समांतर साहित्य के विविध पक्षों की विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की. उन्होंने कहा कि समांतर साहित्य सामयिक सच्चाइयों का एक स्पष्ट और व्यापक रूप पेश करता है तथा देश और उसकी समस्याओं को ठीक-ठीक समझने का सबसे बड़ा माध्यम सामान्य जन को ही मानता है.

डॉ. ईश्वरीप्रसाद तिवारी ने परिचर्चा में भाग लेते हुए कहा कि समांतर लेखन हिंदी साहित्य की नवीनतम धारा है. इस धारा से जुड़े लेखकों ने कई समांतर कहानियां, उपन्यास और नाटक लिखे हैं, जिन्हें सहज ही सर्जनात्मक उपलब्धियों में शुमार किया जा सकता है. लेकिन उससे भी बड़ी बात तो यह है कि समांतर लेखन अपनी प्रवृत्तियों के आधार पर सामाजिक बदलाव की भूमिका तैयार कर रहा है.

असमिया लेखक कुलनाथ गगोई ने कहा कि समांतर साहित्य सामाजिक एवं आर्थिक वैषम्य तथा जन-साधारण की पीड़ा और संघर्ष का दस्तावेज प्रस्तुत करता है. इसलिए मेरे विचार से यह प्रगतिशील चेतना से संपन्न मानवतावादी लेखन का ही प्रतिरूप है.

डॉ. रामप्रीत उपाध्याय की दृष्टि में आम आदमी को मूल कथ्य बना कर रचना करने की प्रवृत्ति हिंदी लेखकों के बीच आजादी के बाद ही शुरू हो गयी थी, किंतु यह बात और है कि समांतर साहित्य के माध्यम से ही सामान्य जन विषयक लेखन एक सक्रिय रचनात्मक आंदोलन का आकार ग्रहण कर सका. सच तो यह है कि बंगला साहित्य में भी जन-साधारण को ले कर प्रचुर मात्रा में लेखन हुआ है, और कलकत्ता के कुछेक हिंदी युवा लेखकों ने भी इस दिशा में सार्थक पहल की है.

अनय ने समांतर साहित्य को एक स्थापित आंदोलन तथा आम आदमी का लेखन मानते हुए कहा कि समांतर कहानियों में वर्तमान जन-जीवन के संकट को प्रभावोत्पादक तरीके से रेखांकित किया जा रहा है, किंतु अभी समांतर को दृष्टि की तलाश है.

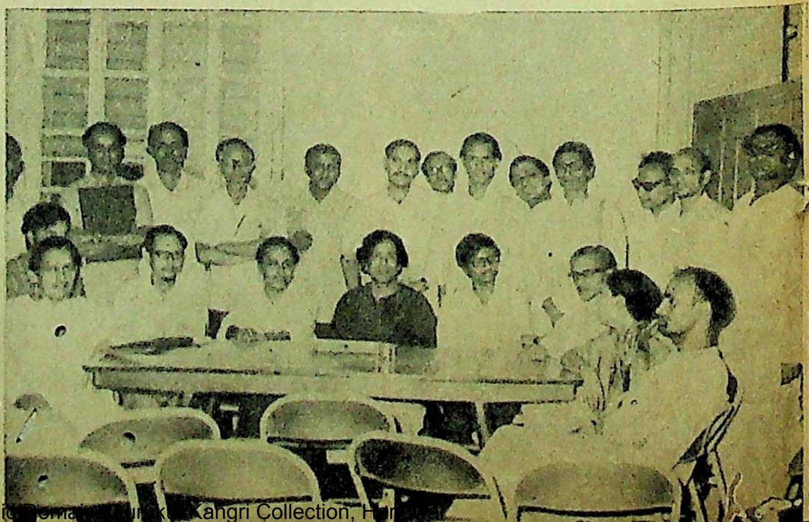
मैथिली के युवा कथाकार रघुवीर राकेश ने अपने लिखित निबंध में इधर की मैथिली-कहानियों का उल्लेख करते हुए उनमें समांतर वैचारिकता को रेखांकित किया तथा इसकी सार्थकता के प्रति अपनी आस्था व्यक्त की.

अतिथि-वक्ता के रूप में बंगला के कृती कथाकार सुनील गंगोपाध्याय ने अपने वक्तव्य में कहा कि साहित्य के क्षेत्र में फार्मूलाबद्ध लेखन और वैचारिक पक्षधरता की अपेक्षा मुक्त चिंतन और निरंतर लेखन श्रेयस्कर है.

श्रीनिवास शर्मा ने बताया कि सामान्य जन को ले कर लिखी गयी कहानियों को गौर से देखने के बाद यह तथ्य साफ उजागर हो जाता है कि समांतर लेखन एक सुचिंतित विचार-धारा के तहत कार्यरत है. जीवन के जिन मुद्दों को रचना के माध्यम से समांतर लेखक उठा रहे हैं, वे निस्संदेह समकालीन मुद्दे हैं, जिनसे हमारा आज का जीवन प्रभावित है.

उड़िया कथाकार श्री कंडुरी दास ने अपने पठित निबंध में बताया कि लेखक और आम अदमी के बीच कोई फासला नहीं होता, क्योंकि लेखक भी उन्हीं के बीच का एक आदमी होता है, जिसके साथ जिंदगी जीने की वे सब बुनियादी शर्तें लागू होती हैं, जो एक सामान्य जन के साथ होती हैं. उनके अनुसार लेखक और पाठक के बीच तादात्म्य स्थापित करने का सबसे कारगर तरीका रचना में जन साधारण की भाषा का प्रयोग ही हो सकता है. उन्होंने आगे कहा कि हिंदी के समांतर साहित्य की तरह उड़िया भाषा में भी जो साहित्य

बायें से—डॉ. ईश्वरीप्रसाद तिवारी, कुलनाथ गगोई, कंडुरी दास, समरेश बसु, डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र, सविता बनर्जी, रामव्यास पांडेय तथा अन्य लेखक



इन दिनों लिखा जा रहा है, उसका दृष्टिकोण सामाजिक और केंद्र-बिंदु सामान्य जन ही है.

सुरेंद्र तिवारी के अनुसार समांतर आंदोलन की सफलता इसी बात से सिद्ध हो जाती है कि उसके साथ युवा लेखकों का एक व्यापक वर्ग जुड़ गया है और अपना वैचारिक तथा रचनात्मक सहयोग कर रहा है.

डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र ने कहा कि समांतर साहित्य राज-नीतिक दुराग्रहों तथा कलावादी स्वांगों से मुक्त एक सामाजिक संसक्ति का लेखन है, जिसे मैं अपना पूर्ण समर्थन देता हूं. साथ ही उन्होंने इस बात से भी आगाह किया कि समांतर का 'आम आदमी' कहीं 'खास' में न बदल जाये.

श्री समरेश बसु ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि मैं लेखक की हैसियत से भी अपने आपको सामान्य जन मानता हूं. उन्होंने अपनी रचना-प्रक्रिया के बारे में बताते हुए कहा कि मैंने एक आम आदमी की तरह अपने आस-पास के सामाजिक परिवेश में हिस्सा लिया है, उसका भागीदार बना हूं. अपनी रचनाओं में मैंने बंगाल के मछुआरों, चटकल-कारखानों के मजदूरों, खेतिहर-कामगरों तथा अन्य श्रमजीवी आदमियों की जिजीविषा, आशा-आकांक्षा तथा उनके स्वप्न और संघर्ष को रूपायित-रेखांकित करने का प्रयास किया है. उन्होंने अपने वक्तव्य के अंत में कहा कि साहित्य जीवन की सतत् खोज है.

अलख नारायण महानगर से बाहर रहने के कारण एक लिखित टिप्पणी भेज कर परिचर्चा में शरीक हुए. उन्होंने अपनी टिप्पणी में कहा कि 'समांतर कहानी' के तहत लिखने वाले अनेक कहा-नीकारों ने समाज की केंद्रीय सच्चाई को भरसक उभारा है तथा मार्मिक तथ्यों, चित्रणों और विवरणों के माध्यम से सामयिक यथार्थ की पहचान का विवेक प्रतिष्ठित किया है. इन्होंने कहानी को ड्राइंगरूमों, बेडरूमों, रेस्तराओं, होटलों, ऐतिहासिक खंडहरों, पिकनिकों और गिनी-चुनी समस्याओं से बाहर निकाल कर कामगरों, रिक्शाचालकों, झाबेवालों, जरखरीद चाकर, मजूदर, जूट मिल और चटकल के श्रमिक आदि की दुनिया में प्रवेश कराया है. पूंजीवाद और शोषक वर्ग की मूक तरफदारी करने वाले नवलेखनवादी - भाववादी साहित्य-कारों की आम आदमी-विरोधी दृष्टि से बौखला कर यदि 'आम आदमी' का नारा भी दिया गया, तो यह बुरा नहीं है. आवश्यकता इस समझ को विकसित करने की है और इस तरह जनाकांक्षाओं के स्रोत को सूख जाने के पहले मोड़ने की है. साहित्य का संघर्ष क्रांति का संघर्ष नहीं होता. साहित्य को क्रांति का स्थानापन्न मान लेना कुत्सित समाज-चेतना का ही प्रति-फल होगा. उन्होंने आगे कहा कि मैं यह नहीं मानता कि रचनात्मक उत्तेजना भरी जटिलताएं 'समांतर' के अंतर्गत लिखने वाले कामतानाथ, मधुकर सिंह, से. रा. यात्री, इब्राहीम शरीफ, कपिल आर्य, सुदीप आदि की कहानियों में ही आकार पा सकी हैं. इस दृष्टि से **'घंटा'**, **'माननीय होम मिनिस्टर के नाम'**, **'प्रथम पुरुष'**, **'किस बहाने'**, **'सूरज कब निकलेगा'** तथा **'उसकी रोटी'** आदि कहानियां वस्तुमयता और समग्रता के स्तर पर मूल्य और संस्कार को कुरेदती हैं.

बहस-चर्चा में डा. नगेंद्र चौरसिया, विनयकृष्ण बनर्जी तथा नीलम श्रीवास्तव ने भी भाग लिया. गोष्ठी में उपस्थित अन्य व्यक्तियों में शक्ति चट्टोपाध्याय, दिनेश आचार्य, सविता बनर्जी, उपल, कृपाशंकर पांडेय, प्रो. इंदु उपाध्याय, आनंदकुमार सिनहा, कामताप्रसाद दुबे, प्रो. मीरा सिन्हा, हृदयेश पांडेय, कृष्णा पटेल, विभास सेन, कमलेश्वर प्रसाद वर्मा, कवि-रुद्र, रश्मि, रामव्यास पांडेय और गीतेश शर्मा के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं.

□ **कपिल आर्य**

विविधा

पंजाब : हिंदी रंगमंच

'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'

बेहद गर्मी, पसीने से तर-बतर रंग-प्रेमियों की भीड़ कपूर-थला के जगजीवन हॉल के बाहर वहां की स्थानीय संस्था इंडियन आर्ट्स रिवाइवल ग्रुप द्वारा प्रस्तुत किये जाने वाले सुरेंद्र वर्मा कृत नाटक **'सूर्य की अंतिम किरण से सूर्य की पहली किरण तक'** की व्यग्रस्ता से प्रतीक्षा कर रही थी.

बोझिल-सा वातावरण लिये नाटक शुरू हुआ. महाराज ओक्काक की नपुंसकता के फलस्वरूप अमात्य परिषद् द्वारा यह प्रस्ताव पारित किये जाने पर कि राज-महिषी शीलवती नियोग द्वारा संतान प्राप्ति करे, महाराज ओक्काक अप्रसन्न हैं.

नाटक ज्यों-ज्यों आगे बढ़ा, प्रेक्षकों को अपने साथ लेता हुआ सूर्य की पहली किरण तक पहुंचा.

ललित बहल द्वारा निर्देशित तथा उन्हीं द्वारा तकनीकी संकलन के मार्गदर्शन के फलस्वरूप नाटक केवल सफल ही नहीं हुआ, अपितु इसने पंजाब में हिंदी रंगमंच को स्थापित करने में जो योगदान दिया है, वह अविस्मरणीय है.

अभिनय की दृष्टि से शीलवती के रूप में कुमारी कंवल प्रीत ने दर्शकों को मंत्रमुग्ध कर दिया. ओक्काक की भूमिका स्वयं ललित बहल ने प्रभावशाली ढंग से निभायी.

□ **जसवंतसिंह विरदी**

ओक्काक की भूमिका में ललित बहल तथा शीलवती की भूमिका में कुमारी कंवल प्रीत



धारावाहिक उपन्यास (सातवीं किस्त)

लाल पसीना

• अभिमन्यु अनत

अब तक आपने पढ़ा है :

सदियों पूर्व विस्तृत महासागर के बीच ज्वालामुखी के विस्फोट से मॉरिशस द्वीप का जन्म हुआ. सदियों तक यह द्वीप वीरान पड़ा रहा. फिर विभिन्न देशों ने इसे भारत तक पहुंचने का रास्ता बनाया. मारीच देश में पत्थरों के नीचे सोना दबा पड़ा है—यह सुन कर अकाल और भूख से पीड़ित भारतीय किसानों के दल मजबूर बन कर वहां जाने लगे. लेकिन वहां पहुंच कर विदेशी स्वामियों के अनाचार ने उनका मोहभंग कर दिया. कुंदन भी इन मजदूरों में से एक था. एक छोटी भूल के लिए उसे उम्र कैद मिली. बरसों बाद उसे जेल से भागने का रास्ता मिल गया. वह एक ऐसे गांव में जा पहुंचा, जहां बहुत-से भारतीय रहते थे. कुंदन मजदूरी करने लगा. गांव के मुखिया के बेटे किसन ने उसे अपना गुरू स्वीकार किया. किसन एक ओर अपनी जाति के लोगों की स्थितियों से दुखी था; दूसरी ओर पुष्पा और सत्या के प्यार में संतुलन नहीं बना पा रहा था. पुष्पा धीरे धीरे कुंदन के निकट आ गयी थी. . .उसे जैसे पिता का स्नेह मिल गया था. दूसरी ओर किसन और उसके साथियों की गतिविधियां बढ़ गयी थीं. . .अब आगे पढ़िए.

कुंदन के घर में हिंदी की पढ़ाई होती है, रामायण और आल्हा गाये जाते हैं, बैठक लगती है, इस बात का पता ठेकेदारों को चल गया था. कुंदन को चेतावनी देने के बाद उस पर कड़ी नजर रखी जा रही थी. यही कारण था कि पिछली बैठक उस समय लगी थी, जब मूसलाधार वर्षा हो रही थी. लोगों के बीच दो घंटों की जो बातचीत हुई, वह भय और झिझक के बीच हुई थी. जब दूसरी कोठियों में पहुंच कर सभी लोगों को सजग और संगठित करने की बात चली थी, तो किसन खुद जाने को तैयार हो गया था. इस पर कई लोगों ने एक साथ आपत्ति की थी. सभी ने यही कहा था कि किसन को यहीं रह कर सभी कुछ करना है. इसके बाद सोनालाल खड़ा हो गया था. सोनालाल को किस तरह दूसरी कोठियों में प्रवेश करके काम करना था, उसे सभी कुछ बताने की जिम्मेवारी को कुंदन ने अपने ऊपर ले लिया था.

उस रात पौ फटने तक लोग आल्हा गाते रहे. पानी भी जी भर कर बरसता रहा. उस रात किसन की हर बात को गंभीरता के साथ सुना और समझा गया था. भीतर के भय और झिझक के बावजूद उस रात संकल्प हुए. पहली बार एक मकसद के लिए लोग तैयार दीखे. लोगों के ध्यान को अपनी आंखों में बांध कर किसन ने कहा था—एक-न-एक दिन तो हमें इन सभी अनर्थों के विरुद्ध अपनी छाती को सामने करना ही है.

—वह दिन आज ही क्यों न हो?

सभी के बीच इस प्रश्न की प्रतिध्वनि हुई थी. काफी देर तक उसकी अनुगूंज घर के भीतर होती रह गयी थी. उस अनुगूंज के भीतर लोग उस समय तक जकड़े रहे, जब तक कि कोठरी के रखवार की आवाज की गूंज पूरी बस्ती में न फैल गयी.

—फजीर होवे के बा! काम पर पहुंचे के तैयारी में लग जावो. . .फजीर होवे के बा. . .

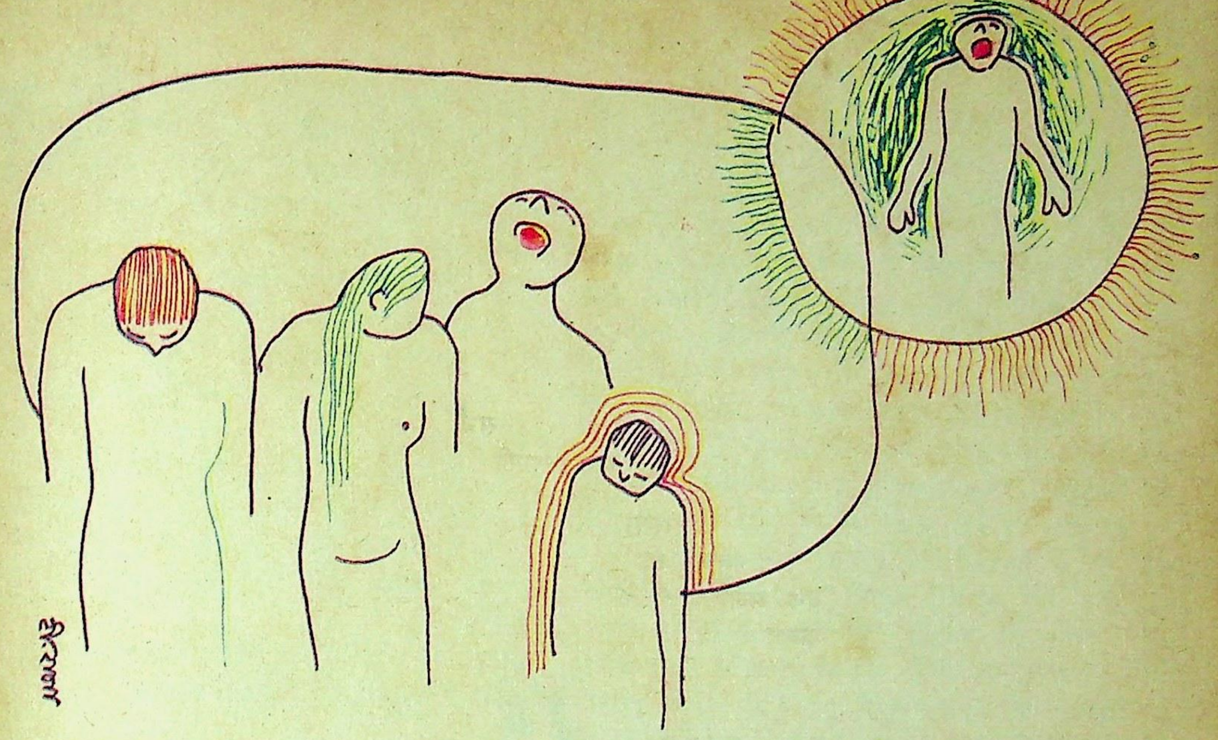
उस धुंधलके में सभी घरों से चिराग टिमटिमा उठे थे. बरतनों की झनक शुरू हो गयी थी.

* *

हाथ में पीतल का लोटा थामे सोनालाल भी मैदान को चल पड़ा. उसकी पहली मंजिल थी आंत्वानेत कोठरी, जहां उसका चचेरा भाई जमीन से पत्थर निकाल कर उसे खेतों में परिवर्तित करने में लगा हुआ था. वह इलाके की सबसे बड़ी बस्ती थी. पूरे तीन सौ मजदूरों की. अपने भीतर भय और साहस लिये वह पहाड़ी को पार कर गया.

रघुसिंह को जब रात की बैठक के निर्णय का पता चला, तो वह किसन पर बरस पड़ा. यह कहते हुए कि उसके समय में परिस्थिति इससे भी नाजुक थी. एक ही देगची में चावल पकता था और मजदूर के सामने कलछी भर फेंक दिया जाता था. कपड़े की जगह कई वर्ष बोरे पर दिन गुजारे गये थे. आंखों के सामने घर की औरतों की इज्जत लूट ली जाती थी. उन सभी परिस्थितियों को वे झेल आये थे. आज जब स्थिति में काफी सुधार आ गया था, तब इस तरह का विद्रोह करके अपने भविष्य को माटी में मिलाना था. वह यह कह कर आज के नौजवानों को कोसता रहा कि इन गरम खून वालों के भीतर 'सबूरी' नाम की कोई भी चीज नहीं थी. उनमें न संतोष था, न सहने की हिम्मत, अंत में पूरी गंभीरता के साथ उसने किसन से पूछा —तुम लोगन हमनी के समय में होत स त का करके रहत स?

किसन अपने बाप की बातों को चुपचाप सुनता रहा. उससे तर्क करके उसके क्रोध को और भी बढ़ाना था. अगर किसन को हैरत थी तो इस बात की, उसके बाप का यह आक्रोश किसी विशेष कारण के लिए क्यों नहीं था? ऐसा हो कर कम-से कम बेकार होने से तो बच जाता. लेकिन किसन के अपने भीतर का आक्रोश भी बेकार था, वह भी तो उसी पुरानी बेचारगी की



स्थिति में था. निहत्था वह भी था. वह यह भी जानता था और इन सभी के विरुद्ध उसका विद्रोह भी सीलेपन से मुक्त नहीं था.

सोनालाल की मां को जब मालूम हुआ कि उसका बेटा दूसरी कोठरी में मजदूरों को सजग और संगठित करने पहुंचा है, तो वह भय के कांप उठी. सीधे किसन के घर पहुंच कर उसने अपने बेटे के बारे में पूछताछ शुरू कर दी. सोनालाल की मां की उपस्थिति में ही रघुसिंह किसन को बुरा-भला कहता रहा. सोनालाल की मां को रोते पा कर किसन की मां भी अपने बेटे पर बरस पड़ी. रघुसिंह के घर एक लड़का और दो लड़कियां थीं. इन तीनों से पहले भी उसके यहां दो बच्चे जन्मे थे, पर कुछ ही दिन जी कर दोनों बच्चे मर गये थे. गांव की कई औरतों ने एक साथ कहा था. —रघुसिंह की बहुरिया, तुम्हारे को बच्चा नहीं सहता.

इसीलिए जब तीसरी बार किसन का जन्म हुआ था, तो सोनालाल की मां ने आगे आ कर अपने खूंटे से एक पैसा निकाला था और रघुसिंह की पत्नी के हाथों में रख कर बच्चे को अपनी गोद में ले लिया था. इसी तरह बारी-बारी से उसने किसन की दोनों बहनों को भी खरीद लिया था और तीनों बच्चों के जीवित रह जाने का यही कारण समझा जाता था. रघुसिंह के बच्चे गोपाल की मां को भी मां कहते थे. तीनों बच्चों ने सबसे पहले उसीका दूध पिया था.

सोनालाल की मां को रोते पा कर किसन ने उससे धीरे से कहा —तुम सोनालाल की चिंता नहीं करो, मां. वह एक बहुत बड़े काम के लिए उधर गया है. काम पूरा होते ही लौट आयेगा.

किसन नहीं चाहता था कि वह बात फैले, उसके फैलने से सोनालाल संकट में तो पड़ेगा ही, उसके साथ-साथ काम बनने के बदले और भी बिगड़ जायेगा. दूसरे दिन शाम के वक्त नदी-किनारे अकेले होने पर किसन ने अपने आप से बातें करते हुए कहा कि सोनालाल की जगह उसे खुद जा कर दूसरी कोठियों के मजदूरों से मिलना चाहिए था. पर उसकी अनुपस्थिति पर बहुत जल्दी संदेह हो जाता. वह अपनी कोठी से बाहर कभी नहीं गया था, जबकि सोनालाल का किसी बहाने इधर-उधर जाना होता ही रहता था. इस लिहाज से उसके बारे में संदेह की कम संभावना थी.

इन कारणों के बावजूद किसन को प्रतीत होता रहा कि निर्भयता का उसमें अभाव था, अन्यथा इस खतरे को उसे अपने सिर पर लेना चाहिए था.

★ ★

नदी की ओर जाते हुए सरदार के खेत के पास वाली पगडंडी पर उसे सत्या मिल गयी थी. उसके हाथ में हरी मकई थी. उसने किसन से पूछा था —भुनी हुई मकई खाओगे, किसू?

—नहीं.

—देखती हूं, तुम खाये बिना कैसे आगे बढ़ते हो!

कुछ ही दूरी पर सत्या की मां सूखी लकड़ियों के अंगारों पर मकई भून रही थी. उसके पास तक पहुंच कर सतिया एक भुट्टा उठा लायी थी. किसन के हाथ में जबरदस्ती थमाते हुए बोली थी —एकदम सोंधी है!

—मैं नहीं खाऊंगा.

—नदी की ओर जा रहे हो न?

—हां.

—तो उसी में फेंक देना.

वह एक दूसरी बात थी, जिसे सत्या ने कहा था और जो इस समय उसके कान में बज रही थी.

—किसू, लोग कहते हैं तुम बड़े साहसी हो.

वह व्यंग्य नहीं था, लेकिन इस समय वह उसे व्यंग्य-सा प्रतीत हो रहा था. उसने मन ही मन कई बार प्रश्न किया : क्या मैं सचमुच साहसी हूं? अगर सत्या ने व्यंग्य न किया हो, तब तो. नहीं, वह व्यंग्य नहीं था. और भी कई अवसरों पर कई लोगों ने इस तरह की बात कही है. लेकिन मैंने तो इसका अब तक कोई भी प्रमाण नहीं दिया. क्या वक्त-बेवक्त नदी की ओर आ जाने से कोई साहसी बन जाता है? बस्ती में गोसाईं जी सबसे अधिक पढ़े-लिखे आदमी थे. किसन एक बार साहस शब्द का अर्थ उनसे पूछ कर देखना चाहता था. हो सकता है कि उसके दो अर्थ हों. लोग उसे उस दूसरे अर्थ से पुकारते होंगे, जो उसे मालूम नहीं.

सत्या की दी हुई मक्की अब भी उसके हाथ में थी. सत्या ने उसे और भी कई अवसरों पर चीजें दी थीं. किसन उन चीजों को बस्ती के बच्चों के बीच बांट देता. मक्की का क्या करे? रात होने को थी. मक्की की सोंधी गंध में प्रलोभन था. मक्की में सत्या की याद थी, सत्या की गंध थी. किसन को भूख लग आयी थी, लेकिन उसे मक्की खाना नहीं था, कम-से-कम अपने इस संकल्प से वह बहुत अच्छी तरह अवगत था.

एक बार सत्या उसका हाथ थामे उसे मकई के खेत के भीतर घसीटे चली गयी थी. वह खेत किसन को कांटों की झाड़ी-सा लगा था. यह खेत रामजी सरदार को रेमों मालिक की ओर से भेंट में मिला था. यह वफादारी की भेंट थी. पुष्पा की मां कहती कि भोले-भाले मजदूरों की कल्पना पाला बन कर उस खेत पर गिरेगी. उसका कहना हर वर्ष गलत साबित हो कर रह जाता. सरदार की फसल हर साल अच्छी होती. कोठी के काम के बाद वह बारी-बारी से सभी मजदूरों से उस खेत में काम करवा लेता था. केवल किसन ही था, जिसने उस खेत में कभी भी काम नहीं किया था.

★ ★

तीन दिन बाद. कड़कती धूप में. ईख की कटाई के वक्त. किसन ने सुना. सोनालाल पकड़ा गया.

पूरी खबर उसे काम से लौटते समय रास्ते में मिली.

दूसरी कोठी में मजदूरों को सचेत करते हुए सोनालाल पकड़ा गया था. दूसरी कोठी वाले सरदार ने उसके हाथ-पांव बांध कर उसे लंगड़वा साहब के यहां भिजवा दिया था. लंगड़वा साहब ने उसके शरीर के कपड़े उतरवा कर उसकी देह को ईख के रस से चप-चप करवा कर कड़कती धूप में पेड़ से बंधवा दिया था. जिस समय मजदूर की नजर उस पर पड़ी थी, उसका शरीर लाल चींटियों से खदखद भरा हुआ था. पीड़ा से चिल्लाते चिल्लाते वह बेसुध हो गया था. उसके पास फटकने की इजाजत किसी को नहीं थी. लंगड़वा साहब के दोनों कुत्ते उसके इर्द-गिर्द घूमने को छोड़ दिये गये थे. बस्ती का शायद ही कोई ऐसा मजदूर था, जिसका पाला इन कुत्तों से न पड़ा हो. कइयों की बोटी-बोटी नोचे जाने से बची थी. दिल दहला देने वाली वह कड़वी यादगार आज भी कई लोगों के भीतर ताजा थी.

किसन सीधे लंगड़वा साहब की कोठी पर पहुंचा. मलगासी पहरेदार ने डांटते हुए पूछा— कोन तो पे आले?

—मुझे मालिक से मिलना है.

—मालिक को तुमसे मिलना नहीं है.

—बहुत जरूरी काम है.

किसी तरह वह लंगड़वा साहब के सामने पहुंच कर रहा.

—सोनालाल को छोड़ दिया जाये, साहब.

—तुम्हारे कहने से हमें और क्या-क्या करना है?

दूसरे ही क्षण मलगासी पहरेदार ने पूरी ताकत के साथ किसन को ठेलते हुआ फाटक से बाहर कर दिया था.

बस्ती को लौटते हुए रास्ते में फिर सत्या मिल गयी थी और किसन बहुत देर से घर पहुंचा.

सत्या कई बार किसन से कह चुकी थी, अगर वह चाहे तो उसे कारखाने में काम मिल सकता था. किसन ने कभी नहीं चाहा था. उसके न चाहने के कई कारण थे. किसी भी हालत में वह सत्या और रामजी सरदार का एहसानमंद होना नहीं चाहता था. सिफारिश के जरिये वह कहीं पहुंचे, यह बात भी उसे पसंद नहीं थी. और ईख के कारखाने में कई संकट-कालीन स्थितियों में वह काम भी कर चुका था. वहां के सभी अच्छे काम मलगासी करते थे. वहां जो भारतीय मजदूर थे, वे तो वहां हाड़-मांस के कल की तरह लगाये गये थे. कोल्हू के बैल और उनमें कोई अंतर था ही नहीं. उन लोगों से किसन ने कई बार पूछा था कि वहां के सभी अच्छे कामों पर केवल क्रिओल क्यों थे? इसके उत्तर में उससे हर बार यही कहा जाता : क्योंकि वे लोग भारतीय नहीं. वह उत्तर तेजाब छिड़कने वाला था. उसकी जलन से किसन भीतर ही भीतर कराह कर रह जाता.

सारी योग्यता के बावजूद भारतीय लोगों को कोई भी ऐसा काम नहीं दिया जाता, जो बेहतर था और जिस पर गोरों और मलगासियों का एकाधिकार-सा था. सब से अच्छे काम गोरों के लिए होते थे. सबसे बदतर भारतीयों के लिए. बीच का काम उन लोगों के लिए होता था, जो न तो गोरे थे, और न ही भारतीय. अपने आप को सांत्वना देने के लिए अगर भारतीयों के पास कुछ था, तो यह कि काम काम होता है. उसके लिए बदतर और बेहतर का प्रश्न ही क्यों?

★ ★

देवकरन गोसाईं अब नहीं रहा. वह कहा करता था कि इस देश में सबसे अधिक काम करने वाली हमारी जाति है. एक दिन हमारी ही जाति के हाथों में इस राज

की बागडोर होगी. यही कहते-कहते देवकरन गोसाई मरा था. कभी अकेले बैठे-बैठे किसन सोचा करता, इस देश में मेरे ही लोग जंगल काटते हैं, चट्टानों को चीरते हैं, पत्थरों को हटा कर जमीन वे ही लोग जोतते हैं, बोआई वही करते हैं, मेरे ही लोग पौधों को सींचते हैं, खाद देते हैं, उनकी रखवाली करने वाले भी वे ही लोग होते हैं; मेरे ही लोग फसल काटते हैं, जामुनी ईखों को कारखाने तक पहुंचाते हैं; रस वे ही गोड़ते हैं, शक्कर वे ही बनाते हैं, लेकिन शक्कर कोई और खा लेता है. ऐसा क्यों? उस शक्कर में कौन-सा जादू था, जिसे केवल छू कर कुछ लोग समृद्ध थे, कौन बताये?

★ ★

पहले ही कट गये गन्ने के अंकुर जहां-तहां घुटनों तक आ गये थे. सत्या को किसन ने दूर ही से देख लिया था. उसके पास आ जाने पर किसन उसके गले के हार और कनफूलों को गौर से देखता रहा. उसे लगा कि एक बार फिर रामजी भगत ने भारत से नयी पहुंची किसी औरत के गहनों को यह कहते हुए जब्त कर लिया होगा कि यहां किसी को गहने पहनने का अधिकार नहीं है. किसन को अच्छी तरह याद है कि उसकी आंखों के सामने जब रूपा के गहने उतारे गये थे, उस समय सरदार ने यह दलील रखी थी कि गहनों का बोझ आदमी को आलसी बना देता है. खेतों में काम करने के लिए आलसियों की नहीं, मेहनतकशों की आवश्यकता होती है. किसन सत्या को देखता रहा. अपने गहनों को अधिक चमकाने के लिए वह मुसकराती रही. किसन ने मन ही मन तर्क किया. फिर मन ही मन मुसकरा कर रह गया. सत्या इन खेतों में काम करने के लिए थोड़े ही थी! वह तो खेतों की सुंदरता थी.

सत्या चुपचाप खड़ी रही. वह अपने प्रश्न के उत्तर की प्रतीक्षा में रही. किसन ने उत्तर कुछ देर से दिया —बहुत सुंदर लग रही हो आज!

उत्तर पा कर सत्या की पलकें झपकीं. उसके चेहरे पर नया रंग आया और वह किसन के एकदम पास आ गयी. किसन को लगा कि सत्या ने आसपास के सभी जंगली फूलों को निचोड़ कर उनके रंग और गंध को अपने चेहरे में पोत लिया था.

कल शाम जब किसन पुष्पा की बगल में बैठा था, उस वक्त हवा के साथ किसी जंगली फूल की गंध आ गयी थी. उसी के साथ किसन को सत्या की याद आ गयी थी. जो उष्णता उस सुगंध में थी, वही सत्या की याद में भी थी. पुष्पा की आंखों में झांकते हुए किसन उसे बहुत सुंदर पाता था, लेकिन कभी-कभार सत्या के शारीरिक लावण्य में जो आकर्षण होता, वह उसे चुंबक की तरह अपने पास घसीट कर ही रहता.

हांफती हुई सत्या उसे और भी आकर्षक प्रतीत हुई. उसकी आंखों को महसूसते हुए किसन ने कहा— आज बहुत सुंदर लग रही हो!

—नजर मत लगाना! मेरी मां को औंछना पड़ जायेगा.

यह कह कर सत्या दौड़ गयी. किसन भी उसके पीछे दौड़ पड़ा. दोनों बरगद के पेड़ के नीचे रुके. जटाओं को थामे दोनों एक-दूसरे को देखते रहे. बोलने की जरूरत किसी ने नहीं समझी. घने बरगद के नीचे अंधेरा पहले ही आ गया था, जिससे सत्या की आंखों की वह चीज और भी चमक उठी थी. नदी की समस्त तरंगों को किसन ने अपने भीतर उफनते पाया. उसने सत्या के कान में गुनगुनाया—सरदार की बेटी गुलेल खेलेला. भर मांग सींदूर भरतार खोजेला.

सत्या नाराज नहीं हुई.

कुछ देर बाद.

अब अंधेरा और भी गहन हो गया था.

हरी दूब पर लेटे हुए दोनों शांत थे. दोनों की सांसों में शिथिलता थी.

मादक स्वर में सत्या ने धीरे से कहा— मैं फिर से कहती हूं, तुम चाहो तो मैं तुम्हारे लिए कारखाने में नौकरी का प्रबंध करा दूं.

—धूप में मैं ज्यादा सांवला होने लगा हूं न?

—मैं इसलिए नहीं कह रही.

—तो फिर?

—कारखाने में काम करने से तुम कुछ तो भिन्न हो पाओगे!

—मैं भिन्न होना नहीं चाहता हूं, सत्या.

—कारखाने का काम उतना कठिन भी नहीं.

—मैं सहज और आसान काम पसंद भी तो नहीं करता.

—चाहो तो मालिक की कोठी में.

—वह तो मर कर भी नहीं करूंगा.

—आखिर क्यों?

—कारण तो मैं भी नहीं जानता.

—तुम हठी बहुत हो, किसन!

—छोड़ो इन बातों को. अब हमें चलना चाहिए.

वह खड़ा होने लगा. सत्या ने उसका हाथ पकड़ लिया.

—तुम मेरे बाप से कब बात करोगे?

—मैं क्या बात करूंगा?

—अपने बाप से तो करवा सकोगे?

—तुम्हारे बाप की एक बात कभी-कभी मुझे बिल्कुल अच्छी नहीं लगती है. पर कभी तो वही बात बहुत जंचने लगती है.

—कौन-सी बात?

—उसका बात-बात में यह कहना कि हड़बड़ाल से गूलर ना पकेला.

—मैं जानती थी, तुम यही कहोगे.

मजदूरों को खोखले आश्वासन देने के लिए सरदार के पास यही वेद-वाक्य था.

वह यह कभी नहीं कहता कि तुम लोगों की स्थिति कभी नहीं सुधरेगी. यह उसकी अपनी नीति के विरुद्ध होता. वर्षों से वह यही कहता आ रहा था— सबूरी करो— हड़बड़ाल से गूलर ना पकेला.

बस्ती में लौटने पर किसन ने लोगों को चबूतरे पर



• एस. टी. चौधरी

पाया. लोगों का गाना-बजाना पराकाष्ठा पर था. पुष्पा अपनी ओड़ियानी के धुंधलके में अकेली खड़ी थी. बस्ती में पहुंचने से पहले किसन ने चाहा था कि एक बार फिर नदी में नहा आये, पर सत्या ने उसे ऐसा करने नहीं दिया था. वह नहीं चाहती थी कि उसके अपने शरीर की गंध किसन के शरीर से इतनी जल्दी धुल जाये. पुष्पा की ओर बिना देखे किसन अपने घर को बढ़ गया.

बरतन मांजने के लिए इस्तेमाल होने वाली बाल्टी में बहुत कम पानी था. किसन जब उससे हाथ-पांव धोने लगा, तो घर के भीतर से उसकी बहन ने कहा—सुबह बरतन धोने हैं. सारा पानी उछाल न देना.

चौखट के पास रखे बोरे के टुकड़े से किसन ने पांव पोंछे. हाथों को आस्तीन से पहले ही पोंछ चुका था. ओड़ियानी के पास पत्थर पर बैठ गया. उसकी बहन ने दोबारा आवाज दी— भात नहीं खाओगे?

—बाद में खाऊंगा.

—मुझे नींद आ रही है.

—तुम सो जाओ, मैं खुद निकाल लूंगा.

अंधेरे में बैठा वह उधर से आने वाले गाने को सुनता रहा. कुछ देर गुनगुना कर वह चुप हो गया. आकाश की ओर आंखें उठ गयीं. तारे कम थे. क्षीण थे. पत्ता तक नहीं हिल रहा था. कारखाने से उठता हुआ धुआं सामने के वातावरण को धूमिल और बोझिल किये हुए था. किसन को पुष्पा की याद आयी, पर टिक न सकी. सत्या के बारे में सोचने से किसन अपने को रोक नहीं पा रहा था.

अपनी जगह से उठ कर किसन आगे बढ़ गया. वह चबूतरे की विपरीत दिशा को चल रहा था. उधर से आती हुई ध्वनि में जो उल्लास था, वह क्षणिक था, मिथ्या था. वह सब कुछ अपने आपको छलना था. अपनी निर्बलता को छिपाना था. इस परिपाटी को जीते-जीते किसन ऊब गया था. ऊब जाने के बाद भी जब सामने बेबसी खड़ी नजर आ जाये तो उस ऊब को ही जीवन समझ लेना कितना स्वाभाविक हो जाता है! उसने तो कई अवसरों पर उस स्वाभाविकता को भी खंडित करना चाहा था पर. . .

पश्चिम की ऊंची दीवार के किनारे-किनारे किसन चलता रहा. दीवार ऊंची थी, पर कमजोर थी. रस्सी टूटी हुई थी. लकड़ियां सड़ी हुई थीं. छूने से दीवार ढह सकती थी, फिर भी वह खड़ी की खड़ी थी. न जाने कब तक खड़ी रहेगी. उस सड़ी हुई दीवार पर अंगुली रखने की किसी ने कभी हिम्मत नहीं की.

इस विडंबना को कौन मिटाये?

किसन सोचने लगता—क्या यह दीवार ऐसे ही बनी रहेगी?

वह तूफान नहीं आयेगा, जिसकी उसे प्रतीक्षा थी? पर जिस दीवार को एक छोटी-सी हवा गिरा सकती है, उसके लिए तूफान की प्रतीक्षा क्यों की जाये? वह छोटी हवा—वह कब तक कतरा कर निकलती रहेगी?

इसी प्रश्न के साथ किसन घर की ओर लौट पड़ा. उसकी पीठ पर दासता का जो भारी-भरकम बोझ था, वह उसकी आत्मा तक पर हावी हो गया था.

* *

कुछ लोगों को यह कहते सुना गया था कि अब दासता के कानून में संशोधन किया गया है और जो लोग भारत लौटना चाहते हैं, लौट सकते हैं—तो फिर क्यों इस नर्क से छुट्टी न पा ली जाये? कई दिनों तक यह विचार बहस का विषय बना रहा. 'गिरमिट' के मुताबिक कुछ लोगों को बहुत पहले लौट जाना चाहिए था, पर चल कर भी अपने देश को लौटना होता, तब भी यह असंभव था. किसन इस प्रस्ताव के विरुद्ध बोलता रहा. शुरू से अंत तक वह सभी नौजवानों से यही मांग करता रहा कि उनका जन्म इस मिट्टी में हुआ है, उन्हें मरना यहीं होगा. सभी लोग उसकी यह बात मानने को तैयार नहीं थे. कोई चिल्ला उठा था कि नर्क को अपना मान लेने से क्या होता है? किसन नहीं चाहता कि नर्क से भाग कर नर्क को नर्क छोड़ दिया जाये. उसे परिवर्तित कर जाने का किसन को पूरा विश्वास था. पिछले दिन की बैठक में उसका आखिरी वाक्य था— हमारे बाद के लोगों के लिए कम से कम यह वह न रहे, जो आज हमारे लिए है.

कई दिनों की लगातार बैठक के बाद सभी इसी निष्कर्ष पर पहुंच कर रहे कि जिस माटी पर उन लोगों का खून-पसीना बह रहा हो, उसे परायी धरती नहीं समझा जा सकता. वे अगर उस धरती को समृद्धि देने में लगे हुए थे, तो कम-से-कम उसे अपना कहने के हकदार भी तो हैं! और ये किसन ही के शब्द थे कि कठिन से कठिन स्थिति को झेल कर भी वे इस धरती को अपना समझने के आत्मगौरव को अनुभव करें.

—अगले अंक में—

सूचनाएं धीरे-धीरे दूसरी बस्तियों में पहुंचने लगीं. फिर एक दिन सोनित की लाश इमली के पेड़ से लटकी हुई मिली तो सब आक्रोश से भर उठे. . . और मालिक ने किसन को बुलवा भेजा. . .

(प्रणयिनी परिणय : पृष्ठ ७९ से आगे)

हाथ आवेगा? तो क्या ऐसी अवस्था में विचारशील पुरुष प्राणदंड से बढ़कर आजन्म श्रमदंड नहीं उचित ठहरावेंगे? तो इन प्रकारांतर कठिनतर दंड की अपेक्षा यह घृणित (प्राणदंड) न्यायविधि किस काम का है? और आजकल विशेषतः समस्त सभ्य राजा-महाराजों ने इसका निषेध भी किया है, तो अब मैं भी सर्वथा इस महा अन्याय को ध्वस्त करने की पूर्ण चेष्टा करूंगा.

धन्य है, हे जगदीश्वर! आज आपने मुझको इस महापाप से बचाया, अब आपसे यही प्रार्थना है कि मुझे सर्वदा ऐसी सुबुद्धि देकर कृतार्थ करेंगे जिससे मैं सदा विशेष कर राज्यकार्य में निष्पाप रह कर आपके सन्मुख मुख दिखलाने योग्य रहूं और 'राज्यान्ते नरकंव्रजेत्' यह न भोगना पड़े क्योंकि ऐसे ही कृतकर्म पातक समूह से अनभिज्ञ तथा अहंमन्य राजा पंचत्व प्राप्त पश्चात् यमयाचना के पूर्णाधिकारी होते हैं, और अपने अन्याय का फल भोगते हैं, परंतु ईश्वर ने आज मुझे इस दुर्घट फांस से मुक्त किया तो मैं अब उसका जितना धन्यवाद दूं, थोड़ा है——

इति पञ्चमो निष्कः।

★ ★

अथ षष्टो निष्कः।

क्षीणोपि रोहित तरुः क्षीणो प्युपचीयते पुनश्चन्द्रः
इति विमृशतः सन्तः सन्तप्यन्ते न ते विपदा
(नीति शतके)॥

अब महाराज पूर्व की अपेक्षा प्रसन्नवदन दीखने लगे, साथ ही अनुरक्त प्रजाओं के मन का भाव भी बदल गया. पाठक! जिस प्रजा की राजा के हृदयस्थ भाव जानने की क्षमता है, उस (प्रजा) का राजा क्यों कर अपनी प्रजा के मन का भाव जाने बिना रह सकता है. राजा ने भी प्रजाबर्ग की आकृति देख के जान लिया कि ये हमारे तर्क-वितर्क पर विचार रहे हैं, तो अब इस कौतुक का दृश्य इन प्रजावर्गो को भी अवश्य दिखलाना चाहिए. यह बिचार स्थिर कर महाराज ने कहा, मंत्रिवर, कोतवाल को आज्ञा दीजिए कि सभ्य शिरोमणि महल्ले में परदुःखभंजन मिश्र नामक जो चोर है, उसे प्रतिष्ठा-पूर्वक न्यायालय में शीघ्र उपस्थित करे. मंत्री ने निवेदन किया, जो आज्ञा आयुष्मन्. मंत्री ने राजा से निवेदनोपरांत कोतवाल से कहा कि तुमने महाराज की आज्ञा सुना? तो शीघ्र कार्य को ठीक करो. कोतवाल ने कहा, जी हां, अच्छी प्रकार मैंने सब सुन लिया, और अभी जाकर शीघ्र ही उन्हें लिये आता हूं. यह कह कर कोतवाल ने उस महल्ले में पहुंचने के उपरांत परदुःखभंजन मिश्र का आह्वान किया और कहा कि महाराज ने मुझे आज्ञा दिया है कि उक्त मिश्र को (जो सरकारी चोर हैं) शीघ्र हाजिर करो, अतः राजाज्ञा से मैं आपके समीप आया हूं, परंतु परदुःखभंजन मिश्र पूर्व ही से चलने के हेतु सब काम से निश्चित हो बैठे थे और उसमें भी राजाज्ञा पाते ही शीघ्र कोतवाल के साथ हो लिये, और वे भी राजाज्ञानुकूल इन्हें ले चले. इधर नगर में इस प्रकार की यह एक नवीन बात और उसमें भी राज्य संबंधी कभी छिप सकती है? यहां तक कि शीघ्र ही महल्लों में कोलाहल मच गया, परदुःखभंजन मिश्र से उत्तम कुलीन विद्वान, राजमान्य सुसन्मान्य व्यक्ति भी चोर हो गए? परंतु प्यारे! राजनीति की पालिसी कौन समझ सकता है? उस अवस्था में ऐसे अच्छे पुरुष पर किसकी करुणा-दृष्टि नहीं पड़ती? सच है, सुपात्र का बड़ा आदर होता है, सहसा एक स्वर से नागरिक मात्रों के मुख से त्राहि भगवान् की घोर ध्वनि निकलने लगी और अश्रुपूर्ण नेत्रों से संपूर्ण दयार्द्र भद्रपुरुषों के मुख से यही वचन निकला कि अरे! यह विचार सुपात्र ब्राह्मण व्यर्थ अन्यायवश पददलित हो रहा है, हां! राजा जो चाहे, सो करे. सब कोई परस्पर में इधर कोलाहल करने लगे कि राजा तो दूर रहे प्रथम तो 'पुलिस' ही महाराज है. देखो! यह क्रूर प्रकृति कोतवाल परदुःखभंजन मिश्र को अनेक प्रकार के असभ्य व्यवहारयुक्त लिये जाता है.

इधर मारशास्त्री सोते ही पड़े हैं और इनके हिसाब अब कुछ कर्त्तव्य ही नहीं शेष रह गया था, बिलकुल बेफिकरी भरी थी, पर वो प्रेमप्रमाद मद था अन्यथा भला ऐसे भयंकर समय में भी पिशाचिनी निद्रा आती है! और इधर मारशास्त्री शोर-कोलाहल सुन कर कब अचेत रह सकते हैं? मित्र को गया सुन सहसा उठ कर उसी दशा में दौड़ गये और मार्ग ही में कोतवाल के साथ मित्र को देख उससे सविनय बोले, महोदय! आप उन्हें छोड़ दें क्योंकि ये महाराज के चोर नहीं वरन् मैं हूं; अतः मुझे ले चलें. मैं ही महाराज के सन्मुख चल कर अपना सत्य-सत्य दोष प्रकाश करूंगा, परंतु प्रेमवृत्ति के प्रबल होने से परदुःखभंजन मिश्र ने कहा कि ये झूठे हैं, मैं ही चोर हूं, इसी प्रकार दोनों मित्र स्वयं दोषी बन के चलने के लिए कोतवाल से निवेदन करने लगे और एक दूसरे की रिहाई चाहने लगे. परंतु उस समय कोतवाल तो निरे 'बछवा के ताऊ' बन गए और बुद्धि हजरत की घास चरने गयी थी. बड़ा धर्मसंकट पड़ गया, यही बुद्धिनाशक कौतुक है, अब बिचारा कोतवाल किसे चोर समझे और किसको ले चले? परंतु उसको उचित था कि जिसे राजा ने बुलाया था, उसको ले जाता. यहां अब अपनी प्रकृति चातुरी दिखलाने के लिए दोनों ही को महाराज के सन्मुख लाकर उपस्थित कर दिया और मार्ग में जो दोनों का इति कर्तव्य हुआ, उसे भी निवेदन किया, पर कुटिल स्वभाव के कारण अपनी आज्ञा भंग और उस नीति (जो उसने मार्ग में दोनों के संग व्यवहार किया था) का नाम तक नहीं लिया. अथ च इस बात के कहने की शक्ति वहां किसे थी? कौन कहके अपने सिर पर बला लेता? क्योंकि यदि कोतवाल की योग्यता प्रकट हो जाती तो वह अवश्य दंडभागी होता, और यह किस सन्याय, नीति

धर्मशास्त्र का वचन था, उसके अपराध को भलीप्रकार जांच कर दंड देना राजा का स्वत्व है न कि अन्य कर्मचारी पुलिस प्रभृतियों का. परंतु जब तक राजा इस लीला से अनभिज्ञ थे, तब तक उन पर दोषारोपण नहीं करना चाहिए प्रत्युत ऐसा उपाय कर्तव्य है कि उसमें राजा यह ठगवृत्तांत जान कर उस दुराचार का संशोधन करे. इधर दोनों मित्र राजा के सन्मुख खड़े हैं, पाठकवृंद देखिये, मित्र के लिए प्राण को तृण से भी हलका समझ कर छेदन करना क्या अलौकिक गुण नहीं है? क्या बहुधा संसार में ऐसी प्रीत होती है? जिनमें ये गुण हों उनके देवता होने में क्या संदेह है, अहा! स्वार्थ-परता को छोड़ कर निष्कपट प्रीति इसी का नाम है; परंतु यहां राजा को तो और ही अभीष्ट था, शीघ्र ही परदुःखभंजन मिश्र को छोड़ कर मारशास्त्री से ही कहा कि तू ही मेरा वास्तविक चोर है अतः इसी को सूली के सन्मुख करो; अनंतर जो हुक्म हो, सो करना. पाठक! वहां तो मुख से निकलने की देर थी कि मारशास्त्री सूली के सन्मुख खड़े किये गये.

इति षष्टो निष्कः।

★ ★

अथ सप्तमो निष्कः।

गुणेन स्पृहनीयः स्यान्नरूपेण युतो तपः।
सौगंध ही नंनादेयं पुस्पं कान्तमपिक्वचित् ॥१॥
(गुणरत्ने)

अब इस प्रकार आश्चर्यजनक वृतांत देखकर सब कोई उद्वेलित हो जाते हैं तिसमें यह घोर उपद्रव देख के कौन स्थिर रह सकता है? नगर भर में शोकध्वनि पूर्ण हो गयी. मंत्री आदि समस्त राजकर्मचारी और उपस्थित सकल प्रजागण केवल चित्रलिखे-से रह गये, बस अब केवल एक राजा की आज्ञा ही का विलंब था कि एकाएक, एक अदृष्टपूर्व अस्त्र-शस्त्र परिपूर्ण युवा अश्वारूढ़ आकर सहसा मारशास्त्री के सन्मुख खड़ा हो गया. उसकी प्रभा तथा अद्भुत वेष एवं पराक्रम देखकर सकल दर्शक गणों के चित्त में अनेक भाव उत्पन्न होने लगा और प्रबल प्रकंपनी ने सबको आकर आक्रमण कर ही तो लिया और इतने ही में अश्वारूढ़ के मुख से यह वचन निकला :

इति निजबन्धुवियोगादग्नेर्ज्वाला दहति मे देहम्।
अहह! समागयोगा दायातास्मि विसृज्यवैगेहम् ॥

यह हृदयवेधी बचन सुन के अद्वितीय पंडित मारशास्त्री ने उसे चीन्हा और उसी प्रकार उसे उत्तर दिया.

नहि शोक मे मरणो दृढ़ त्वां प्रेमरुपाभाम्।
अपिच भविष्यति लोके संयोगो मे तथातेऽद्य ॥

इस प्रकार उभय प्रेमियों के कथनोपकथन को सुन कर जो अक्षरार्थ समझे, वे भी गूढ़ाशय तक न पहुंच कर आतुर होने लगे और जो कुछ भी न समझे उनका मन तो हाथों उछलता था, परंतु राजा तो सब वृत्तांत पूर्व ही से जानता था अतः मंदस्मित पूर्वक परस्पर दोनों का अकृत्रिम प्रेम देख के प्रसन्न होने लगे तब तो और भी आनंद हुआ. महाराज के कौतुक को न जाने और यह अपूर्व दृश्य तथा राजा का हास्य देख कर सर्वदर्शक जन बड़े विकल भये, यह दशा सभों की देख आश्चर्यित और चमत्कृत हो कर मंत्रिप्रवर नीतितत्वज्ञ शारदाचार्य ने अति आतुर हो महाराज से पूछा, प्रभुवर! ऐसी अद्भुत लीला मैंने आज तक न देखी, इस समय मेरी सब बुद्धिमत्ता उड़ गयी. यदि इस लीला को व्यास, चाणक्य, सरीखे नीति के मारपेच जानने वाले देखते तो अवश्य आपके शिष्यों में नाम लिखवाते. यह कैसा अपूर्व कौतुक है? जिसकी माया वही जाने,केवल मैं ही नहीं, सब देखनेवाले चकित से हो रहे हैं. राजा ने मुस्करा कर कहा, यह भेद पीछे जानना, प्रथम मारशास्त्री के समीप यह कौन वीर काला कपड़ा पहिने खड़ा है? इसे तो देख आओ, पश्चात् इसका निर्णय हो जायगा.

शारदाचार्य उसके समीप जा कर अत्यंत सोच-विचार युक्त चेष्टापूर्वक चीन्ह कर बड़े विकल तथा लज्जायुत हुए और सदुःख राजा के समीप जाकर धीरे से बोले, महाराज! बड़ा अनर्थ हुआ और सब बनी-बनाई प्रतिष्ठा धूल में मिल गयी और मैं मनुष्य मंडली मात्र में मानहत हुआ. अरे! यह कुल कलंकिनी कन्या दास हो की है, हा! आज इसने मेरे लाज का जहाज डुबा दिया. राजा ने आश्वासनपूर्वक हंस कर कहा कि कुछ संदेह मत करो. यह जो सूली के सन्मुख युवक खड़ा है, अद्वितीय पंडित और तुम्हारा स्वजाति तथा अब मेरे पुत्रोपम है और तुम्हारी कन्या की और इनकी अतुल अलौकिक प्रीति है, अतः अब उचित यही देखा जाता है कि इन दोनों का रीत्यानुसार विवाह भी हो जाय, यह कह कर राजा ने सब गुप्त भेद गुप्त रीति पर मंत्री से कह दिया और यह भी कहा कि यदि ऐसा प्रबंध और भय न देते तो औरों की शिक्षा न होती, और ये दोनों प्रेमी मारे खुशी के आश्चर्य नहीं कि प्राण छोड़ देते.

अहाहा! अब क्या था. यह सुख-संवाद सुनकर मंत्री बड़ा प्रसन्न हुआ और उसी समय उन दोनों का विवाहोत्सव कर्म भी अच्छे प्रकार हो गया और उस समय नगरमात्र के हर्ष की सीमा न रही. एक मात्र आनंद का सागर उमड़ पड़ा, सुख-सरिता प्रबल प्रवाह से बहने लगी, आनंद कादम्बिनी छा गयी, और मंगलवर्षा होने लगी, हृदय भूमि हरी-भरी भई, प्रेमबल्ली लहलहा उठी, अनुराग पवन बहने लगा. सौहार्द प्रसून की सुगंध से आशा पूर्ण हो गयी.

आज 'प्रणयिनी' नाम्नी मंत्री की कन्या का 'परिणय' मारशास्त्री ने किया, आहा! उस समय उन दोनों प्रिया-प्रियतम के अमोघ मंगल की सीमा न रही. प्रेम के मारे हठात मेरी लेखनी भी रुक गयी! क्या इससे भी बढ़ के कोई अत्यर्थ प्रेममार्ग होगा? अथवा आवालवृद्ध-बनिता से लेकर राजा-महाराज, राज कर्मचारी आदि सहृदय इसमें कुछ गूढ़ शिक्षा भी लाभ कर सकेंगे? तो फिर ईश्वर सर्वदा सच्चे प्रेमियों का महान् मंगल करे, यही याचना शेष रही.

इति सप्तमो निष्कः ☐☐☐





यह आवश्यक नहीं कि किसी टॉनिक के द्रव्य क्या हैं। आवश्यक बात यह है कि आपके शरीर को उससे क्या मिलता है?

सिंकारा में आवश्यक विटामिनों और खनिज पदार्थों के साथ ही १४ जड़ी-बूटियां विशेषकर सम्मिलित हैं जिनसे पाचन शक्ति अच्छा कार्य करती है और जिनकी सहायता से आपका शरीर सिंकारा में सम्मिलित विटामिनों आदि को बहुत तेज़ी से अपने अन्दर समा लेता है। आहार भली-भांति शीघ्र हज़म होकर आपके शरीर को बहुत जल्द शक्ति प्रदान करता है।

सिंकारा आपके शरीर को बहुत कुछ देता है।



हमदर्द

सिंकारा

विटामिनों और प्राकृतिक द्रव्यों से भरपूर हर मौसम में पूरे परिवार के लिये अद्वितीय टॉनिक



बेनेट कोलमैन एंड कंपनी लिमिटेड, स्वत्वाधिकारी के लिए श्रीकृष्ण गोविंद जोशी द्वारा टाइम्स आफ इंडिया प्रेस, बंबई में मुद्रित व प्रकाशित; जनरल मैनेजर : डॉ. राम तरनेजा; पो. बाक्स २१३, बंबई-४००००१; दिल्ली आफिस : ७ बहादुरशाह जफर मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२; कलकत्ता आफिस : १३/१ और १३/२ गवर्नमेंट प्लेस ईस्ट, कलकत्ता-७०००६९. लंदन आफिस ९६, [illegible] य. के.

पंजीयत स. एम. एच दक्षिण बंबई-३९

